

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीभाष्य परिचय

SHRIBHASHYA PARICHAYA



SRIBHASHYAKAR SWAMY TIRUMALA

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

Srikrishna Prapnachari

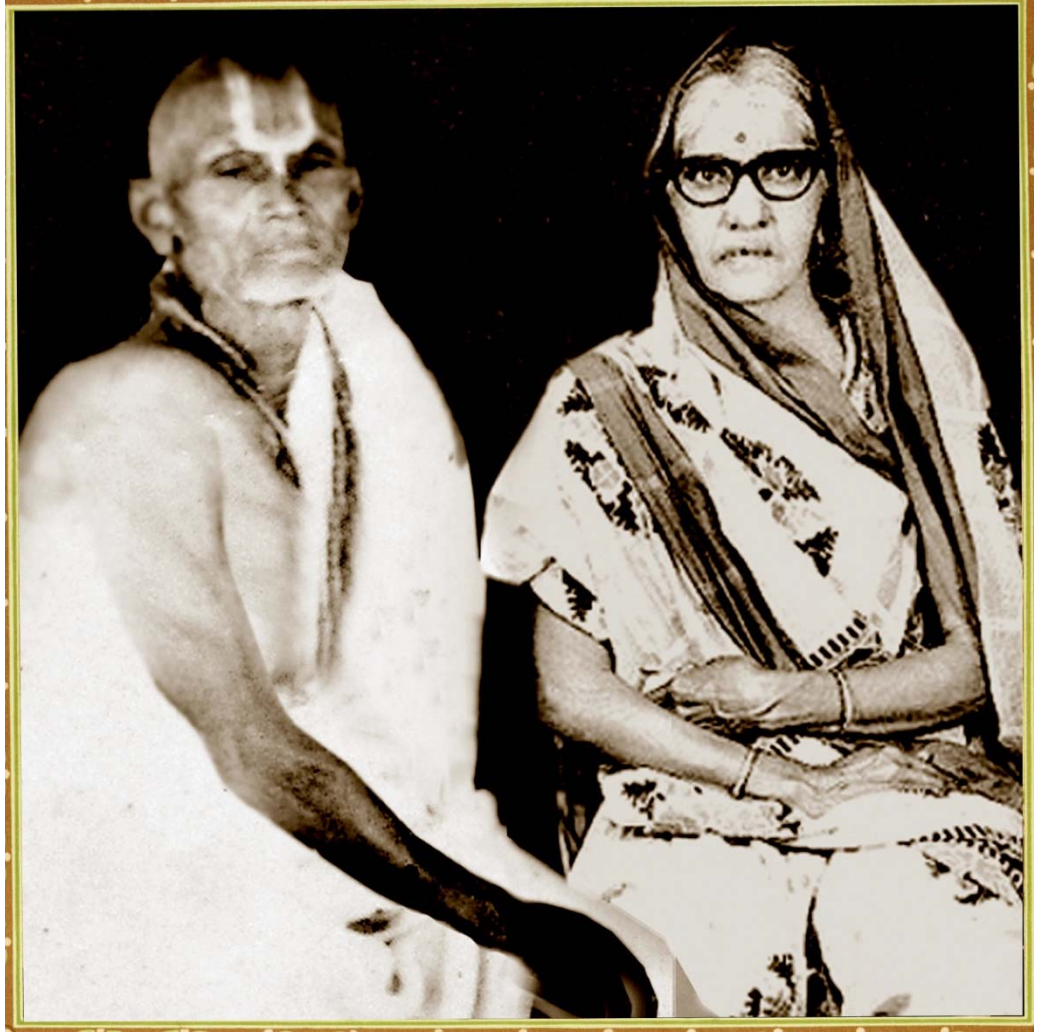
श्रीमते रामानुजाय नमः

समर्पण



श्रीमद्भगवत पराङ्कुश स्वामी जी

कौडिन्यगोत्र सरसीरूह बालभानुम् श्रीरंगदेशिक पादाब्ज रसैक भृंगम ।
श्रराजेन्द्रसूरी चरणाश्रितमप्रमेयम् श्रीमत्पराङ्कुशगुरुं शरणं प्रपदे । ।



पिता श्रीराघवा चारी

माता श्रीमती सकलमती देवी

श्रीमदभगवतो पराङ्कुशगुरोः पदरजस्य अनुचरम् ।

भजाम्यऽहम् मातुः पितुः उभयोः पादारविन्दम् । ।

श्रीमते रामानुजाय नमः
श्रीभाष्य परिचय : विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
	भूमिका	iv
1	श्रीभाष्य की संरचना	1
2	श्रीभाष्य सार	3
3	वेद एवं ब्रह्म सूत्र	3
4	तालिका 1 : वेद की शाखायें एवं शाखा के प्रकार	3
5	प्रार्थना श्लोक	6
6	अध्याय सार	7
7	तालिका क 1 : अध्यायवत पाद, अधिकरण, एवं सूत्र की संख्या	12
8	तालिका क 2 : अध्यायवत सूत्र एवं अधिकरण	12
9	तालिका ख 1 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में पहला अध्याय का पहला पाद : समन्वय अध्याय, अस्पष्टतर जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद	13
10	तालिका ख 2 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में पहला अध्याय का दूसरा पाद : समन्वय अध्याय, अस्पष्ट जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद	14
11	तालिका ख 3 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में पहला अध्याय का तीसरा पाद : समन्वय अध्याय, स्पष्ट जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद	14
12	तालिका ख 4 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में पहला अध्याय का चौथा पाद : समन्वय अध्याय, स्पष्टतर जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद	15
13	तालिका ख 5 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में दूसरा अध्याय का पहला पाद : अविरोध अध्याय, स्मृति पाद	16
14	तालिका ख 6 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में दूसरा अध्याय का दूसरा पाद : अविरोध अध्याय, तर्क पाद	16
15	तालिका ख 7 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में दूसरा अध्याय का तीसरा पाद : अविरोध अध्याय, वियत पाद	17
16	तालिका ख 8 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में दूसरा अध्याय का चौथा पाद : अविरोध अध्याय, इन्द्रिय पाद	17
17	तालिका ख 9 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में तीसरा अध्याय का पहला पाद : साधना अध्याय, वैराग्य पाद	18
18	तालिका ख 10 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में तीसरा अध्याय का दूसरा पाद : साधना अध्याय, उभयलिङ्ग पाद	19
19	तालिका ख 11 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में तीसरा अध्याय का तीसरा पाद : साधना अध्याय, गुण उपसंहार पाद	19
20	तालिका ख 12 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में तीसरा अध्याय का चौथा पाद : साधना अध्याय, अंग पाद	20

21	तालिका ख 13 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में चौथा अध्याय का पहला पाद : फल अध्याय, आवृत्ति पाद	21
22	तालिका ख 14 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में चौथा अध्याय का दूसरा पाद : फल अध्याय, उत्क्रान्ति पाद	21
23	तालिका ख 15 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में चौथा अध्याय का तीसरा पाद : फल अध्याय, गति पाद	22
24	तालिका ख 16 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में चौथा अध्याय का चौथा पाद : फल अध्याय, फल पाद	22
25	पहले अध्याय का पहला पाद (समन्वय अध्याय, अस्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य पाद, 32 सूत्र, 11 अधिकरण)	23
26	तालिका 1 : प्रथम अध्याय के पहले पाद के अधिकरण	26
27	तालिका 2 : ब्रह्मानंद एवं मनुष्य के आनंद की तुलना	29
28	पहले अध्याय का दूसरा पाद (समन्वय अध्याय, अस्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य पाद, 33 सूत्र, 6 अधिकरण)	32
29	तालिका 3 : ब्रह्म के 12 कल्याण गुण	32
30	तालिका 4 : पहले अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (33 सूत्र, 6 अधिकरण)	34
31	पहले अध्याय का तीसरा पाद (समन्वय अध्याय, स्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य पाद, 44सूत्र, 10 अधिकरण)	38
32	तालिका 5 : पहले अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (44 सूत्र, 10 अधिकरण)	38
33	पहले अध्याय का चौथा पाद (समन्वय अध्याय, स्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य पाद, 29 सूत्र, 8 अधिकरण)	47
34	तालिका 6 : पहले अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (29 सूत्र, 8 अधिकरण)	47
35	तालिका 7 : नारायण के विभिन्न स्वरूप	53
36	दूसरे अध्याय का पहला पाद (अविरोध अध्याय, स्मृति पाद, 36 सूत्र, 10 अधिकरण)	55
37	तालिका 8 : दूसरे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (36 सूत्र, 10 अधिकरण)	57
38	दूसरे अध्याय का दूसरा पाद (अविरोध अध्याय, तर्क पाद, 42 सूत्र, 8 अधिकरण)	61
39	तालिका 9 : दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (42 सूत्र, 8 अधिकरण)	69
40	दूसरे अध्याय का तीसरा पाद (अविरोध अध्याय, वियत् पाद, 52 सूत्र, 7 अधिकरण)	70
41	तालिका 10 : दूसरे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (52 सूत्र, 7 अधिकरण)	76
42	दूसरे अध्याय का चौथा पाद (अविरोध अध्याय, प्राण पाद, 19 सूत्र, 8 अधिकरण)	77
43	तालिका 11 : दूसरे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (19 सूत्र, 8 अधिकरण)	82
44	तीसरे अध्याय का पहला पाद (साधना अध्याय, वैराग्य पाद, 27 सूत्र, 6 अधिकरण)	83

45	तालिका 12 : तीसरे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (27 सूत्र, 6 अधिकरण)	89
46	तीसरे अध्याय का दूसरा पाद (साधना अध्याय, उभयलिङ्ग पाद, 40 सूत्र, 8 अधिकरण)	91
47	अष्टांग योग	103
48	ब्रह्मविद्या के बत्तीस विभेद	104
49	तालिका 13 : ब्रह्मविद्या के बत्तीस भेद	106
50	तालिका 14 : तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (40 सूत्र, 8 अधिकरण)	112
51	तीसरे अध्याय का तीसरा पाद (साधना अध्याय, गुणोपसंहार पाद, 64 सूत्र, 26 अधिकरण)	113
52	तालिका 15 : तीसरे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (64 सूत्र, 26 अधिकरण)	121
53	तीसरे अध्याय का चौथा पाद (साधना अध्याय, अंग पाद, 51 सूत्र, 15 अधिकरण)	122
54	तालिका 16 : तीसरे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (51 सूत्र, 15 अधिकरण)	128
55	चौथे अध्याय का पहला पाद (फल अध्याय, आवृत्ति पाद, 19 सूत्र, 11 अधिकरण)	129
56	तालिका 17 : चौथे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (19 सूत्र, 11 अधिकरण)	134
57	चौथे अध्याय का दूसरा पाद (फल अध्याय, उक्तान्ति पाद, 20 सूत्र, 11 अधिकरण)	135
58	तालिका 18 : चौथे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (20 सूत्र, 11 अधिकरण)	141
59	चौथे अध्याय का तीसरा पाद (फल अध्याय, गति पाद, 15 सूत्र, 5 अधिकरण)	142
60	तालिका 18: कौपीतकी एवं बृहदारण्यक में वर्णित अर्चिरादिगति के क्रम	143
61	तालिका 19 : चौथे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (15 सूत्र, 5 अधिकरण)	147
62	दिव्य वैकुण्ठ धाम का वर्णन :	148
63	चौथे अध्याय का चौथा पाद (फल अध्याय, फल पाद, 22 सूत्र, 6 अधिकरण)	154
64	तालिका 20 : चौथे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (22 सूत्र, 6 अधिकरण)	164

श्रीमते रामानुजाय नमः

‘अखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गादिलीले विनतविविधभूतव्रातरक्षैकदीक्षे ।
श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे भवतु मम परस्मिन् शेषुषी भक्तिरूपा । ।’

(श्रीरामानुज स्वामी)

‘यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युग्मरूक्म व्यामोह तस्तदितराणि तृणायमेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये । ।’

(श्रीकुरेश स्वामी)

‘हे सर्वकृतो, मैं तुम्हारे सदाचार, निष्ठा, एवं भक्ति से अतीव प्रसन्न हूँ। तुम चिन्तित मत होना। मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा। लोग दुर्बुद्धि के कारण पूर्वाचार्यों का यथार्थ अभिप्राय समझने में असमर्थ होकर स्वयं को ही ईश्वर मान रहे हैं और अहंकार के वशीभूत होकर कुकर्म परायण तथा यथेच्छाचारी हो गए हैं। अतः मेरे आचार्य रूप में अवतीर्ण हुए बिना उनके लिए कोई उपाय नहीं है। तुम पत्नी के साथ घर लौट जाओ। शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।’¹

उपर्युक्त शब्द श्रीपार्थसारथी भगवान के हैं जो उन्होंने श्री केशवाचार्य को स्वप्न में सुनाया था। श्रीकेशवाचार्य एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। आप श्रीपेरम्बुदुर के निवासी थे। यह नगर तमिल नाडु की राजधानी चेन्नै से 35 किमी की दूरी पर पश्चिम में अवस्थित है। श्रीकेशवाचार्य का परिणय तिरूमला नाम्बी के सगी बहन श्रीमती कान्तिमती से हुआ था। संतान प्राप्ति में विलम्ब देख आपने चेन्नै में स्थित ट्रिप्लीकेन यानी तिरुवल्लीकेणी के श्रीपार्थसारथी भगवान के यहां संतान कामना से पूजा अर्चना की। फलस्वरूप ई 1017 चैत्रमास, आर्द्रा नक्षत्र में, शुक्ला पञ्चमी तिथि, बृहस्पतिवार के दिन, कर्क लग्न तथा पिंगला वर्ष में, हारीत गोत्रीय यजुःशाखाध्यायी श्री रामानुज का अवतार श्रीपेरम्बुदुर में हुआ।

प्रारंभ में श्रीरामानुज स्वामी श्रीवरदराज भगवान कांचीपुरम के दयापात्र हुए और तत्पश्चात् श्रीरंगनाथ भगवान श्रीरंगम के शरणागत हुए। आप पर मेलेकोटे के श्रीचेल्लुनारायण भगवान, श्रीसंपत कुमार भगवान की विशेष कृपा रही। कालक्रम में आप ने तिरूमला श्रीनिवास भगवान को अपना बना लिया। इस तरह से 120 वर्षों तक आपकी अमर ज्योति इस धराधाम पर जलती रही।

व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से वेद को कई भागों में रखा गया है। सैद्धान्तिक विषय के अनुसार इसे चार भागों में रखा गया : ऋक् वेद, यजुः वेद, सामवेद, तथा अथर्व वेद। व्यवहारिक पक्ष से इसे संहिता यानी यज्ञ के मंत्र, ब्राह्मण यानी यज्ञ की विधि, अरण्यक यानी वन के पाठ, तथा उपनिषद यानी परमात्मा का विवेचन में बांटा गया। उपनिषद वेद का वह अंश है जो नारायण के अति समीप प्रतिष्ठित है। इसीलिये इसे ‘जो पास में उपस्थित हो’ यानी ‘उपनिषद’ कहा गया है। वेद तो भगवान नारायण का संविधान है जो प्रलय के बाद सृष्टि प्रक्रिया में दिशा निर्देश करता है। अपनी नाभि से कमल पर ब्रह्मा को उत्पन्न कर नारायण उन्हें वेद का ज्ञान

¹ ‘श्रीरामानुज चरित’, अद्वैत आश्रम, कोलकता। प्रथम संस्करण 2001

प्रदान करते हैं जो सृष्टि की अग्रतर कारवाई में सहायक होता है। वेद के रहस्यपूर्ण अर्थ को समझने के लिये पृथक सहायक स्रोत बनाये गये हैं। चूंकि ये वेद को समझने में सहायक हैं इसलिये इन्हें 'वेदांग' कहा जाता है। इनमें से 6 का प्रयोग शुद्ध उच्चारण एवं व्युत्पत्ति की जानकारी के लिये, शब्दार्थ समझने के लिये, यज्ञ संपादन का उचित समय एवं काल की जानकारी के लिये, यज्ञ विधि के लिये, तथा मंत्र के छन्द की व्यवस्था को समझने के लिये किये जाते हैं। ये 6 वेदांग हैं : शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, एवं कल्प। इसीतरह से अन्य चार वेदांग हैं : मीमांसा, न्याय, पुराण, एवं इतिहास। रामायण एवं महाभारत की गणना इतिहास में की जाती है। मीमांसा का अर्थ है वेद को समझने के लिये उचित विवेचन। ब्रह्मसूत्र मीमांसा का हिस्सा है। वेद के ऐसे वाक्य जिनके अनेक अर्थ एवं तात्पर्य निकाले जाते हैं मीमांसा के विषय वस्तु हैं

विभिन्न उपनिषद में ऋषियों ने विभिन्न तरीके से परमात्मा की सत्ता को समझाने का प्रयास किया है। परिणाम स्वरूप उपनिषद की बहुलता के कारण इसमें विरोधाभास दिखने लगा। महर्षि वेदव्यास ने सभी उपनिषद से मूल तथ्य को निकालकर 'ब्रह्मसूत्र' के 545 सूत्रों में संकलित कर दिया। जन्म से मृत्यु तक की व्यवहारिक जगत की यात्रा में समय एवं घटनाओं की थपेड़े खाते हुए व्यक्ति सोचता है कि आखिर इस जीवन का परमउद्देश्य क्या है ? क्यों हम इस संसार में आते जाते रहते हैं ? सभी बातें यहां व्यवस्थित तरीके से चल रही हैं तो कोई इसके पीछे नियामक की तरह काम कर रहा होगा ! बादरायण के नाम से प्रसिद्ध व्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में इन्हीं सारे प्रश्नों का सकारात्मक प्रारंभ एक सूत्र से किया : 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। कमशः अन्य सूत्रों में ब्रह्म को परिभाषित करते हुए ब्रह्म सत्ता को प्रतिपादित किया। आज संसार का सर्वोपरि विकसित एवं शक्तिशाली देश अमेरिका ने भी इस परमशक्ति परमनियामक के प्रति अपने डालर के हरेक सिक्कों एवं नोटों पर समर्पण सूत्र उत्कीर्ण कर रखा है : 'IN GOD WE TRUST'।

ब्रह्मसूत्र को चार अध्याय में रखा गया है। पहला अध्याय 'समन्वय' का है यानी उपनिषद के सारे वाक्य एक हैं। दूसरा अध्याय 'अविरोध' का है यानी परमात्मा के प्रति कोई द्वंद नहीं है। तीसरा अध्याय परमात्मा को प्राप्त करने के मार्ग यानी 'साधना' का है। चौथा अध्याय साधना के उपरांत 'फल' का है। ब्रह्मसूत्र के सूत्रों को समझने के लिये कई संतों ने कई टीकायें लिखीं। प्राचीन टीकायें अब प्राप्त नहीं हैं। आधुनिक टीका में सबसे पहले श्रीआदिशंकर ने इस पर भाष्य लिखा। तदुपरांत उनके परवर्तीकाल में अवतरित श्रीरामानुज ने टीका लिखी जिसे विद्या की अधिष्ठात्री देवी ने प्रसन्न होकर 'श्रीभाष्य' की संज्ञा दी एवं श्रीरामानुज को 'श्रीभाष्यकार' कहा। ये दोनों टीकायें संप्रति उपलब्ध हैं। इन दो संतों के अतिरिक्त इनके परवर्ती काल में प्रादुर्भूत कई अनेक संतों ने भी ब्रह्मसूत्र पर अपने अपने दृष्टिकोण से टीकायें लिखीं। उदाहरण के लिये गीता को लिया जाय। गीता पर अपने अपने मंतव्य से आज अनेकों टीकायें उपलब्ध हैं। भगवान ने गीता में 18।66 से '.....मामेकं शरणं ब्रज' का आदेश पूरी भरोसा से दिया कि '.....मा शुचः' यानी चिन्ता नहीं करो हम ही एकमात्र 'मामेकं' तुम्हारा कल्याण करेंगे।

गीता के अध्याय 13 के श्लोक 4 में ब्रह्मसूत्र की उपादेयता का स्पष्ट उल्लेख है।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमदिभर्विनिश्चतैः । ।

सांसारिक व्यस्तता में तल्लीन मानव समाज के लिये सुगम करने हेतु कई संतों ने इन टीकाओं की भी टीका लिखीं। ये सारी कृतियां संस्कृत में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत प्रयास हिंदीभाषियों को 'श्रीभाष्य' का परिचय मात्र कराने का है। विशद व्याख्या के लिये जिज्ञासु को अन्य स्रोत का सहारा लेना होगा।

इस परिचय की तैयारी में मुख्य स्रोत 1। Compiled by Sri. U.Ve. Anantha Narasimachariar Swamy, Srirangam, यानी www.acharyapurushaahaa.org पर उपलब्ध श्रीरंगम के उभय वेद मर्मज्ञ श्री अनन्ता नरसिंहचारियर स्वामी का अंग्रेजी संकलन, 2। श्रीनरसिंहप्रिया ट्रस्ट चेंनै से ई 2000 में प्रकाशित श्रीचक्रवर्त्याचारियर स्वामी की संस्कृत में श्रीभाष्य चन्द्रिका, 3। अद्वैत आश्रम कोलकता से अंग्रेजी में ई 1978 में प्रकाशित स्वामी वीरेश्वरानन्द एवं स्वामी आदिदेवानन्द द्वारा विरचित पुस्तक 'BRAHMA – SUTRAS SRI BHASYA' रहे हैं। हम इन सबों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अनंतश्रीविभूषित स्वामी रंगरामानुजाचार्य एवं स्वामी हरeramachariar के वात्सल्यमय आशीर्वचन सदा हमारे प्रेरणास्रोत रहे हैं।

श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमते नारायणाय नमः ।

प्रस्तुतकर्ता दास :

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

दिसंबर 5, 2011 | पटना।

e-mail: prapnnachari@gmail.com

श्रीभाष्य की संरचना

अध्याय : 1 : समन्वय अध्याय
 अध्याय : 2 : अविरोध अध्याय
 अध्याय : 3 : साधना अध्याय
 अध्याय : 4 : फल अध्याय
 प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं।

अध्याय 1 के पाद :

जगत का कारण का वर्णन है। कुछेक कहते हैं कि चित जीव जगत का कारण है। कुछेक कहते हैं अचित प्रकृति जगत के कारण हैं।

1 प्रथम पाद : अस्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य

1 द्वितीय पाद : अस्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य

देही एवं कल्याण गुण देहित्वम्

1 तृतीय पाद : स्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य

स्वनिष्ठा

1 चतुर्थ पाद : स्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य

निर्वधि महिमा

नारायण ही उपादान कारण, निमित्त कारण, तथा सहकारी कारण हैं।

अध्याय 2 के पाद :

2 प्रथम पाद : स्मृति पाद

कपिल ने निरीश्वर सांख्य से प्रकृति को सृष्टि का कारण माना। सूत्रकार बादरायण ने इसे अस्वीकार कर दिया।

2 द्वितीय पाद : तर्क पाद

सूत्रकार ने सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, पाशुपात को अस्वीकार कर पाञ्चरात्र को स्वीकार किया।

2 तृतीय पाद : वियत पाद

पंचभूत की सृष्टि परिवर्तन से होती है। जीव शाश्वत है इसलिये इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

2 चतुर्थ पाद : इन्द्रिय पाद

अध्याय 3 के पाद :

3 प्रथम पाद : वैराग्य पाद

सांसारिक सुख एवं स्वर्ग प्राप्ति की कामना से विरक्ति

3 द्वितीय पाद : उभय लिंग पाद

हेय प्रत्यनिकत्व एवं कल्याण गुणकरत्व

3 तृतीय पाद : गुण उपसंहार पाद

भक्ति योग के 32 ब्रह्मविद्या का विवरण है। ब्रह्म पर ध्यान को ब्रह्म विद्या कहते हैं। इसे बहभजन पाद भी कहते हैं। प्रपत्ति भक्ति का एक विशेष अंग है।

3 चतुर्थ पाद : अंग पाद

भक्तियोग की आवश्यकताओं का वर्णन है। वर्ण एवं आश्रम के अनुसार शास्त्रोक्त कर्मों का विधिवत पालन आवश्यक है।

अध्याय 4 के पाद :**4 प्रथम पाद : आवृत्ति पाद**

भक्ति ध्यान का निरंतर अभ्यास

4 द्वितीय पाद : उत्क्रान्ति पाद

नश्वर शरीर से मोक्ष प्राप्ति की विधा । ब्रह्मनाड़ी गति कृतः। ब्रह्मनाड़ी नाभी से शिर तक जाती है और जब शरीर इस नाड़ी से छूटता है तब मोक्ष मिलता है।

4 तृतीय पाद : गति पाद

जीव का वैकुंठ जाने का मार्ग जहां वह मुक्तात्मा हो जाता है। इस मार्ग को अर्चिरादि मार्ग कहते हैं। इस मार्ग के देव नाम 'अतिवाह' है एवं जिन 12 जनों के माध्यम से इस मार्ग से वे जीव को ले जाते हैं वे 'अतिवाहक' कहे जाते हैं।

4 चतुर्थ पाद : फल पाद

जीव आठ गुणों से संपन्न हो लक्ष्मी नारायण के पास शाश्वत आनन्द को प्राप्त करता है। श्रीमन्नारायण उसे सृष्टि का कारण शक्ति एवं लक्ष्मी का दाम्पत्य गुणों को छोड़कर बाकी सभी अपनेवाले गुणों से संपन्न कर देते हैं।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

श्रीभाष्य परिचय

‘श्रीभाष्य’ वैष्णव समाज के लिये सर्वोपरि महत्व की कृति है। इससे विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का दिग्दर्शन मिलता है। ब्रह्म सूत्र पर श्रीरामानुज स्वामी द्वारा रचित भाष्य यानी व्याख्या को ‘श्रीभाष्य’ कहते हैं तथा श्रीरामानुज स्वामी को ‘श्रीभाष्यकार स्वामी’ कहते हैं। इस कृति की पूर्णता के पश्चात् जब श्रीरामानुज स्वामी शारदापीठ कश्मीर गये और सरस्वती देवी को पुस्तक अर्पित किया तो देवी ने प्रसन्नहोकर इसे ‘श्रीभाष्य’ कहा तथा श्रीरामानुज स्वामी को ‘भाष्यकार’ से सम्बोधित किया।

इस रचना से श्रीरामानुज स्वामी ने श्रीयामुनाचार्य की अंतिम इच्छा की पूर्ति की। श्रीरामानुज ने जीवन में पांच कार्य अवश्य करने को कहा और उसमें से ‘श्रीभाष्य’ का अध्ययन पहला है। परवर्ती काल में श्रीवेदांत देशिक ने ‘तत्वमुख कल्प’, ‘सर्वार्थसिद्धि न्याय सिद्धांजन’, ‘न्याय परिशुद्धन’, ‘अधिकरण सारावली’ आदि की रचना कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की जड़ को मजबूत किया तथा वैष्णव समाज का समुचित दिग्दर्शन किया। यतिराज सप्तति में श्रीवेदांत देशिक ने कहा है कि श्रीरामानुज की कृति तथा श्रीमन्नारायण की प्रेयसी वेद उपनिषद रूपी दिव्य नारी का श्रृंगार है।

वेद एवं ब्रह्मसूत्र :

वेद अपौरुषेय है तथा अनादि, शाश्वत, एवं निर्मल है। वेद के एक एक वचन अकाट्य प्रमाण हैं। श्रीकृष्ण द्वैपायन नारायण के अवतार हैं तथा आपको बादरायण भी कहते हैं। आप पराशर मुनि के दिव्यपुत्र हैं। आपने वेद को चार भाग में प्रस्तुत किया : ऋक् वेद, यजुः वेद, सामवेद, तथा अथर्व वेद। वेद को पुनः शाखा में बांटा गया है जो तालिका 1 में द्रष्टव्य हैं।

तालिका 1 : वेद की शाखायें एवं शाखा के प्रकार

वेद	शाखा	शाखा के भेद			
		संहिता	ब्राह्मण	अरण्यक	उपनिषद
ऋक्	21	यज्ञ के मन्त्र	यज्ञ की विधि	वन के पाठ	नारायण तत्व के प्रतिपादक
यजु	100				
साम	1000				
अथर्व	9				

वेद की प्रत्येक शाखा चार वर्ग में विभाजित हैं : संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक, एवं उपनिषद। तालिका 1 द्रष्टव्य।

वेद के वचन को वेदवाक्य भी कहते हैं जो तीन प्रकार के हैं: विधि, अर्थवाद, एवं मंत्र। इस जीवन में या बाद के जीवन में विशेष फल प्राप्ति हेतु किये गये किसी यज्ञ के करने के अनुदेश को विधि कहते हैं। जैसेकि ज्योतिषतोम यज्ञ से स्वर्ग मिलता है। किसी यज्ञ के फल का वर्णन 'अर्थवाद' से किया जाता है। किसी देवता विशेष को प्रसन्न कर आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु 'प्रार्थना' को 'मंत्र' कहते हैं।

वैदिक मंत्रों के पाठ से जन्म एवं मृत्यु की आवृत्ति से मुक्ति मिलती है। वेद के महत्वपूर्ण भाग 'उपनिषद' में मोक्ष प्राप्ति के उपाय वर्णित हैं। उपनिषद में नारायण की परत्वता प्रतिपादित है। उपनिषद वेद का वह अंश है जो नारायण के अति समीप प्रतिष्ठित है। इसीलिये इसे 'जो पास में उपस्थित हो' यानी 'उपनिषद' कहा गया है। वेद का अंतिम भाग ही उपनिषद है इसीलिये इसे वेदांत, निगमांत, त्रय्यांत, या श्रुत्यांत भी कहते हैं। वेद को ही 'श्रुति' भी कहते हैं। 'शास्त्र' वृहत अर्थ में उपयुक्त है और इसका अर्थ हुआ कि जिसके पढ़ने से ब्रह्मज्ञान मिले वह का शास्त्र है। वेदांत तीन बातों का ज्ञान देते हैं : तत्त्व, हित, एवं पुरुषार्थ।

वेद तो भगवान नारायण का संविधान है जो प्रलय के बाद सृष्टि प्रक्रिया में दिशा निर्देश करता है। अपनी नाभि से कमल पर ब्रह्मा को उत्पन्न कर नारायण उन्हें वेद का ज्ञान प्रदान करते हैं जो सृष्टि की अग्रतर कारवाई में सहायक होता है।

वेद के रहस्यपूर्ण अर्थ को समझने के लिये पृथक सहायक स्रोत बनाये गये हैं। चूंकि ये वेद को समझने में सहायक हैं इसलिये इन्हें 'वेदांग' कहा जाता है। इनमें से 6 का प्रयोग शुद्ध उच्चारण एवं व्युत्पत्ति की जानकारी के लिये, शब्दार्थ समझने के लिये, यज्ञ संपादन का उचित समय एवं काल की जानकारी के लिये, यज्ञ विधि के लिये, तथा मंत्र के छन्द की व्यवस्था को समझने के लिये किये जाते हैं। ये 6 वेदांग हैं : शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, एवं कल्प।

इसीतरह से अन्य चार वेदांग हैं : मीमांसा, न्याय, पुराण, एवं इतिहास। रामायण एवं महाभारत की गणना इतिहास में की जाती है। मीमांसा का अर्थ है वेद को समझने के लिये उचित विवेचन। ब्रह्मसूत्र मीमांसा का हिस्सा है। वेद के ऐसे वाक्य जिनके अनेक अर्थ एवं तात्पर्य निकाले जाते हैं मीमांसा के विषय वस्तु हैं।

वेद के गूढ़ वाक्यों को सुगम बनाने के लिये व्यास जी ने सूत्रों की रचना की। अन्य सर्वसमर्थ एवं सर्वज्ञ ऋषियों ने भी सूत्र का सहारा लेकर वेदान्त को समझाया है। सूत्र की संरचना में घनीभूत तात्पर्य वाले छोटे छोटे शब्दों का प्रयोग किया गया है। चारों वेद के सृजन के बाद सूत्रों के माध्यम से उपनिषद की रचना कर व्यास जी ने समस्त प्राणियों का कल्याण किया है।

कर्म के आधार पर वेद के विभागों को जानने की भी प्रथा है। इसमें वेद के तीन विभाग किये गये हैं : कर्म काण्ड, देवता काण्ड, एवं ब्रह्म काण्ड। कर्मकाण्ड वेद का वह भाग है जिसमें भगवान श्रीमन्नारायण की पूजा अर्चना के निमित्त संपादित किये जाने वाले यज्ञों का वर्णन है। देवता काण्ड में विभिन्न देवों के गुण स्वभाव का

वर्णन है तथा वे देवगण हैं : अग्नि, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, यम, रुद्र, प्रजापति, वायु, मित्रावरण आदि। ब्रह्म काण्ड उपनिषद हैं जिसमें श्रीमन्नारायण के अनंत कल्याण गुणों की झांकी मिलती है।

वेदव्यास यानी व्यास जी के प्रसिद्ध शिष्य हैं : महर्षि जैमिनि एवं महर्षि काशकृत्स्न। वेदव्यास जी के आदेश पर जैमिनिमहर्षि ने वेद के कर्मकाण्ड वाले भाग को सुगम बनाने हेतु सूत्रों की रचना की। इन सूत्रों को पूर्वमीमांसा सूत्र एवं कर्ममीमांसा यानी कर्मकाण्ड सूत्र कहते हैं। ये सूत्र बारह अध्याय में संकलित हैं। इसी तरह से काशकृत्स्न महर्षि ने देवता काण्ड या संकर्ष काण्ड कहे जाने वाले विभाग पर सूत्रों की रचना की जो चार अध्याय में संकलित हैं परंतु संप्रति उनका लोप हो गया है।

उपनिषद वाले भाग को सुस्पष्ट करने के लिये वेदव्यास जी ने स्वयं सूत्रों की रचना की जो 'ब्रह्म सूत्र' कहे गये। इन्हें 'उत्तरमीमांसा' या 'शारीरक सूत्र' या 'ब्रह्ममीमांसा' भी कहते हैं। श्रीमन्नारायण ही ब्रह्म हैं और जड़ जगत एवं चेतन जीव आपके शरीर हैं इसलिये इसे शारीरक सूत्र भी कहते हैं। ये चार अध्याय में संकलित हैं। इस तरह से संपूर्ण मीमांसा शास्त्र 20 अध्याय यानी कर्मकाण्ड के 12 अध्याय, देवता कांड के 4 अध्याय, तथा ब्रह्म सूत्र के 4 अध्याय के संयोग से बने हैं।

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत में सभी मीमांसा शास्त्रों यानी कर्मकाण्ड, देवता काण्ड, तथा उपनिषद को ज्ञान प्रदान कराने वाले एकमात्र स्रोत माने गये हैं। इस तात्पर्य की व्याख्या श्रीरामानुज स्वामी ने श्रीभाष्य में की है।

कर्मकाण्ड का पहला सूत्र है : 'अथातो धर्मजिज्ञासा'।

ब्रह्म सूत्र का पहला सूत्र है : 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' एवं इसका अंतिम सूत्र है 'अनावृत्तिः शब्दाद् अनावृत्तिः शब्दात्'।

मीमांसा शास्त्र की संरचना है : सूत्र, अधिकरण, पाद एवं अध्याय। कई सूत्र के संकलन को अधिकरण कहते हैं। कई अधिकरणों के संकलन को पाद कहते हैं। ब्रह्म सूत्र में चार पादों के संकलन को अध्याय कहते हैं।

कुछ आचार्यगण देवता काण्ड के अंतिम तीन सूत्रों को इस प्रकार बताते हैं : 'अंतेः हरायु तदार्शन्तः' 'स विश्वुराहाहिः' 'तत् ब्रह्मस्येत्य चक्षते'। देवता काण्ड के अंतिम सूत्र का ब्रह्म ही 'ब्रह्म सूत्र' के प्रथम सूत्र के 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' में आया है।

प्राचीन प्रथा के अनुसार आठ वर्ष की अवस्था में बालक गुरुकुल की परम्परा में उपनयन संस्कार से सुसंस्कृत होकर गुरु के चरणाश्रित हो वेद एवं उपनिषद का अध्ययन करता है। पहले वेद उपनिषद को याद कर लेता है एवं तत्पश्चात् उनके अर्थ समझने की जिज्ञासा से वैदिक यज्ञों के बारे में पूर्वमीमांसा, देवतागणों के बारे में देवताकाण्ड, तथा ब्रह्म के बारे में उपनिषद के अध्ययन से लाभान्वित होता है। यज्ञों की उपादेयता स्वर्ग की प्राप्ति करना ही है जो कि कालक्रम में सुखोपभोग के कारण क्षीण होते जाता है एवं प्राणी पुनः जन्म मरण की

आवृत्ति में लौट जाता है। उपनिषद के अध्ययन काल में यज्ञों की सीमित उपादेयता से अवगत होकर ब्रह्म के बारे में सतही ज्ञान को ध्यान एवं भक्ति से सुदृढ़ करना चाहता है जिससे कि चिरअभिलषित वैकुण्ठ लोक के शाश्वत पद की प्राप्ति हो सके। अतः ब्रह्मसूत्र की असीम उपयोगिता समझ में आती है। ब्रह्मसूत्र का प्रथम सूत्र 'अथः अतः ब्रह्मजिज्ञासा' इसी भाव को चित्रित करता है कि पूर्वमीमांसा की सीमित उपादेयता को जानने के पश्चात 'इसलिये अब ब्रह्म के बारे में जानने की जिज्ञासा' होती है।

भगवदरामानुज के श्रीभाष्य का पहला श्लोक श्रीनिवास भगवान की बंदना है : 'वेद वेदान्त उपनिषद में आपका ही जाज्वल्यमान स्वरूप प्रतिपादित है। आप से ही संपूर्ण जगत की सृष्टि हुई है। आप ही सबका पालन करते हैं एवं जगत के भंग होने पर आप में ही सबों का प्रत्यावर्तन होता है। यह सब आपकी सहज कीड़ा है। आपकी भक्ति एवं प्रपत्ति का आश्रय लेने पर आप मोक्ष प्रदान करते हैं। अतः आप कृपापूर्वक मुझे भक्ति के ज्ञानस्वरूप से अभिषिक्त करें।

‘अखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गादिलीले विनतविविधभूतव्रातरक्षैकदीक्षे।

श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा।१।’

पराशर के पुत्र यानी व्यासजी ने उपनिषद रूपी क्षीरसागर के बीच से अमृततुल्य वचन निकालकर संसार के दावानल से दग्ध प्राणियों के हितार्थ सञ्जीवन औषधि के रूप में प्रदान किया है। यह पुराकाल के गुरु से संरक्षित रहा है परंतु अनेक विवादास्पद मतावलंबियों के कारण संप्रति छिप गया है। सुधी जन अब हमारे शब्दों में प्रस्तुत व्याख्या से नित्य अवश्य लाभ उठायें।

पाराशर्यवचस्सुधामुपनिषद्गुग्धाब्धिमध्योद्धृतां संसाराग्निविदीपनव्यपगतप्राणात्मसञ्जीवनीम् ।

पूर्वाचार्यसुरक्षितां बहुमतिव्याघातदूरस्थिताम् आनीतां तु निजाक्षरैस्सुमनसो भौमाः पिबन्त्वन्वहम् ।२।

अध्याय सार

श्रीभाष्य के चारों अध्याय एवं सोलहों पाद को भगवदरामानुज ने पृथक पृथक शीर्षक से सम्बोधित किया है। श्रीवेदान्त देशिक स्वामी ने श्रीभाष्य पर लिखे गये 'अधिकरण सारावली' में श्रीमन्नारायण के अनंतकल्याण गुण का सुगम तरीके से वर्णन किया है।

श्रीभाष्य के सूत्रों के व्याख्यान के क्रम में उल्लिखित उपनिषद हैं : इसावस्योपनिषद, केनोपनिषद, कठोपनिषद, मुण्डकोपनिषद, माण्डूक्योपनिषद, प्रश्नोपनिषद, इतरेय उपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद, वृहदारण्यक उपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद, कौशितकी उपनिषद, श्वेताश्वेतर उपनिषद, सुबालोपनिषद, महोपनिषद, अग्नि रहस्य, अथर्व शिखोपनिषद, मैत्रायनी उपनिषद आदि।

प्रत्येक वेदान्त के विषयवस्तु तत्व, हित, एवं पुरुषार्थ के क्रम में संकलित हैं। 'तत्व' का तात्पर्य है परमसत्य। 'हित' से तत्व के प्राप्ति हेतु उपयोग में लाये गये समुचित साधन से तात्पर्य है। 'पुरुषार्थ' परमलक्ष्य मोक्ष का द्योतक है। चेतन जीव, दृश्यमान जगत, एवं इश्वर को तत्व कहते हैं।

उपर्युक्त मूल प्रतीक शब्दों 'तत्व', 'हित', एवं 'पुरुषार्थ', में 'पर' जोड़ देने से ये 'परतत्व' 'परमित' एवं 'परमपुरुषार्थ' कहे जाते हैं। परतत्व श्रीमन्नारायण हुए। परमित श्रीमन्नारायण के श्रीचरणों में प्रपत्ति है। परमपुरुषार्थ वैकुण्ठलोक में दिव्यदंपति के चरणों की अनवरत सेवा है।

श्रीभाष्य का पहला दो अध्याय 'तत्व' का विवेचन करता है। तीसरे अध्याय का विषयवस्तु 'हित' है। चौथे अध्याय में 'पुरुषार्थ' की प्राप्ति का विवरण है। श्रीभाष्य के चारो अध्याय को क्रमशः 'समन्वय' 'अविरोध' 'साधना' एवं 'फल' शीर्षक से जानते हैं।

प्रथम अध्याय के 'समन्वय' नाम में 'अन्वय' शब्द का अर्थ होता है सम्बंध या जोड़। समन्वय का शाब्दिक अर्थ हुआ समुचित सम्बंध। इस अध्याय में सूत्रकार बादरायण ने अनेक उपनिषदों का उद्धरण देकर जगत की सृष्टि का विवरण दिया है। जगत के रचयिता को 'जगत कारण' कहा है। सत, असत, ब्रह्म, आत्मा, आकाश, प्राण, ज्योति, हिरण्यगर्भा, शंभु, नारायण आदि विभिन्न नामों से जगत कारण वस्तु को सम्बोधित किया है। श्रीमन्नारायण ही जगत के एकमात्र रचयिता हैं। महोपनिषद से यह प्रमाणित होता है कि प्रलयकाल में श्रीमन्नारायण एवं महालक्ष्मी के अतिरिक्त कोई नहीं था। इस उपनिषद में उल्लिखित है कि श्रीमन्नारायण ने ही चतुरानन ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि देवताओं की सृष्टि की। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीमन्नारायण ही एकमात्र जगतकारण वस्तु हैं तथा उपर्युक्त अनेकों नाम आपके लिये ही प्रयुक्त हैं। प्रथम अध्याय में श्रीमन्नारायण के 'कारणत्व' गुण का वर्णन है।

दूसरे अध्याय का नाम है 'अविरोध'। विरोध का अर्थ है आपत्ति। अतः अविरोध का अर्थ हुआ 'अनापत्ति यानी विरोधविहीन'। सूत्रकार ने इस अध्याय में श्रीमन्नारायण के जगतकारणत्व के विपक्ष में दिये गये सभी तर्कों

को निरस्त कर दिया है। इस अध्याय में श्रीमन्नारायण के अनंतकल्याण गुण 'अबध्यत्व' यानी अनापत्ति का प्रतिपादन किया है।

'साधना' नाम के तीसरे अध्याय में अक्षय आनंद मोक्ष की प्राप्ति का उपाय वर्णित है। श्रीमन्नारायण ही उपाय यानी साधन हैं तथा प्राप्ति के लक्ष्य यानी 'उपेय' हैं। भक्ति तथा प्रपत्ति श्रीमन्नारायण को प्रसन्न करके उनकी करुणा का कारण बनता है। आपको 'सिद्धोपाय' एवं भक्ति या प्रपत्ति को 'सध्योपाय' कहा गया है। भक्ति अगाढ़ ध्यान है तथा प्रपत्ति श्रीचरणों में समर्पण है। तीसरे अध्याय में श्रीमन्नारायण के अनंतकल्याण गुण 'उपायत्वम्' यानी 'नारायण ही सुगम मार्ग हैं' का प्रतिपादन किया गया है।

'फल' नामक चौथे अध्याय में परमलक्ष्य की प्राप्ति चित्रित है। श्रीवैकुण्ठ परमपदधाम में दिव्यदंपति के श्रीचरणों की सेवा प्राप्ति ही परमलक्ष्य है। इस अध्याय में अनंतकल्याण गुण 'उपेयत्व' का वर्णन है। 'उपेय' का अर्थ है लक्ष्य की वस्तु। दिव्यदंपति श्रीमन्नारायण जो कभी भी अलग नहीं होने वाले लक्ष्मी के साथ रहते हैं एकमात्र लक्ष्य के वस्तु हैं यानी 'उपेय' हैं।

'समन्वय' नामक पहले अध्याय में जगत की सृष्टि का विशद विवरण है। वेद के कुछ वाक्य 'जीवात्मा' को सृष्टि का कारण यानी सृष्टिकार बताते हैं तथा कुछ अन्य वाक्य दृश्यमान जगत के जड़ पदार्थ यानी 'प्रकृति' को सृष्टि का प्रधान कारण या सृष्टिकार मानते हैं। इस तरह के वाक्यों को पहले अध्याय के चारो पाद में चार तरह की दीर्घा में रखा गया है।

पहले अध्याय का पहला पाद बहुत ही संदिग्ध अर्थ वाले यानी अस्पष्टतर वाक्यों का उल्लेख करता है। इसमें 'अस्पष्टतर जीवादि लिङ्ग वाक्य' का उल्लेख है इसलिये इसे 'अस्पष्टतर जीवादि लिङ्ग पाद' कहते हैं। श्रीमन्नारायण एकमात्र स्रष्टा हैं अतः अनंतकल्याणगुण 'स्रष्टत्वम्' का इस पाद में प्रतिपादन किया गया है।

पहले अध्याय का दूसरा पाद संदिग्ध या कुछ अस्पष्ट अर्थ वाले वाक्यों का पाद है। अतः दूसरे पाद को 'अस्पष्ट जीवादि लिङ्ग पाद' कहते हैं। इसमें अनंतकल्याण गुण 'देही' उद्भाषित है। सब जड़ चेतन में श्रीमन्नारायण की अर्न्तयामी स्थिति ही 'देही' का द्योतक है। जड़ चेतन श्रीमन्नारायण के देह यानी शरीर हैं और आप उस देह के स्वामी यानी देही हैं। आप ही समस्त जीव एवं पदार्थ की आत्मा हुए। यह पाद 'देहीत्वम्' कल्याणगुण का प्रतिपादक है।

पहले अध्याय का तीसरा पाद जगतकारण के स्पष्ट अर्थ वाले वाक्यों का पाद है। इसे 'स्पष्ट जीवादि लिङ्ग पाद' कहते हैं। इसमें अनंतकल्याणगुण 'स्वनिष्ठा' यानी अपने को संयोगते हुए आप स्वेच्छा से ही समस्त जगत के आधार हैं। अतः यह 'स्वनिष्ठात्वम्' गुण का पाद है।

पहले अध्याय का चौथा पाद जगतकारण के बहुत ही स्पष्ट वाक्यों का उल्लेख करता है। बहुत स्पष्ट यानी 'स्पष्टतर'। अतः इसे 'स्पष्टतर जीवादिलिङ्ग पाद' कहा गया। इस पाद में ब्रह्म को 'निरावधि महिमा' वाला

कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि श्रीमन्नारायण असीमित महिमा बड़प्पन वाले हैं। जगत के लिये उपादान या निमित्त कारण होने के फलस्वरूप आपकी महानता असीम एवं अनंत है। इस जगत के किसी भी वस्तु के तीन कारण हैं। निश्चित पदार्थ से बनने के कारण पहला कारण 'उपादान कारण' हुआ। दूसरा व्यवहारयुक्त कारण या क्रियात्मक कारण है जिसे 'निमित्त कारण' कहते हैं। बहुत सारे उपकरणों की सहायता से जैसे गहना बनाया जाता है उसीतरह अनेकों उपकरणों की सहायता से बनने के कारण तीसरा 'सहकारी कारण' कहा जाता है।

श्रीमन्नारायण स्वेच्छा से जगत का निर्माण करते हैं तथा आपको किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती इसलिये सहकारी कारण निमित्त कारण में ही अन्तर्निहित है। आप ही उपादान कारण भी हैं। आपकी एक ही इकाई में दोनों उपादान एवं निमित्त कारण समाहित हैं। अतः पहले अध्याय के चौथे पाद को अनंतकल्याणगुण 'निरवधि महिमात्वम' का पाद कहते हैं।

दूसरे अध्याय के पहले पाद को 'स्मृति पाद' कहते हैं। भगवान विष्णु के अवतार कपिल ने बौद्ध मत की तरह निरीश्वर सांख्य मत का प्रतिपादन किया। चूंकि यह वेद एवं उपनिषद के सिद्धांत के विरुद्ध है इसलिये ग्राह्य नहीं है। कपिल ने कपिल स्मृति के माध्यम से विष्णु को जगत के कारण होने को नकारते हुए विपक्षमत प्रस्तुत किया है। कपिल ने प्रकृति को ही जगत का कारण प्रतिपादित किया है। ब्रह्मसूत्र के सूत्रकार ने कपिल के सिद्धांत को अस्वीकारते हुए श्रीमन्नारायण को ही जगत का कारण प्रतिपादित किया है। आप इस पाद में 'अपस्थ बाधा' कहे जाते हैं यानी आपको चुनौती नहीं दी जा सकती। इस पाद का अनंतकल्याण गुण 'अपस्थबाधत्वम' है।

दूसरे अध्याय के दूसरे पाद को 'तर्क' पाद कहते हैं। सूत्रकार ने सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, पाशुपात्य, जैसे विपक्षी मतों के दोष को उद्भाषित करते हुए सबों को नकार दिया है। अंत में पाञ्चरात्र आगम के नियमों को भगवान के पूजन की समुचित विधि के रूप में वैदिक मत के अनुरूप बताया है। इस पाद को 'श्रीतप्त' कहा गया तथा अनंतकल्याण गुण को 'श्रीतप्तत्वम' कहते हैं। दूसरे अध्याय के तीसरे पाद को 'वियत' पाद कहते हैं। इस पाद में पंचभूत के अवयव आकाश, वायु, अग्नि, जल, एवं पृथ्वी को सृष्टि की मौलिक इकाई कहा गया है। इनके रूपांतरण से सृष्टि अनवरत चलती रहती है। इस रूपान्तरण को 'अन्यतभाव' कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि जैसे घड़े में मिट्टी को केवल स्वरूप प्राप्त होता है परंतु घड़े के भंग होने पर मौलिक इकाई मिट्टी सदा वर्तमान रहती है। इसी तरह से जीव शाश्वत हैं एवं उनका नाश नहीं हो सकता। धर्मभूत ज्ञान के माध्यम से जीव को वस्तु पहचानने की शक्ति प्राप्त है तथा जीव विशिष्ट रूपांतरण होता है। यह धर्मभूत ज्ञान की सीमा शून्य से श्रीमन्नारायण 'ख' यानी आकाश एवं जीवात्मा का रूपांतरण करते हैं। यहां आकाश सभी पंचभूतों का द्योत्तक है। पंचभूत के रूपांतरण के लिये उपयुक्त शब्द है 'स्वरूप अन्यतभाव' तथा जीवात्मा के रूपांतरण को 'स्वाभाव अन्यतभाव' कहते हैं। इस पाद का कल्याण गुण हुआ 'खात्मादेहः उचित ज्ञान कृत्वम'।

दूसरे अध्याय के चौथे पाद को इन्द्रियपाद कहते हैं। श्रीमन्नारायण ही सभी संवेदन के नियामक हैं। इसे 'इन्द्रियदेह ः उचित ज्ञान कृत्व' कहते हैं तथा कल्याण गुण 'इन्द्रियदेह ः उचित ज्ञान कृत्वम्' हुआ।

तीसरे अध्याय के पहले पाद को 'वैराग्य पाद' कहते हैं। वैराग्य का अर्थ है रागहीनता। रागविहीन होकर यानी मोह का त्याग करके इस लोक या स्वर्ग में रहने की प्रवृत्ति को वैराग्य कहते हैं। मोह के त्याग से शाश्वत अनंत आनंद की प्राप्ति होती है जिसे मोक्ष कहते हैं। बद्ध जीव द्वारा इस संसार के विभिन्न अवस्थाओं में दुःख भोगना पड़ता है। जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, एवं मूर्च्छा अवस्था के चार भेद हैं। श्रीमन्नारायण को इस पाद में 'संसृत्यौ तंत्र वाही' कहते हैं। नारायण ही इस संसार में जीव का परिभ्रमण कराते हैं। अनंतकल्याण गुण को 'संसृत्यौ तंत्र वहित्वम्' कहते हैं।

तीसरे अध्याय के दूसरे पाद को 'उभय लिंग पाद' कहते हैं। इसमें श्रीमन्नारायण के दो गुण 'हेयप्रत्यनीकत्व' एवं 'कल्याणगुणकारत्व' को चित्रित दिया गया है। पहला गुण दोषहीनता को बताता है एवं दूसरा नारायण को मंगलमयगुणों का कोष बताता है। 'निर्दोषत्वादि रम्यत्वम्' इस पाद का अनंतकल्याणगुण है।

तीसरे अध्याय का तीसरा पाद 'गुण उपसंहार पाद' कहा जाता है। इसमें भक्तियोग में सहायक 32 ब्रह्मविद्या का वर्णन है जो मोक्ष प्रदायी कहे जाते हैं। जैसा कि उपनिषदों में वर्णित है नारायण पर ध्यान केन्द्रित करने की कुशलता ब्रह्मविद्या से आती है। भक्तियोग की अभिवृद्धि कराते हैं। विभिन्न ब्रह्मविद्याओं में नारायण ही ध्यान के लक्ष्य हैं। इसे बहुभजनपाद भी कहते हैं तथा प्रपत्ति को स्वतंत्र साधन बताते हैं। द्रष्टव्य सूत्र 3।3।56 'नाना शब्दादि भेदात्'।

तीसरे अध्याय के चौथे पाद को 'अंग पाद' कहते हैं। इसमें भक्तियोग के सहायक पूर्ववर्ती नियमों का उल्लेख है। भगवान को 'स्वराह कर्म प्रसादय' कहते हैं। अपने आश्रम एवं वर्ण के लिये निर्धारित दैनिक पूजा विधि को संपादित करने वाले पर प्रभु दयावान रहते हैं।

चौथे अध्याय के पहले पाद को 'आवृत्ति पाद' कहते हैं। यहां ध्यान की विधि का वर्णन है। मोक्ष की प्राप्ति तक प्रतिदिन भक्ति योग की आवृत्ति की जाती है। यहां भगवान को भक्ति एवं प्रपत्ति करने वाले का 'पापछित' यानी पाप का विनाशक कहा गया है।

चौथे अध्याय के दूसरे पाद को 'उत्क्रान्ति पाद' कहते हैं। यहां जीव का नश्वर शरीर छोड़कर मोक्ष के मार्ग पर महाप्रयाण करने की प्रक्रिया का वर्णन है। इस पाद में भगवान को 'ब्रह्मनाडी गति कृत' कहते हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि ब्रह्मनाडी में जीव के प्रवेश को भगवान सुगम बनाते हैं। नाभि से शिर तक की नाडी को ब्रह्मनाडी कहते हैं। अगर जीव शरीर छोड़कर इस नाडी से बाहर आता है तो उसे मोक्ष मिलता है।

चौथे अध्याय के तीसरे पाद को 'गति पाद' कहते हैं। जब जीवात्मा मुक्त होता है तो उसके वैकुण्ठ गमन के मार्ग को अर्चिरादि मार्ग कहते हैं। भगवान का नाम 'अतिवाह' है। आप 12 पार्षदों की सहायता से जीव को अर्चिरादिमार्ग से वैकुण्ठ में लाते हैं।

चौथे अध्याय के चौथे पाद को 'फल पाद' कहते हैं। यहां जीव का दिव्यदंपति श्रीमन्नारायण एवं माता लक्ष्मी के चरणों की सेवा प्राप्त होने की विधि का वर्णन है जिससे कि जीव शाश्वत काल के लिये प्रभु की सेवा के अनंत आनन्द में निमग्न हो जाता है। सृष्टि की शक्ति एवं लक्ष्मी के दाम्पत्य को छोड़कर भगवान जीव को अपने तुल्य बना देते हैं। यहां भगवान का नाम 'साम्यद' है यानी जो समानता प्रदान करते हैं।

तालिका क 1 : अध्यायवत पाद, अधिकरण, एवं सूत्र की संख्या

क्रमांक	अध्याय	पाद	सूत्र की संख्या	अधिकरण की संख्या	उतरोत्तर सूत्र	उतरोत्तर अधिकरण
1	1	1	32	11	32	11
2		2	33	6	65	17
3		3	44	10	109	27
4		4	29	8	138	35
5	2	1	36	10	174	45
6		2	42	8	216	53
7		3	52	7	268	60
8		4	19	8	287	68
9	3	1	27	6	314	74
10		2	40	8	354	82
11		3	64	26	418	108
12		4	51	15	469	123
13	4	1	19	11	488	134
14		2	20	11	508	145
15		3	15	5	523	150
16		4	22	6	545	156

तालिका क 2 : अध्यायवत सूत्र एवं अधिकरण

अध्याय	सूत्र	अधिकरण
1	138	35
2	149	33
3	182	55
4	76	33

तालिका ख 1 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

1। पहला अध्याय का पहला पाद : समन्वय अध्याय, अस्पष्टतर जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद

सूत्र 32 अधिकरण 11

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	ब्रह्म के कल्याणगुण ¹ एवं अधिकरण कर्मांक ²
1। जिज्ञासाधिकरण	ब्रह्म के बारे में जिज्ञासा	1	अकृत यानी आप वैकुण्ठ में सर्वदा रहते हैं। 1।1।1
2। जन्माद्याधिकरण	ब्रह्म की परिभाषा	2	विश्वहेतु यानी आप जगत के नियंता हैं जो मात्र आपके साथ लागू होता है। 1।1।2
3। शास्त्रयोनित्वाधिकरण	शास्त्र ही ब्रह्म का प्रतिपादक	3	शास्त्रिका स्थापनीय यानी मात्र वैदिक शास्त्र से ही प्रतिपादित हैं। 1।1।3
4। समन्वयाधिकरण	सभी वेदान्त के ब्रह्म ही मुख्य विषय वस्तु	4	निरूपाधि परमप्रेम योग्याः यानी अनन्त एवं शाश्वत आनन्द हैं। 1।1।4
5। ईक्षत्यधिकरण	आदिकारण	5 से 12	स्वेच्छातः सर्वहेतु यानी अपनी इच्छा से जगत के रचयिता हैं। 1।1।5
6। आनंदमयाधिकरण	ब्रह्म के आनन्दमय गुण	13 से 20	शुभगुण विभव अनन्त निस्सीम हर्ष यानी अनन्त कल्याणगुण के कोष हैं। 1।1।6
7। अन्तराधिकरण	ब्रह्म सूर्यमंडल में आंख की तरह स्थित	21 एवं 22	शुद्ध अकर्म उत्था दिव्याकृति यानी रजोगुण तमोगुण मुक्त युवा एवं अप्राकृत शरीरवाले। 1।1।7
8। आकाश अधिकरण	आकाश ब्रह्म का सूचक	23	अनुपाधिका अक्सनाड़ी स्वभाव यानी काल स्थान एवं वस्तु से अनन्त तथा सर्वत्र देदीप्यमान। 1।1।8
9। प्राण अधिकरण	प्राण ब्रह्म का सूचक	24	सप्राण अप्राणभेद व्यतिभीदुर जगत प्राण यानी आप जड़ एवं चेतन वस्तु बनाकर उसमें वास करते हैं। 1।1।9
10। ज्योतिर अधिकरण	ज्योति ब्रह्म का सूचक	25 से 28	दिव्यदीप्ति यानी अनन्त आभा पूर्ण ज्योति। 1।1।10

¹ श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी के अधिकरण सारावली से।² 1।1।1 यानी अध्याय 1 पाद 1 अधिकरण 1।

11 इन्द्र प्राण अधिकरण	प्रतर्दन को इन्द्र का उपदेश	29 से 32	प्राणेन्द्रादि अन्तरात्मा यानी आप प्राण एवं इन्द्र की अर्न्तयामी आत्मा हैं। 1 1 11
--------------------------	-----------------------------	-------------	--

तालिका ख 2 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

2 | पहला अध्याय का दूसरा पाद : समन्वय अध्याय, अस्पष्ट जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद

सूत्र 33 अधिकरण 6

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ³
12 सर्वत्र प्रसिद्धि अधिकरण	मनोमय ब्रह्म का सूचक	1 से 8	1 2 1
13 अत्रधिकरण	भोक्ता ब्रह्म का सूचक	9 से 12	1 2 2
14 अन्तराधिकरण	आंख का केन्द्र ब्रह्म का सूचक	13 से 18	1 2 3
15 अन्तर्यामि अधिकरण	अन्तःकरण का शासक ब्रह्म का सूचक	19 से 21	1 2 4
16 अदृश्यत्वादिगुणक अधिकरण	अदृश्यमान होना ब्रह्म का सूचक	22 से 24	1 2 5
17 वैश्वानर अधिकरण	वैश्वानर ब्रह्म का सूचक	25 से 33	1 2 6

तालिका ख 3 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

3 | पहला अध्याय का तीसरा पाद : समन्वय अध्याय, स्पष्ट जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद

सूत्र 44 अधिकरण 10

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्रों की संख्या	अधिकरण कमांक ⁴
18 द्युभवादि अधिकरण	ब्रह्म में स्वर्ग पृथ्वी आदि स्थित	1 से 6	1 3 1
19 भूमाधिकरण	भूमण ब्रह्म है।	7 एवं 8	1 3 2
20 अक्षराधिकरण	अक्षर ब्रह्म है।	9 से 11	1 3 3
21 ईक्षतिकर्माधिकरण	ब्रह्म ध्यान के वस्तु हैं।	12	1 3 4
22 दहराधिकरण	छोटा आकाश ब्रह्म है।	13 से 22	1 3 5
23 प्रमिताधिकरण	अंगूठे के आकार का पुरुष ब्रह्म है।	23 एवं 24	1 3 6
	प्राण में कांपने वाले सभी वस्तुयें ब्रह्म हैं।	40 एवं 41	प्रमिताधिकरण अधिकरण 26 अपशूद्राधिकरण के

³ 1 | 2 | 1 यानी अध्याय 1 पाद 2 अधिकरण 1

⁴ 1 | 3 | 1 यानी अध्याय 1 पाद 3 अधिकरण 1

			वाद 40 एवं 41 सूत्रों से पूरा होता है।
24 देवताधिकरण	ब्रह्मविद्या के अधिकारी देवगण भी हैं।	25 से 29	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत है। 1 3 7
25 मध्व अधिकरण	कुछ उपासना के अधिकारी देवगण भी हैं।	30 से 32	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत है। 1 3 8
26 अपशूद्राधिकरण	ब्रह्मविद्या से शूद्रों का सम्बन्ध	33 से 39	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत है। 1 3 9
27 अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरण	नाम एवं स्वरूप दिखाने वाला आकाश ब्रह्म है।	42 से 44	1 3 10

तालिका ख 4 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

4 | पहला अध्याय का चौथा पाद : समन्वय अध्याय, स्पष्टतर जीवादिलिङ्ग वाक्य पाद

सूत्र 29 अधिकरण 8

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण I क्रमांक ⁵
28 अनुमानिकाधिकरण	कथा उपनिषद का महत् एवं अव्यक्त सांख्य से भिन्न हैं।	1 से 7	1 4 1
29 चमसाधिकरण	श्वेताश्वतर उपनिषद के तीन रंग वाले अज सांख्य प्रधान से भिन्न है	8 से 10	1 4 2
30 सांख्योपसंग्रहाधिकरण	वृहदारण्यक 4 4 17 का 5 गुना 5 सांख्य के 25 से भिन्न है	11 से 13	1 4 3
31 कारणत्वाधिकरण	ब्रह्म के आदिकारण होने में शास्त्र में द्वंद नहीं है।	14 एवं 15	1 4 4
32 जगद्धाचित्वाधिकरण	इस जगत के निर्माता ब्रह्म हैं न कि प्राण या आत्मा	16 से 18	1 4 5
33 वाक्यान्वयाधिकरण	श्रवण से सुने जाने वाली आत्मा ब्रह्म है	19 से 22	1 4 6
34 प्रकृति अधिकरण	ब्रह्म उपादान कारण हैं	23 से 28	1 4 7

⁵ 1 | 4 | 1 यानी पहले अध्याय के चौथे अध्याय का पहला अधिकरण।

35 सर्वव्याख्यान अधिकरण	समस्त वेदान्त कहता है ब्रह्म ही आदिकारण है	29	1 4 8
---------------------------	--	----	-----------

तालिका ख 5 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

5 | दूसरा अध्याय का पहला पाद : अविरोध अध्याय, स्मृति पाद

सूत्र 36 अधिकरण 10

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ⁶
36 स्मृति अधिकरण	श्रुति पर नहीं आधारित स्मृति को नकारना	1 एवं 2	2 1 1
37 योग प्रतियुक्ति अधिकरण	योग दर्शन को नकारना	3	2 1 2
38 विलक्षणत्वाधिकरण	जगत से भिन्न रहकर ब्रह्म इसका कारण है	4 से 12	2 1 3
39 शिष्टापरिग्रहाधिकरण	परमाणुवादी की तरह सांख्य भी अमान्य	13	2 1 4
40 भोक्तापत्यधिकरण	जड़ चेतन ब्रह्म के शरीर हैं परंतु ब्रह्म इनकी तरह सुख दुःख के अनुभव से मुक्त है	14	2 1 5
41 आरम्भणाधिकरण	कार्य रूपी जगत कारण रूपी ब्रह्म से भिन्न नहीं है।	15 से 20	2 1 6
42 इतरव्यपदेशाधिकरण	'ब्रह्म का जगत का कारण होने से जीव एवं जगत के दोष के लिये ब्रह्म ही दोषी है' इस मत का खंडन।	21 से 23	2 1 7
43 उपसंहारदर्शनाधिकरण	ब्रह्म किसी वस्तु एवं उपकरण के उपयोग के बिना सृष्टि करते हैं।	24 एवं 25	2 1 8
44 कृत्स्नप्रसक्ति अधिकरण	बिना टुकड़ों में बंटे हुए ब्रह्म जगत के उपादान कारण हैं।	26 से 31	2 1 9
45 प्रयोजनत्वाधिकरण	सृष्टि की रचना ब्रह्म अपनी क्रीड़ा के लिये करते हैं।	32 से 36	2 1 10

तालिका ख 6 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

6 | दूसरा अध्याय का दूसरा पाद : अविरोध अध्याय, तर्क पाद

सूत्र 42 अधिकरण 8

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ⁷
46 रचनानुपपत्त्यधिकरण	सांख्य मत से प्रकृति का आदिकारण होने को निरस्त करना	1 से 9	2 2 1

⁶ 2 | 1 | 1 यानी अध्याय 2 के पाद 1 का पहला अधिकरण।

⁷ 2 | 2 | 1 यानी अध्याय 2 पाद 2 अधिकरण 1

47 महत् दीर्घाधिकरण	वैशेषिक मत के परमाणु वाद को नकारना	10 से 16	2 2 2
48 समुदायाधिकरण	बौद्ध मत के यथार्थवाद का खंडन	17 से 26	2 2 3
49 उपलब्धि अधिकरण	बौद्ध मत के सृष्टि सिद्धान्त का खंडन	27 से 29	2 2 4
50 सर्वथाअनुपपत्ति अधिकरण	बौद्ध मत के शून्य वाद का खंडन	1	2 2 5
51 एकस्मिन् असंभवाधिकरण	जैन मत का खंडन	31 से 34	2 2 6
52 पशुपति अधिकरण	पाशुपत मत का खंडन	35 से 38	2 2 7
53 उत्पत्ति असंभवाधिकरण	पांचरात्र का प्रतिपादन	39 से 42	2 2 8

तालिका ख 7 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में
7 | दूसरा अध्याय का तीसरा पाद : अविरोध अध्याय, वियत पाद

सूत्र 52 अधिकरण 7

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण क्रमांक ⁸
54 वियदधिकरण	आकाश शाश्वत नहीं है इसकी रचना होती है।	1 से 9	2 3 1
55 तेजोऽधिकरण	आकाश का निर्माण करने के कारण ब्रह्म सृष्टि के क्रम में अन्य वस्तुओं का भी नियामक है।	10 से 17	2 3 2
56 आत्माधिकरण	जीव शाश्वत है इसकी रचना नहीं होती है।	1	2 3 3
57 ज्ञाधिकरण	जीव का स्वभाव एवं आकार	19 से 32	2 3 4
58 कर्तृ अधिकरण	जीवात्मा एक उपकरण है।	33 से 39	2 3 5
59 परायत्ताधिकरण	जीव पूर्णतया परमात्मा पर निर्भर है।	40 एवं 41	2 3 6
60 अंशाधिकरण	जीव परमात्मा का शारीरिक अंश है।	42 से 52	2 3 7

तालिका ख 8 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में
8 | दूसरा अध्याय का चौथा पाद : अविरोध अध्याय, इन्द्रिय पाद

सूत्र 19 अधिकरण 8

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण क्रमांक ⁹
--------	-----------------	-------	-----------------------------

⁸ 2 | 3 | 1 यानी अध्याय 2 पाद 3 अधिकरण 1

⁹ 2 | 4 | 1 यानी अध्याय 2 पाद 4 अधिकरण 1

61 प्राण उत्पत्ति	अवयवों की सृष्टि	1 से 3	2 4 1
62 सप्तगति अधिकरण	अवयवों की संख्या	4 से 5	2 4 2
63 प्राण अनुत्वाधिकरण	अवयव सूक्ष्म होते हैं।	6 से 7	2 4 3
64 वायुक्रियाधिकरण	मुख्यप्राण यानी श्वास, वायु एवं उसके कार्य से भिन्न है।	8 से 11	2 4 4
65 श्रेष्ठ अणुत्वाधिकरण	मुख्यप्राण की सूक्ष्मता	12	2 4 5
66 ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरण	अवयवों के अधिकारी या अभिमानी देवता	13 से 14	2 4 6
67 इन्द्रियाधिकरण	मुख्यप्राण से अवयव भिन्न हैं।	15 से 16	2 4 7
68 संज्ञामूर्तिक्लृप्ति अधिकरण	नाम एवं स्वरूप का निर्धारण परमात्मा का कार्य है न कि जीवात्मा का।	17 से 19	2 4 8

तालिका ख 9 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में
9 | तीसरा अध्याय का पहला पाद 8 साधना अध्याय, वैराग्य पाद

सूत्र 27 अधिकरण 6

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण के क्रमांक ¹⁰
69 तदन्तरप्रतिपत्ति अधिकरण	शरीर छोड़ने के समय जीव प्राण, मन, एवं इन्द्रियों को साथ रखता है।	1 से 7	3 1 1
70 कृतात्यय अधिकरण	बचे हुए कर्म के कारण जीव स्वर्ग से लौट आता है।	8 से 11	3 1 2
71 अनिष्टादिकार्यधिकरण	मृत्यु के बाद जीव चंद्र के पास जाता है।	12 से 21	3 1 3
72 तत्स्वाभाव्यापत्यधिकरण	चंद्र से वापस आने में जीव आकाश वायु आदि के गुणों को ग्रहण करता है परंतु उनका स्वरूप नहीं धारण करता।	1	3 1 4
73 नातिचिराधिकरण	जीव की वापसी यात्रा अल्प अवधि की होती है।	1	3 1 5
74 अन्याधिष्ठित अधिकरण	वृक्षों में जब जीव प्रवेश करता है तो उनसे जुड़ा मात्र रहता है न कि उनके जीवन का अंग बनता है।	24 से 27	3 1 6

¹⁰ 3 | 1 | 1 यानी अध्याय 3 पाद 1 अधिकरण 1

तालिका ख 10 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

10। तीसरा अध्याय का दूसरा पाद : साधना अध्याय, उभयलिङ्ग पाद

सूत्र 40 अधिकरण 8

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹¹
75। सन्ध्याधिकरण	जीव का स्वप्नावस्था	1 से 6	3 2 1
76। तदभावाधिकरण	जीव गाढ़ी निद्रा में यानी सुषुप्ति अवस्था	7 से 8	3 2 2
77। कर्मानुस्मृति शब्दविधि अधिकरण	सुषुप्ति से समान जीव का लौटना	1	3 2 3
78। मुग्धाधिकरण	मूर्च्छा का स्वभाव	1	3 2 4
79। उभयलिङ्ग अधिकरण	परमात्मा के गुण	11 से 25	3 2 5
80। अहिकुण्डल अधिकरण	परमात्मा एवं जड़ जीव के बीच सम्बन्ध	26 से 29	3 2 6
81। पराधिकरण	परमात्मा सर्वोपरि हैं। विभिन्न स्थिति उनके विभिन्न स्वरूप हैं।	30 से 36	3 2 7
82। फलाधिकरण	परमात्मा ही कृत्य के फल देने वाले हैं।	37 से 40	3 2 8

तालिका ख 11 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

11। तीसरा अध्याय का तीसरा पाद : साधना अध्याय, गुण उपसंहार पाद

सूत्र 64 अधिकरण 26

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹²
83। सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरण	वेदान्त से सभी ध्यान या उपासना समान हैं।	1 से 5	3 3 1
84। अन्यथात्वाधिकरण	प्रसंग की विभिन्नता	6 से 9	3 3 2
85। सर्वाभिदाधिकरण	सभी वस्तु की समानता	10	3 3 3
86। आनंदाद्यधिकरण	सभी उपासना में आनन्द है।	11 से 17	3 3 4
87। कार्याख्यानाधिकरण	कृत्य कार्य	18	3 3 5
88। समानाधिकरण	उपासना की समानता	19	3 3 6
89। सम्बन्धाधिकरण	सम्बन्ध	20 से 22	3 3 7
90। संभृत्यधिकरण	सभी शक्तियों के आधार	23	3 3 8
91। पुरुषविद्याधिकरण	पुरुष विद्या	24	3 3 9
92। वेधाद्यधिकरण	शांति पाठ विद्या से भिन्न है।	25	3 3 10
93। हानि अधिकरण	सत्कर्म एवं दुष्कर्म से मुक्ति	26	3 3 11
94। साम्पराय अधिकरण	प्रयाण के समय कर्म का त्याग	27 से 31	3 3 12

¹¹ 3 | 2 | 1 यानी अध्याय 3 पाद 2 अधिकरण 1¹² 3 | 3 | 1 यानी अध्याय 3 पाद 3 अधिकरण 1

95 अनियमाधिकरण	प्रतिबन्ध का हटना	32	3 3 13
96 अक्षरध्यधिकरण	अविनाशी की अवधारणा	33 से 34	3 3 14
97 अन्तरत्वाधिकरण	अन्तरात्मा	35 से 37	3 3 15
98 कामाद्यधिकरण	सच्ची आकांक्षा	38 से 40	3 3 16
99 तन्निर्धारणानियमाधिकरण	संकल्प की छूट	41	3 3 17
100 प्रदानाधिकरण	आहुति अर्पण	42	3 3 18
101 लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण	शुभ लक्षण की बहुलता	43	3 3 19
102 पूर्वविकल्पाधिकरण	प्रत्यक्ष अग्नि के विकल्प	44 से 50	3 3 20
103 शरीरभावाधिकरण	शरीर के भीतर आत्मा की उपस्थिति	51 से 52	3 3 21
104 अङ्गावबद्धाधिकरण	यज्ञ के अवयवों से जुड़ी उपासना	53 से 54	3 3 22
105 भूमज्यायस्त्वाधिकरण	सर्वांग उपासना	55	3 3 23
106 शब्दादिभेदाधिकरण	शास्त्र वाक्य या शब्द की विभिन्नता	56	3 3 24
107 विकल्पाधिकरण	विकल्प	57	3 3 25
108 यथाश्रयभावाधिकरण	अनुसंगी उपासना	58 से 64	3 3 26

तालिका ख 12 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

12 | तीसरा अध्याय का चौथा पाद : साधना अध्याय, अंग पाद

सूत्र 51 अधिकरण 15

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹³
109 पुरुषार्थ अधिकरण	मानव प्रयास या पुरुषार्थ के लक्ष्य	1 से 20	3 4 1
110 स्तुतिमात्रा अधिकरण	गौरवान्वित करना	21 से 22	3 4 2
111 पारिप्लवाधिकरण	प्रशस्ति की सीमा लांघना	23 से 24	3 4 3
112 अग्नीन्धनाद्यधिकरण	ब्रह्मचर्य को अग्नि हवन की आवश्यकता नहीं	25	3 4 4
113 सर्वापेक्षाधिकरण	कृत्य कार्य की आवश्यकता	26	3 4 5
114 शमदमाद्यधिकरण	शांतचित्त एवं स्वनियंत्रण	27	3 4 6
115 सर्वान्नानुमत्यधिकरण	सभी कुछ खाने की आज्ञा	28 से 31	3 4 7
116 विहितत्वाधिकरण	कार्य पर प्रतिबन्ध	32 से 35	3 4 8
117 विधुराधिकरण	वाह्य जनों के लिये ज्ञान की सार्थकता	36 से 39	3 4 9
118 तदभूताधिकरण	परमात्मा की अनुभूति करने वाले	40 से 43	3 4 10
119 स्वामी अधिकरण	यज्ञकर्ता की प्रधानता	44 से 45	3 4 11
120 सहकारी अन्तर्विधि अधिकरण	अन्य सहायता पर प्रतिबंध	46 से 48	3 4 12
121 अनाविष्काराधिकरण	जीव के स्वभाव का प्रस्फुटन अवरोध	49	3 4 13

¹³ 3 | 4 | 1 अध्याय 3 पाद 4 अधिकरण 1

122 ऐहिकाधिकरण	सांसारिक प्रगति	50	3 4 14
123 मुक्तिफलाधिकरण	मुक्ति का परिणाम	51	3 4 15

तालिका ख 13 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

13 | चौथा अध्याय का पहला पाद : फल अध्याय, आवृत्ति पाद

सूत्र 19 अधिकरण 11

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹⁴
124 आवृत्ति अधिकरण	उपासना को बार बार दुहराना	1 से 2	4 1 1
125 आत्मत्वोपासनाधिकरण	ब्रह्म को अपनी आत्मा मानकर उपासना करना	3	4 1 2
126 प्रतीकाधिकरण	संकेत चिह्न	4 से 5	4 1 3
127 आदित्यादिमत्यधिकरण	आदित्य पर विचार	6	4 1 4
128 आसीनाधिकरण	उपासना में बैठने की मुद्रा	7 से 11	4 1 5
129 आप्रयाणाधिकरण	जीवन पर्यन्त उपासना	12	4 1 6
130 तदधिगमाधिकरण	उपासना का फल	13	4 1 7
131 इतराधिकरण	सत्कार्य एवं उपासना	14	4 1 8
132 अनारब्धकार्याधिकरण	कृत्य जिनका फल मिलना प्रारंभ नहीं हुआ है।	15	4 1 9
133 अग्निहोत्राधिकरण	अग्निहोत्र एवं अन्य कृत्य	16 से 18	4 1 10
134 इतरक्षपणाधिकरण	अच्छे एवं बुरे कर्मों का विनाश	1	4 1 11

तालिका ख 14 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

14 | चौथा अध्याय का दूसरा पाद : फल अध्याय, उक्तान्ति पाद

सूत्र 20 अधिकरण 11

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹⁵
135 वागधिकरण	वाणी	1 से 2	4 2 1
136 मनोधिकरण	मन	3	4 2 2
137 अध्यक्षाधिकरण	इन्द्रियों का प्रधान यानी मुख्यप्राण श्वास	4	4 2 3
138 भूताधिकरण	पंचभूत	5 से 6	4 2 4
139 आसृत्युपकमाधिकरण	परमात्मा से मिलन	7 से 13	4 2 5
140 परिसंपत्ति अधिकरण	परमात्मा में सूक्ष्म भूतों का विलीन होना	14	4 2 6

¹⁴ 4 | 1 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 1 अधिकरण 1

¹⁵ 4 | 2 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 2 अधिकरण 1

141 अविभागाधिकरण	जीवात्मा की अविभाजिता	15	4 2 7
142 तदेकोधिकरण	जीवात्मा का वासस्थान हृदय	16	4 2 8
143 रश्म्यनुसाराधिकरण	सूर्य किरण का अनुगमन	17	4 2 9
144 निशाधिकरण	रात्रि काल में भी परमात्मा मिलन	18	4 2 10
145 दक्षिणायनाधिकरण	सूर्य की दक्षिणायन गति	19 से 20	4 2 11

तालिका ख 15 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

15 | चौथा अध्याय का तीसरा पाद : फल अध्याय, गति पाद

सूत्र 15 अधिकरण 5

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹⁶
146 अर्चिरादि अधिकरण	अर्चिरादि गति	1	4 3 1
147 वाय्वधिकरण	वायु के अधिकारी देवता	2	4 3 2
148 वरूणाधिकरण	वरूण	3	4 3 3
149 आतिवाहिकाधिकरण	मार्गदर्शन कराने वाला अतिवाहिक	4 एवं 5	4 3 4
150 कार्याधिकरण	हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा	6 से 15	4 3 5

तालिका ख 16 : अधिकरण के प्रतिपाद्य विषय एक झलक में

16 | चौथा अध्याय का चौथा पाद : फल अध्याय, फल पाद

सूत्र 22 अधिकरण 6

अधिकरण	प्रतिपाद्य विषय	सूत्र	अधिकरण कमांक ¹⁷
151 संपद्याविर्भावाधिकरण	मुक्तात्मा के नैसर्गिक या कल्याण गुण का प्रस्फुटन	1 से 3	4 4 1
152 अविभागेन दृष्टत्वाधिकरण	मुक्ति में परमात्मा से अपृथकता का आनन्द	4	4 4 2
153 ब्रह्माधिकरण	ब्रह्मप्राप्ति के निश्चित कल्याण गुण	5 से 7	4 4 3
154 संकल्पाधिकरण	मुक्तात्मा ईच्छा से सबकुछ प्राप्त करता है।	8 से 9	4 4 4
155 अभवाधिकरण	मुक्तात्मा का शरीर तथा बिना शरीर की स्थिति	10 से 16	4 4 5
156 जगदव्यापारवर्जाधिकरण	जगत की सृष्टि पालन तथा संहार में मुक्तात्मा का कोई अधिकार नहीं।	17 से 22	4 4 6

¹⁶ 4 | 3 | 1 अध्याय 4 पाद 3 अधिकरण 1

¹⁷ 4 | 4 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 4 अधिकरण 1

श्रीभाष्य परिचय

पहले अध्याय का पहला पाद

(समन्वय अध्याय, अस्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य पाद, 32 सूत्र, 11 अधिकरण)

पहले अध्याय के पहले पाद में 11 अधिकरण हैं। अधिकरण पाद का युक्तिसंगत एवं प्रासंगिक विभाजन करता है। एक अधिकरण का विषय वस्तु पूर्व के अधिकरण एवं बाद के अधिकरण से जुड़ा रहता है जिसे 'संगति' कहते हैं। इसी सम्बंध या संगति के आधार पर मीमांसा शास्त्र को आठ भाग में विभाजित किया जाता है। ये आठ भाग हैं : शास्त्र, काण्ड, द्विक, अध्याय, पाद, पेटिका, अधिकरण एवं सूत्र।

सभी वैदिक एवं धार्मिक रचनायें शास्त्र हैं। वेद एवं उपनिषद की विवेचना करके तात्पर्य समझाने वाली कृति को मीमांसा कहते हैं। शास्त्र का वृहत विभाजन 'कर्मकाण्ड' एवं 'ब्रह्म काण्ड' में किया जाता है। जो वेद के यज्ञ एवं इष्टि वाले भाग का विवेचन करता है वह कर्मकाण्ड है। यज्ञ से स्वर्ग सम्बन्धित कामना की पूर्ति होती है एवं पशु की बलि दी जाती है। यज्ञ कर्ता के साथ बलि का पशु भी स्वर्ग प्राप्त करता है। इष्टि से सांसारिक कामना की पूर्ति होती है। जैसे पुत्रेष्टि यज्ञ से संतान, वायव्य इष्टि यज्ञ से धन, एवं करीरी इष्टि यज्ञ से वर्षा की प्राप्ति होती है। इष्टि में किसी पशु की बलि नहीं दी जाती। कर्मकाण्ड को ही पूर्वमीमांसा या कर्ममीमांसा या कर्मबंध मीमांसा कहते हैं।

ब्रह्म काण्ड का भाग वेद के उस अंश का तात्पर्य बताता है जो केवल परम नियंता श्रीमन्नारायण से सम्बन्धित है। कर्मकाण्ड एवं ब्रह्म काण्ड के सम्बंध को काण्ड संगति से जोड़ते हैं। ब्रह्म काण्ड द्विक में विभाजित है : पूर्व द्विक एवं उत्तर द्विक। द्विक का अर्थ होता है 'दो अध्याय की एक जोड़ी'।

पूर्व द्विक या प्रथम द्विक को 'सिद्ध द्विक' कहते हैं। इसमें ब्रह्म को जगत की सृष्टि के आदि कारण के रूप में चित्रित किया गया है। उत्तर द्विक को 'साध्य द्विक' कहते हैं तथा इसमें भक्ति एवं प्रपत्ति से नारायण को प्राप्त करने के मार्ग का वर्णन है। पूर्व द्विक एवं उत्तर द्विक के सम्बंध को द्विक संगति कहते हैं।

ब्रह्म काण्ड में समन्वय, अविरोध, साधना, एवं फल नामके चार अध्याय हैं। एक अध्याय से दूसरे पूर्ववर्ती या परवर्ती अध्याय के सम्बंध को अध्याय संगति कहते हैं। इसी तरह से हर अध्याय में चार पाद हैं एवं कुल सोलहो पाद के सम्बंध को पाद संगति कहते हैं। कई समान विषयवस्तु वाले अधिकरणों के समूह को पेटिका कहते हैं जो पाद को विभाजित करते हैं। आगे की पेटिका एवं पीछे की पेटिका के सम्बंध को पेटिका संगति कहते हैं। इसी तरह से अधिकरणों के परस्पर सम्बंध को अधिकरण संगति एवं सूत्र के सम्बंध को सूत्र संगति कहते हैं। उपर्युक्त उल्लिखित आठ संगतियों में अधिकरण संगति सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें सम्बन्धित उपनिषद का युक्तिसंगत उल्लेख कर विषय वस्तु को सम्यक तरीके से प्रतिपादित किया जाता है। अधिकरण के सम्बंध को पांच भागों में बांटा गया है : संगति, विषय, संशय उत्तानकरणम, पूर्वपक्ष, एवं सिद्धांत। विवेचन में संशय

का उठना स्वाभाविक है एवं ऐसी संदिग्ध स्थिति को संशय उत्तानकरणम कहते हैं। हर विचार या सिद्धांत का एक विरोधी विचार होता है। जो विपक्ष का काम करता है वह पूर्वपक्ष कहा जाता है।

पहले अध्याय के पहले पाद में 11 अधिकरण हैं। पहला चार अधिकरण : 1। जिज्ञासा, 2। जन्मादि, 3। शास्त्र योनित्व, एवं 4। समन्वय एक पेटिका के अन्तर्गत हैं। ये अधिकरण परिचयात्मक हैं तथा पूर्वपक्ष के सिद्धांत का खण्डन करते हैं।

क्रमशः तीन अधिकरण : 5। इक्षत्यधिकरण 6। आनन्दमयाधिकरण 7। अन्तरधिकरण दूसरी पेटिका में हैं। यहां का उल्लेख बताता है कि जड़ ब्रह्म नहीं हो सकता, एवं जीव ब्रह्म नहीं हो सकता। अति ऊच्च कोटि का धर्मात्मा पुरुष जो ब्रह्मज्ञानी बन जाता है, जैसे विश्वामित्र, कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकते।

बाद के क्रमशः दो अधिकरण : 8। आकाश अधिकरण 9। प्राण अधिकरण तीसरी पेटिका में हैं। आकाश एवं प्राण दोनों ब्रह्म हैं।

बाद के क्रमशः दो अधिकरण : 10। ज्योतिरधिकरण 11। इन्द्रप्राणाधिकरण चौथी पेटिका के विषय वस्तु हैं। श्रीमन्नारायण अर्न्तयामी के रूप में ज्योति, इन्द्र, तथा प्राण में विराजते हैं।

1। जिज्ञासाधिकरण 1 सूत्र अधि 1। 1। 1

पहला अधिकरण जिज्ञासा का हैः अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। 'अथः' 'अतः' के संयोग से 'अथातो' हुआ। 'अथः' का तात्पर्य हुआ तत्पश्चात् यानी कर्मकाण्ड वाला जैमिनिरचित पूर्वमीमांशा के कर्म विचार के बाद। 'अतः' का अर्थ हुआ 'इसलिये' यानी यज्ञादि कर्म शाश्वतकाल के लिये आनंद का फल नहीं प्रदान कर पाते इसलिये ब्रह्म को जानना आवश्यक है और तभी भक्ति के सहारे वैकुण्ठ में दिव्यदंपति की सेवा का अवसर अनंत काल के लिये मिल पायेगा यानी चरमानंद चिरंतन प्राप्त हो जायेगा।

निरीश्वर वादी पूर्वपक्षीगण यह कहते हुए विरोध करते हैं कि जब ब्रह्म के बारे में कुछ निश्चित रूप से बताया ही नहीं जा सकता तब ऐसी जिज्ञासा कैसे हो सकती है। मौलिक बात को संस्कृत में व्युत्पत्ति से जानते हैं। छोटे बालक सांसारिक वस्तुओं को देखकर बोलना आरंभ करते हैं। छोटे बालक का हर कार्य क्रियाशीलता से जुड़ा रहता है। जैसेकि वह पंखे को चलाने के लिये वह स्वीच दबाने को कहता है और तब घूमते पंखा को देखकर वह प्रसन्न होता है। स्वीच तथा पंखा आदि वस्तुओं को देखने के बाद ही वह पंखे की क्रियाशीलता से अवगत होता है। इसे 'कार्ये व्युत्पत्ति' कहते हैं। एक अन्य प्रकार की व्युत्पत्ति है 'सिद्धे व्युत्पत्ति' जिसमें बालक वस्तु की क्रियाशील नहीं होने वाले वस्तुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इसमें वस्तु को 'सिद्ध' कहते हैं।

श्रीरामानुज बताते हैं कि बालक को वयस्कजन अनेकवार किसी वस्तु की ओर उंगली से संकेत कर जानकारी देते हैं और बालक उस वस्तु से अवगत हो जाता है। अतः दोनों यानी 'कार्ये एवं सिद्धे व्युत्पत्ति' स्वीकार्य हैं। निरीश्वर मीमांसाकारों का कहना कि ब्रह्म किसी क्रियाशीलता में संलग्न नहीं देखा जा सकता इसलिये जिज्ञासा के प्रश्न पर विचार ही नहीं किया जा सकता। श्रीरामानुज बताते हैं कि ब्रह्म के लिये सिद्धे व्युत्पत्ति लागू होता है इसलिये जिज्ञासा पर विचार एवं विवेचन अवश्य प्रारंभ किया जा सकता है।

माण्डूक्य उपनिषद में इस बात का उल्लेख है कि जब कोई व्यक्ति यज्ञ की सीमित उपादेयता से अवगत होकर यह निश्चित कर लेता है कि इससे चिरंतनकाल के लिये असीम आनंद नहीं प्राप्त किया जा सकता तब वह 'समित' यानी लकड़ी के छोटे टुकड़े का गट्ठर साथ ले अपने गुरुजी को नित्य के कार्य के लिये उपहार स्वरूप समर्पित करता है और 'ब्रह्म' के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपनी इच्छा प्रकट करता है। तब गुरु उसे ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति हेतु उचित शिक्षा में दीक्षित करते हैं। यह 'जिज्ञासा अधिकरण' का सार हुआ।

2। जन्माद्याधिकरण 1 सूत्र अधि 1।1।2

दूसरे अधिकरण को जन्माद्याधिकरण कहते हैं एवं सूत्र है 'जन्माद्यस्य यतः'। पुनः विपक्ष विरोध करते हैं कि जब ब्रह्म की परिभाषा एवं विशेषता को बताने में असमर्थता है तब जिज्ञासा व्यर्थ है। इस सूत्र की विशेषता को 'लक्षणम्' कहते हैं। इसकी चर्चा तैत्तरीय उपनिषद है। भृगु ऋषि ने अपने पिता वरुण से ब्रह्म के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। वरुण ने बताया कि ब्रह्म 'वह' है जो जगत की सृष्टि करता है, इसका पालन पोषण करता है, संहार करता है यानी जगत का अपने में प्रत्यावर्तन करा लेता है, तथा जो आपका ध्यान करता है उसको मुक्ति प्रदान करता है। सूत्र का अर्थ है : 'अस्य' यानी यह दृश्यमान जगत। 'जन्मादि' यानी सृष्टि रचना, पालन करना, तथा मोक्ष देना। 'यतः' यानी वह जो यह सब कार्य करने में सक्षम हैं यानी ब्रह्म।

3। शास्त्रयोनित्वाधिकरण 1 सूत्र अधि 1।1।3

तीसरा अधिकरण शास्त्रयोनित्वाधिकरण है तथा सूत्र है 'शास्त्रयोनित्वात्'। इस अधिकरण के पूर्वपक्षी तार्किक हैं। वस्तुओं की पहचान हेतु ज्ञान प्राप्त करने के तीन सफल साधन हैं: 1। 'प्रत्यक्ष' जिसमें इन्द्रियां सहायक होती हैं। 2। अनुमान जो अनुभव की सहायता प्राप्त किया जाता है। 3। 'शब्द' यानी वचन तथा बोली। जब रसोई घर में लकड़ी जलती है तब भींगी लकड़ी के अंश से धुंआ भी निकलता है तथा अग्नि भी जलती है। अग्नि के बारे में ज्ञान प्राप्ति का यह प्रत्यक्ष उदाहरण हुआ। जब दूर में धुंआ दिखता है तब अग्नि की उपस्थिति के बारे में समझना अनुमान कहा जाता है जिसका पूर्व में प्रत्यक्ष रूप देखकर अनुभव प्राप्त किया गया था। जब किसी व्यक्ति विशेष पर पूरा विश्वास रहता है तथा श्रद्धा रहती है तब उनके कहे गये वचन या शब्द पर विश्वास किया जाता है। वेद एवं उपनिषद अपौरुषेय हैं तथा इनकी प्रामाणिकता सर्वदा स्वीकार्य है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि जब ब्रह्म प्रत्यक्ष इन्द्रियों से गम्य नहीं है तब अनुभव के आधार पर अनुमान से समझा जा सकता है। इसमें वेद उपनिषद के प्रमाण की क्या आवश्यकता है। अतः तैत्तरीय उपनिषद की कथा का संदर्भ अप्रासंगिक है। पूर्वपक्षी

के तर्क को निरस्त हेतु करने हेतु बादरायण ने इस सूत्र की रचना की। इस सूत्र का तात्पर्य है : 'शास्त्र योनि' यानी ब्रह्म की स्थिति का प्रमाण केवल शास्त्र है क्योंकि दूसरे किसी प्रमाण से वह नहीं समझे जा सकते। अतः ब्रह्म की विवेचना केवल उपनिषद से की जाती है। इसीलिये ब्रह्म को 'शास्त्रिका समाधिगम्य' कहते हैं यानी वह जो केवल शास्त्र से ही समझा जा सकता है।

4। समन्वयाधिकरण 1 सूत्र अधि 1।1।4

चौथे अधिकरण को समन्वयाधिकरण कहते हैं। सूत्र है : 'तत् तु समन्वयात्'। नीरीश्वर मीमांसक इस सूत्र के विरोधी हैं। मीमांसक वे हैं जो यज्ञ की विधि हेतु वेद को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि अग्नि में दी गयी आहुति फल प्रदान करती है परंतु वे निरीश्वरवादी हैं यानी ब्रह्म को स्वीकार नहीं करते। ब्रह्म विवेचना की शुरुआत का वे विरोध करते हैं क्योंकि ब्रह्म विवेचना से कोई फल का लाभ तो होता नहीं अतः इस तरह के ब्रह्म को समझने का प्रयास निरर्थक है। सूत्रकार ने इस तर्क को निरस्त कर दिया एवं बताया कि श्रीमन्नारायण ही ब्रह्म हैं तथा असीम आनंद से विभूषित शाश्वत स्वरूप वाले हैं। इस स्वरूप को 'निरतिशय आनन्द' कहते हैं। अतः जो ब्रह्म के बारे में संपूर्ण जिज्ञासा रखेगा तथा उनपर भक्ति एवं प्रपत्ति के साथ ध्यान केन्द्रित करेगा उसे असीम आनंद के अनुभव का लाभ मिलेगा। सूत्र का अर्थ हुआ : 'तत्' यानी शास्त्र की प्रामाणिकता सर्वमान्य है। 'तु' यानी इसके बारे में जो संशय उठा था वह दूर हो गया। 'समन्वयात्' यानी शाश्वत आनंद की प्राप्ति का चरम लक्ष्य एवं ब्रह्म परस्पर जुड़े हुए हैं।

उपर्युक्त सभी चारों अधिकरण ब्रह्म जिज्ञासा की सार्थकता का समर्थन करते हुए विरोधी पक्षी के सभी बिन्दुओं को निरस्त करते हैं। विषयवस्तु की समानता के कारण ये चारों एक पिटक में रखे जाते हैं। प्रश्न है कि 'ब्रह्म' कौन है जड़ जगत या चेतन जीव या दोनों से पृथक कोई अन्य। इसका समाधान बाद के अधिकरणों में किया गया है।

5। ईक्षत्यधिकरण 8 सूत्र 1।1।5 से 1।1।12 तक अधि 1।1।5

पाचवां अधिकरण है 'ईक्षत्यधिकरण' और इसमें कमशः आठ सूत्र समाहित हैं। ध्यातव्य है कि प्रारंभ के चारों सूत्र चार अधिकरण हैं जबकि बाद के पांचवे अधिकरण 'ईक्षत्यधिकरण' में आठ सूत्र हैं जो 1।1।5¹⁸ से 1।1।12 तक हैं।

तालिका 1 : प्रथम अध्याय के पहले पाद के अधिकरण

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की	ब्रह्म के कल्याणगुण ¹⁹ एवं अधिकरण कमांक ²⁰
--------	-------	------------	--

¹⁸ 1।1।5 का तात्पर्य है कि पहले अध्याय के पहले पाद का पाचवां सूत्र।

¹⁹ श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी के अधिकरण सारावली से।

²⁰ 1।1।1 यानी अध्याय 1 पाद 1 अधिकरण 1।

		संख्या	
1 जिज्ञासाधिकरण	1 1 1	1	अकृत यानी आप वैकुण्ठ में सर्वदा रहते हैं 1 1 1
2 जन्माद्याधिकरण	1 1 2	1	विश्वहेतु यानी आप जगत के नियंता हैं जो मात्र आपके साथ लागू होता है 1 1 2
3 शास्त्रयोनिताधिकरण	1 1 3	1	शास्त्रिका स्थापनीय यानी मात्र वैदिक शास्त्र से ही प्रतिपादित हैं 1 1 3
4 समन्वयाधिकरण	1 1 4	1	निरूपाधि परमप्रेम योग्याः यानी अनन्त एवं शाश्वत आनन्द हैं 1 1 4
5 ईक्षत्यधिकरण	1 1 5 से 1 1 12 तक	8	स्वेच्छातः सर्वहेतु यानी अपनी इच्छा से जगत के रचयिता हैं 1 1 5
6 आनंदमयाधिकरण	1 1 13 से 1 1 20 तक	8	शुभगुण विभव अनन्त निस्सीम हर्ष यानी अनन्त कल्याणगुण के कोष हैं 1 1 6
7 अन्तराधिकरण	1 1 21 से 1 1 22 तक	2	शुद्ध अकर्म उत्था दिव्याकृति यानी रजोगुण तमोगुण मुक्त युवा एवं अप्राकृत शरीरवाले 1 1 7
8 आकाश अधिकरण	1 1 23	1	अनुपाधिका अक्सनाड़ी स्वभाव यानी काल स्थान एवं वस्तु से अनन्त तथा सर्वत्र देदीप्यमान 1 1 8

9 प्राण अधिकरण	1 1 24	1	सप्राण अप्राणभेद व्यतिभीदुर जगत प्राण यानी आप जड़ एवं चेतन वस्तु बनाकर उसमें वास करते हैं। 1 1 9
10 ज्योतिर अधिकरण	1 1 25 से 1 1 28 तक	4	दिव्यदीप्ति यानी अनन्त आभा पूर्ण ज्योति। 1 1 10
11 इन्द्र प्राण अधिकरण	1 1 29 से 1 1 32 तक	4	प्राणेन्द्रादि अन्तरात्मा यानी आप प्राण एवं इन्द्र की अर्न्तयामी आत्मा हैं। 1 1 11

पाचावां सूत्र है : 'ईक्षतेर नाशब्दम्' यानी 'ईक्षतेः न अशब्दम्'। छान्दोग्य उपनिषद का 'सद्विद्या' नामक शीर्षक वाला छठा अध्याय इस अधिकरण का विषयवस्तु है। इस उपनिषद में उदालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म ज्ञान के लिये दीक्षित करते हैं। कथा है कि गुरुकुल में 12 वर्षों तक चारों वेद एवं छः वेदांगों का अध्ययन करने के पश्चात् श्वेतकेतु घर आया। उसकी धारणा की थी कि वह सब तरह की ज्ञान से परिपूर्ण है अतः किसी अन्य से बात न करके मौन रहने लगा। यह देखकर उसके पिता उदालक ने पूछा कि क्या गुरुकुल में गुरु ने उसे सर्व जगत नियन्ता ब्रह्म के बारे में ज्ञान प्रदान किया है या नहीं। ब्रह्म सर्वांग सम्पन्न ऐसी इकाई हैं जिसके बारे में सुनने पर सब अन्य चीज सुन लिये जाते हैं, जिसके बारे में सोचने पर अन्य सब चीज सोच लिये जाते हैं, तथा जिसके बारे में जानने पर अन्य सब चीज जान लिये जाते हैं। पुत्र ने उत्सुक होकर 'ऐसी कौन सी इकाई है' के बारे में जानना चाहा। पिता ने मिट्टी स्वर्ण एवं लोहा का उदारण दिया। मिट्टी एक मूल वस्तु है जिससे सभी तरह के पात्र बनते हैं। इसी तरह स्वर्ण एवं लोहा से भी होता है। मूल वस्तु का ज्ञान हो जाने पर सभी तरह के स्वरूपों के निर्माण का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह से ब्रह्म सृष्टि के सभी वस्तु, प्रक्रिया, एवं उपकरण के रूप में सबके आदि कारण हैं एवं आपकी जानकारी से समस्त जगत की जानकारी हो जाती है। इसे 'एकविज्ञानेन सर्व विज्ञानम्' कहते हैं। पुत्र ने स्वीकार किया कि गुरुकुल में गुरु ने उसे ब्रह्म के बारे में कोई जानकारी नहीं दी है। उसने तुरत अपने पिता से ब्रह्म के बारे में जानकारी प्रदान करने की प्रार्थना की।

पिता ने बताया कि सृष्टि प्रारंभ होने के पूर्व ब्रह्म 'सत' नाम से विदित हुए। इसी सत ने सृष्टि का इच्छा संकल्प लिया और सृष्टि सृजित करने लगे। सांख्य दार्शनिकों ने प्रकृति को सत कहते हुए सृष्टि का मूल कारण माना। इस प्रकृति को ही अशब्दम्, प्रधानम्, एवं अनुमानिकम् कहते हैं। सूत्रकार ने पाचवें अधिकरण के सूत्र में जड़ प्रकृति को इच्छाहीन बताया एवं इसका सृष्टि के मूल में रहकर सृष्टिरचना की इच्छा प्रकट करने की शक्ति से सर्वथा असमर्थ बताया। अतः प्रकृति सत यानी ब्रह्म नहीं हो सकती यानी सत केवल ब्रह्म न कि प्रकृति। इस तरह से इस अधिकरण में यह प्रमाणित हुआ कि जड़ प्रकृति कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकती।

6 | आनंदमयाधिकरण 8 सूत्र 1|1|13 से 1|1|20 तक अधि 1|1|6

इस अधिकरण में कमशः आगे के आठ सूत्रों से यह प्रतिपादित किया गया कि ब्रह्म चेतन जीव से सर्वथा पृथक् हैं। तैत्तरीय उपनिषद का आनंदवल्ली प्रकरण से इस अधिकरण की विवेचना का प्रारंभ होता है। आनंदवल्ली में कहा गया है कि जो ब्रह्म पर ध्यान करता है उसे मोक्ष मिल जाता है। ब्रह्म सत्यम से विभूषित हैं जिसका कभी रूपांतरण नहीं होता जबकि बद्धात्मा मानव का शरीर सभी तरह के रूपांतरण से प्रभावित है। आप सर्वज्ञ हैं एवं ज्ञान से विभूषित हैं जो कि बद्धात्मा नहीं है। आप अनंत कल्याण गुण वाले हैं जो केवल नित्यसूरी यानी गरूड़, शेष, एवं विष्वक्सेन आदि को ही प्राप्त है एवं सबके हृदय में अर्न्तयामी की तरह विराजमान रहते हैं। आपका स्थायी निवास वैकुण्ठ है। जो यह जानता है वह परमव्योम या परमपद में आपके कल्याण गुण का आनंद लेता है।

ब्रह्म से ही पंचभूत यानी मिट्टी जल अग्नि वायु एवं आकाश का निर्माण होता है। आप अन्नमय प्राणमय मनोमय एवं विज्ञानकोष में अर्न्तयामी होकर विराजते हैं। आप आनंदमय हैं जो विज्ञानमय जीव से सर्वथा पृथक् हैं। उपनिषद के अनुसार आनंदमय ब्रह्म ही जगत के रचयिता एवं नियंता हैं। उपनिषद जीव की सीमित आनंदमय शक्ति का वर्णन करती है जबकि ब्रह्म का आनंदमय कल्याणगुण अनंत है। आनंदमय गुण का तुलनात्मक विहंगम अवलोकन तालिका 2 में किया जा सकता है :

तालिका 2 : ब्रह्मानंद एवं मनुष्य के आनंद की तुलना

इकाई	आनंद की सीमा	अभियुक्ति
ब्रह्मानंद	प्रजापति के आनंद का 100 गुना	1 उल्लिखित सूचना के आधार पर ब्रह्मानंद मनुष्य के आनंद का 100 ¹⁰ गुना होता है। 2 ब्रह्मानंद असीम एवं अनंत है तथा इसकी ही प्राप्ति मोक्ष की प्राप्ति है।
प्रजापति का आनंद	बृहस्पति के आनंद का 100 गुना	
बृहस्पति का आनंद	इन्द्र के आनंद का 100 गुना	
इन्द्र का आनंद	देवों के आनंद का 100 गुना	
देवों का आनंद	कर्म के देवों के आनंद का 100 गुना	
कर्म के देवों का आनंद	अजनजन के देवों के आनंद का 100 गुना	
अजनजन के देवों का आनंद	पितृ के आनंद का 100 गुना	
पितृ का आनंद	देवों के गंधर्व के आनंद का 100 गुना	
देवों के गंधर्व का आनंद	मनुष्यों के गंधर्व के आनंद का 100 गुना	
मनुष्यों के गंधर्व का आनंद	मनुष्यों के आनंद का 100 गुना	

वैकुण्ठ में नित्य सूरी तथा मुक्तजीव चिरंतन ब्रह्मानंद में लीन रहते हैं। मुक्तजीव श्रीमन्नारायण के श्रीचरणों की भक्ति एवं शरणागति के अभ्यास से सांसारिक बंधन से मुक्त हाकर ही वैकुण्ठ पहुंचते हैं। पूर्वापक्षी कहते हैं कि उपनिषद का यह वचन है कि केवल देहधारी ही आनंदमय होते हैं। जीव देहधारी है इसलिये आनंदमय है न कि

ब्रह्म जो कि सर्वदा बिना शरीर के हैं। सूत्रकार ने 1|1|13 यानी इस अधिकरण के पहले सूत्र 'आनन्दमयो ऽभ्यासात्' से पूर्वपक्षी की बात को निरस्त कर दिया है। इस सूत्र का अर्थ है : 'आनन्दमय' यानी केवल ब्रह्म न कि जीव। 'अभ्यासात्' का अर्थ है पुनरावृत्ति। जैसे प्रजापति के आनन्द का 100 गुना ब्रह्म का आनन्द है। इसी तरह से तालिका 2 की अन्य पुनरावृत्तियां हैं।

7|अन्तराधिकरण 2 सूत्र 1|1|21 एवं 1|1|22 अधि 1|1|7

यह दो सूत्रों 1|1|21 एवं 1|1|22 का अधिकरण है। यहां दर्शाया गया है कि ब्रह्म जीव से पृथक है और सर्व शक्तिमान है। विश्वामित्र की तरह कितनी भी यौगिक एवं आध्यात्मिक शक्ति जीव को प्राप्त हो जाय वह ब्रह्म के अधीन है। इस अधिकरण में छान्दोग्य उपनिषद का पहला अध्याय विवेचन का संदर्भ वस्तु है। उपनिषद में उल्लेख है कि सूर्यमंडल या आदित्य मंडल के केन्द्र में सुनहले बाल, मूछ, एवं आकर्षक वदन वाला राजीवनयन निर्मल स्वरूप के साथ श्रीमन्नारायण का निवास है। पूर्वपक्षी का कहना है कि सूर्यमंडल के केन्द्र में आध्यात्मिक एवं यौगिक शक्तिवाला जीव है क्योंकि पूर्व के अधिकरण में कहा गया है कि आनन्दमय शरीरधारी है तथा वह सूर्यमंडल का अधिकारी है। लेकिन पूर्वपक्षी का यह मत मान्य नहीं है क्योंकि इस अधिकरण का पहला सूत्र कहता है 'अन्तस् तत्धर्मोपदेशात्'। तात्पर्य है कि 'अन्तः' यानी 'जो सूर्यमंडल के बीच रहता है वह ब्रह्म है'। 'तत्धर्मोपदेशात्' का अर्थ हुआ कि जो केन्द्रमें स्थित है उसके जो गुण हैं वे गुण जीव के नहीं हो सकते। उसके गुण हैं 'कमल सी आंग्र' एवं 'निर्मल'।

8|आकाश अधिकरण 1 सूत्र 1|1|23 अधि 1|1|8

इस अधिकरण की विवेचना छान्दोग्य उपनिषद के पहले अध्याय के विषय वस्तु पर आधारित है जिसमें इसका उल्लेख है कि सभी भूत आकाश से निर्मित हैं तथा प्रलयकाल में आकाश में तिरोहित हो जाते हैं। सभी आकाश की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं क्योंकि आकाश सबसे सर्वोपरि है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि आकाश का तात्पर्य अतिप्रसिद्ध सर्वत्र दृश्यमान आकाश से है। सूत्र है : 'आकाशस् तत् लिङ्गात्'। यह पूर्वपक्षी के मत को निरस्त करते हुए यह बताता है कि 'दृश्यमान आकाश नहीं' बल्कि 'ब्रह्म' को आकाश कहा गया है। आकाश उसको कहते हैं जो चारो तरफ से ज्योतिर्मय है और यह केवल परमात्मा के साथ लागू होता है। 'तत् लिङ्गात्' का उपनिषद बताता है कि यह अलौकिक गुण केवल ब्रह्म के साथ लागू है।

9|प्राण अधिकरण 1 सूत्र 1|1|24 अधि 1|1|9

छान्दोग्य उपनिषद बताता है कि सभी प्राणी प्रलयकाल में प्राण में विलीन होते हैं तथा पुनः प्राण से ही निःसृत होकर जगत में आते हैं। विपक्षी कहते हैं कि यह प्राण 'श्वास' वायु है जो सभी प्राणियों के श्वास में विराजती है। सूत्रकार कहते हैं कि प्राण परमात्मा है न कि श्वास वायु। परमात्मा की इच्छा से सभी प्राणी इस जगत में जीवित रहते हैं। सूत्र है : 'अत एव प्राणः'। 'अत एव' यानी जैसे आकाश ब्रह्म है उसी तरह प्राण भी ब्रह्म है।

10 | ज्योतिः अधिकरण 4 सूत्र 1|1|25 से 1|1|28 तक अधि 1|1|10

इस अधिकरण एवं पूर्व के प्राण अधिकरण की संगति 'प्रत्युदहरति' है। 'प्रत्युदहरण' का अर्थ है विरोधी उदाहरण। पूर्व में प्राण अधिकरण के बारे में छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि प्राण जगत का सृष्टिकारक है। सामान्यतया प्राण श्वास वायु को कहते हैं परंतु यह सृष्टि करने में सक्षम नहीं है। अतः प्राण का अर्थ ब्रह्म ही है। छान्दोग्य में उल्लेख है कि असीम आभा की ज्योति वैकुण्ठ में है। यह वही है जो शरीर के यकृत से रस निकालकर भोजन को पचाता है और इसे 'जठराग्नि' कहते हैं। इस उपनिषद के पहले वाक्य में ब्रह्म का संकेत नहीं है। जब यह कहता है कि ज्योति ही जठराग्नि है तब यह एक विरोधी उदाहरण हो जाता है। अतः यह संशय होता है कि क्या ज्योति आभा का द्योत्तक है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि ज्योति का अर्थ सामान्य प्रकाश से है। सूत्रकार कहते हैं कि ज्योति परमात्मा ब्रह्म श्रीमन्नारायण हैं। उपनिषद में यह उल्लेख है कि चेतन जीव जो जड़ शरीर धारण करता है वैकुण्ठ के एक चतुर्थांश में स्थित है तथा बाकी तीन चतुर्थांश वैकुण्ठ है। परमात्मा ही जठराग्नि की अर्न्तयामी शक्ति हैं। जबतक ब्रह्म अनन्त आभा का नहीं होगा वह सृष्टिकर्ता नहीं हो सकता।

11 | इन्द्रप्राणाधिकरण 4 सूत्र 1|1|29 से 1|1|32 तक अधि 1|1|11

इस अधिकरण का विवेचन कौपीतकि उपनिषद पर आधारित है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि ज्योति परमात्मा नहीं हो सकता क्योंकि कौपीतकि उपनिषद में इन्द्र को परमपुरुष कहा गया है। पूर्व के ज्योतिर अधिकरण से इस अधिकरण की संगति को अपवाद कहते हैं। उपनिषद कहता है कि दिवोदासी का परमवीर पुत्र प्रतर्दन स्वर्ग में इन्द्र से मिलने गया है। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने को कहा। प्रतर्दन ने कहा कि आप सबकुछ जानते हो इसलिये संपूर्ण मानव समुदाय के हित के लिये आप वर दें। इन्द्र ने कहा 'मेरा ध्यान करो क्योंकि मैं प्राण एवं अमृत हूँ'।

अब प्रश्न उठता है कि जब मानव के लिये परम हित मोक्ष प्राप्ति में है तब क्या इन्द्र पर ध्यान करने से मोक्ष मिलेगा ? इसके पीछे कारण है कि इन्द्र भी हमलोगों की तरह बद्धात्मा हैं। इस उपनिषद में तात्पर्य है कि इन्द्र के अर्न्तयामी परमात्मा हैं इसलिये ध्यान परमात्मा का हुआ। इन्द्र तो जीव की तरह परमात्मा के शरीर हैं। अतः सूत्रकार यह निर्णय देते हैं कि परमात्मा ही प्राण एवं इन्द्र के अर्न्तयामी हैं। परमात्मा श्रीमन्नारायण आनन्द हैं, अजर हैं यानी सदा युवा रहते हैं, एवं अमृत हैं यानी आपका रूपांतरण नहीं होता।

इस तरह से पहले अध्याय का पहला पाद समाप्त हुआ। श्रीवेदांत देशिक ने 'अधिकरण सारावली' में पहले पाद के 11 अधिकरणों में सन्निहित 11 कल्याण गुणों की सूची दी है जो तालिका 1 में उल्लिखित है। इस पाद को 'अयोग व्यवच्छेद पाद' कहते हैं क्योंकि यह उपनिषद से श्रीमन्नारायण के जगतनियन्ता होने वाले अटूट सम्बन्ध के संशय का विनाश करता है।

पहले अध्याय का दूसरा पाद

(समन्वय अध्याय, अस्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य पाद, 33 सूत्र, 6 अधिकरण)

इस पाद में 6 अधिकरण हैं। उपनिषद की सहायता से इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि जड़ जगत एवं चेतन जीव ब्रह्म के शरीर हैं। अतः शरीर के अवयव कभी भी सृष्टि के नियंता नहीं हो सकते। इस पाद को 'अन्य योग व्यवच्छेद पाद' कहते हैं।

12 | सर्वत्र प्रसिद्धि अधिकरण 8 सूत्र 1|2|1 से 1|2|8 तक अधि 1|2|1

पहले अधिकरण को 'सर्वत्र प्रसिद्धि अधिकरण' कहते हैं। इसमें 8 सूत्र हैं। छान्दोग्य उपनिषद से उद्धरण देकर यह बताया गया है कि सर्वत्र जो हम देख रहे हैं सब ब्रह्म हैं। आप ही जगत के स्रष्टा पालक तथा संहारक हैं। आप ही पर शान्तचित्त से ध्यान करने का है। पूर्व के 'इन्द्रप्राण अधिकरण' में यह बताया गया कि प्राण एवं इन्द्र आपके शरीर हैं और आप ही जगत के आदि कारण श्रीमन्नारायण परमात्मा हैं। इस अधिकरण में जीव को जगतकारण वस्तु होने के संशय को दूर किया गया है। जीव ने विभिन्न जन्मों में विभिन्न शरीर धारण किया है। इसे हम चारो तरफ देखते हैं तो क्या यह जगत का रचयिता हो सकता है ?

सूत्रकार ने इसे नकारते हुए बताया है कि उपनिषद एक स्वर से श्रीमन्नारायण को ही रचयिता मानता है क्योंकि कि वे सभी जीवों की अर्न्तयामी आत्मा हैं। सूत्र है: 'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्'। 'सर्वत्र प्रसिद्ध' का अर्थ है कि परमात्मा अर्न्तयामी होकर जगत के रचयिता के रूप में चारो तरफ विख्यात हैं। उपनिषद में उल्लेख है कि ब्रह्म सभी वस्तुओं में उसकी अर्न्तआत्मा होकर विद्यमान हैं और उनके 12 कल्याण गुण हैं जो नीचे तालिका 3 में द्रष्टव्य हैं।

तालिका 3 : ब्रह्म के 12 कल्याण गुण

क्रमांक	कल्याण गुण
1	परमात्मा की अनुभूति शुद्ध मन से ही की जा सकती है।
2	प्राण यानी श्वास आपका शरीर है।
3	आपका स्वरूप सबसे ज्यादा सुन्दर है।
4	आपका संकल्प अटल है।
5	आपही अर्न्तआत्मा है।
6	आपही आकाश हैं।
7	आपही आकाश की अर्न्तआत्मा हैं।
8	संपूर्ण जगत आपकी रचना है एवं आपका शरीर है।
9	आप सबसे शुद्ध वस्तु धारण करते हैं।
10	आपका शरीर सर्वोत्तम सुगंध वाला है।
11	आपने सभी अच्छे स्वादों को स्वीकार किया है।
12	आप किसी से नहीं बोलते क्योंकि आपको किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। आप ही ने सभी वस्तुओं का निर्माण किया है।

13। अत्राधिकरण 4 सूत्र 1।2।9 से 1।2।12 तक अधि 1।2।2

चार सूत्रों का यह अधिकरण कठोपनिषद के उद्धरण से प्रारंभ होता है। इस पाद का यह दूसरा अधिकरण है। पूर्व के अधिकरण में यह निष्कर्ष निकला था कि श्रीमन्नारायण सब जीव के अर्न्तयामी होने पर भी जीव के सुख एवं दुःख के सहभागी नहीं बनते। जीव अपने किये कर्म का भोक्ता बनता है। संशय उत्पन्न हुआ कि 'भोक्ता' शब्द जीव का पर्यायवाची है क्या?। इसी संशय का समाधान इस अधिकरण में उपलब्ध है।

कठोपनिषद नचिकेता एवं मृत्युदेव यम के बीच का संवाद है। यम नचिकेता के सारे प्रश्नों का उत्तर देते हैं। इसी क्रम में यम बताते हैं कि प्रलयकाल में एक ऐसी व्यक्ति को समझने की आवश्यकता है जो मृत्यु के द्योत्तक रूद्र को उपसेचन (condiment or pickle etc.) बनाते हुए जड़ एवं चेतन सभी वस्तुओं का भोक्ता बनता है। उपसेचन ऐसा पदार्थ है जो चावल एवं मक्खन को खाने में सहायक होता है तथा स्वयं भी एक भोज्य पदार्थ है। अब प्रश्न है कि यह भोक्ता जीव है या परमात्मा। जीव न केवल अपने शरीर को शक्ति देने के लिये भोज्य पदार्थ खाता है अपितु वह अपने कर्मफल का भी भोक्ता है। सूत्रकार कहते हैं 'अत्ता चराचरग्रहणात्'। तात्पर्य है कि 'अत्ता' यानी भोक्ता परमात्मा श्रीमन्नारायण हैं जो सभी चर एवं अचर यानी जड़ तथा चेतन का प्रलय काल के भोक्ता हैं। पुराण एवं आठवार संतों के दिव्यप्रबंधम में यह उल्लेख है कि प्रलयकाल में परमात्मा जगत के सभी वस्तुओं को अपने उदर में सुरक्षित रख लेते हैं तथा पुनः सृष्टि के समय में सबों को बाहर निकालते हैं।

14। अन्तराधिकरण 6 सूत्र 1।2।13 से 1।2।18 तक अधि 1।2।3

इस पाद के तीसरे अधिकरण को अन्तराधिकरण कहते हैं तथा यहां विवेचना का प्रारंभ छान्दोग्य उपनिषद के संदर्भ में होता है। सत्यकाम नामक गुरु उपकोशल नामक शिष्य को ब्रह्म ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु के एक वर्ष तक अनुपस्थित रहने पर शिष्य ने गुरु के नित्य प्रयोग में लाने वाली प्रज्वलित तीन अग्नि (आवाहनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिण) को प्रज्वलित रखा एवं गुरु ने प्रसन्न होकर शिष्य को अग्नि से दीक्षित कर ब्रह्म ज्ञान की ओर उन्मुख किया। पूर्व के अधिकरण में इस बात का उल्लेख है कि परमात्मा जगत के भोक्ता हैं एवं अदृश्य हैं। इस से यह शंका हुई कि जो नहीं दिखाई पड़े वह परमात्मा है। इस अधिकरण में इस शंका का समाधान है।

उपनिषद बताता है कि भक्त के ध्यान में दिखने वाले जगत नियन्ता परमात्मा हैं। आप असीम आनंद का लाभ देते हैं तथा दुःख का लेश मात्र भी अनुभव नहीं होता। आप अनन्त स्वरूप वाले तथा अनन्त कल्याण गुण वाले हैं। आपका दिव्यमंगल विग्रह असीम आभा से पूर्ण है। यहां संशय होता है कि ध्यान निष्ठ भक्त की आंख में दिखने वाले जीव हो सकता है या कोई देवताविशेष। ब्रह्म तो कभी भी नंगी आंखों से नहीं देखे जा सकते। इस संशय को दूर करने के लिये सूत्र 1।2।13 द्रष्टव्य है : 'अन्तर उपपत्ते'। तात्पर्य है कि ध्याननिष्ठ भक्त की आंख में दिखने वाले केवल परमात्मा ब्रह्म ही हैं। आप अमृतत्व यानी उल्लासदायी हैं, अभयत्व हैं यानी दुःख का लेश मात्र नहीं छूता, ब्रह्मत्व यानी अनन्त हैं, सम्यतवामत्व यानी कल्याण गुण के कोष हैं, भामनित्व यानी

अनन्त आभासे युक्त ज्योति हैं। ये गुण केवल ब्रह्म की विशेषता बताते हैं, किसी जीव या किसी चित्र या किसी देव में अनुभूत नहीं है।

तालिका 4 : पहले अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (33 सूत्र, 6 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण के क्रमांक ²¹
12 सर्वत्र प्रसिद्धि अधिकरण	1 2 1 से 1 2 8 तक	8	1 2 1
13 अन्त्रधिकरण	1 2 9 से 1 2 12 तक	4	1 2 2
14 अन्तराधिकरण	1 2 13 से 1 2 18 तक	6	1 2 3
15 अन्तर्यामि अधिकरण	1 2 19 से 1 2 21 तक	3	1 2 4
16 अदृश्यत्वादिगुणक अधिकरण	1 2 22 से 1 2 24 तक	3	1 2 5
17 वैश्वानर अधिकरण	1 2 25 से 1 2 33 तक	9	1 2 6

15 | अन्तर्यामि अधिकरण 3 सूत्र 1 | 2 | 19 से 1 | 2 | 21 तक अधि 1 | 2 | 4

पूर्व के अधिकरण में इस मत का प्रतिपादन हुआ कि जो आंख में दिखता है वह परमात्मा है। इस पाद के चौथे अधिकरण में उसका अग्रतर सम्बर्द्धन हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद के अन्तर्यामी ब्राह्मण के विषयवाक्य से विवेचना का शुभारंभ होता है। अन्तर्यामी ब्राह्मण ही विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का आधारशिला है। अन्तर्यामी ब्राह्मण को घटक श्रुति भी कहते हैं। इसकी सहायता से दो परस्पर विरोधी उपनिषद वाक्यों के बीच घटक श्रुति संधि का काम करती है। विरोधी वाक्य हैं अभेद एवं भेद। आदिशंकर का अद्वैत मत अभेद श्रुति पर आधारित है। इसमें उल्लेख है कि 'तुम और मैं ब्रह्म हूँ'। यहां 'तुम एवं मैं' जीव के लिये कहे गये हैं। श्रीशंकर कहते हैं कि ब्रह्म स्वयं जीव हैं एवं जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यह इसलिये कि ब्रह्म माया से जीव का स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं। माया का आधार अविद्या है। जब आचार्य की कृपा से जीव अविद्या को भूलकर यह समझता है कि वह ब्रह्म है तो जीव ब्रह्म के साथ मिलकर एक हो जाता है। 'तत्त्वमसि' से अभेद का प्रतिपादन होता है। 'तत्त्वमसि' से प्राप्त अभेद ज्ञान यानी जीव एवं ब्रह्म पृथक नहीं हैं को 'वाक्य ज्ञान' कहते हैं। यह वाक्य ज्ञान ही अद्वैतियों को मोक्ष प्रदान करता है।

द्वैत मतावलम्बी श्रीमध्वाचार्य कहते हैं कि जीव एवं ब्रह्म पृथक हैं तथा दोनों में कोई सम्बंध नहीं है। भेद श्रुति का सहारा लेकर द्वैत मतावलम्बी कहते हैं कि जीव भोक्ता है, प्रकृति भोग्य है, एवं ब्रह्म प्रेरित हैं यानी नियंत्रक हैं। तीनों स्वतंत्र हैं। इस भेद ज्ञान के सहारे द्वैती मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस तरह से अभेद श्रुति एवं भेद श्रुति

²¹ 1 | 2 | 1 यानी अध्याय 1 पाद 2 अधिकरण 1

विल्कुल ही भिन्न हैं तथा परस्पर विरोधी हैं। परंतु वेद का एक एक वाक्य प्रमाण है और इस सिद्धांत को 'सर्व शाखा प्रत्ययन्याय' कहते हैं। अगर अभेद श्रुति को मानते हैं तो भेद श्रुति का उल्लंघन होता है। इसी तरह से भेद श्रुति को मानने से अभेद का उल्लंघन होता है। दोनों से उपर्युक्त 'सर्वशाखा प्रत्ययन्याय' का उल्लंघन होता है।

श्रीमद्भगवत रामानुज ने अर्न्त्यामी ब्राह्मण से घटक श्रुति का सहारा लेकर दोनों विरोधी श्रुतियों के बीच सम्बंध कायम कर न्याय की प्रासंगिकता को सिद्ध किया। आपने बताया कि वेद एवं उपनिषद के हर वाक्य प्रामाणिक हैं एवं उनका प्रासंगिक सम्यक विवेचन करने से विरोधी बातें भी ठीक हो जाती हैं। घटक श्रुति का सार है कि जड़ एवं चेतन परमात्मा के शरीर हैं। इसे 'शरीर आत्मा भाव' कहते हैं। शरीर एवं आत्मा दो पृथक वस्तु हैं परंतु एक दूसरे से अलगहोने वाले नहीं हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि शरीर आत्मा के बिना नहीं रह सकता एवं आत्मा शरीर के बिना नहीं रह सकती। जड़ एवं चेतन वस्तु परमात्मा ब्रह्म के शरीर हैं। सुबालोपनिषद में यह उल्लेख है कि श्रीमन्नारायण ही परमात्मा ब्रह्म हैं। श्रीमन्नारायण अर्न्त्यामी आत्मा होकर जड़ एवं चेतन के साथ सर्वदा विराजमान रहते हैं एवं इनदोनों से अलग नहीं किये जा सकते। इससे अभेद एवं भेद श्रुति की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

'अर्न्त्यामी ब्राह्मण' याज्ञवल्क मुनि एवं अरूणी के पुत्र उदालक मुनि का संवाद है। याज्ञवल्क मुनि उदालक मुनि के प्रश्न पर बताते हैं कि अर्न्त्यामी ब्राह्मण में अर्न्त्यामी का अर्थ है 'जो मिट्टी में बसता है परंतु मिट्टी से भिन्न है। जिसका ज्ञान मिट्टी को नहीं है। मिट्टी जिसका शरीर है एवं जो मिट्टी के कार्यकलापों को भीतर से नियंत्रित करता है। वही परमात्मा तुम में भी यानी उदालक में भी अर्न्त्यामी बनकर है एवं बहुत ही आनंद देनेवाला है।' याज्ञवल्क मुनि ने 21 वस्तुओं का उदाहरण देकर उपर की बात को दुहराया है। ये 21 वस्तु हैं : मिट्टी, जल, अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, स्वर्ग, सूर्य, दिशा, चंद्र एवं तारे, आकास, अंधकार, तेजस, सभी भूत, प्राण, वचन, आंख, कान, मन, त्वचा, जीवात्मा, एवं वीर्य।

मिट्टी की तरह जीव को सम्बोधित कर मुनि कहते हैं कि 'जो जीव के साथ रहता है, जीव से पृथक है, जिसे जीव नहीं जानता, जीव जिनका शरीर है, जो जीव के कार्यकलापों को भीतर से नियंत्रित करता है, वही परमात्मा एवं अर्न्त्यामी है, और श्रीमन्नारायण है, जो वस्तुओं की अनुभूति बिना आंख कान आदि इन्द्रियों के करता है। जबकि जीव वस्तुओं की अनुभूति इन्द्रियों की सहायता से करता है। अतः यह स्पष्ट है कि जीवात्मा परमात्मा एक नहीं बल्कि पृथक हैं।

इसके बावजूद पूर्वपक्षी कहते हैं कि जीव अपनी इन्द्रिय अनुभूति के कारण अर्न्त्यामी है न कि ब्रह्म अर्न्त्यामी है। मुनिगण भी तो जीव ही हैं। सूत्रकार इस तर्क को नकारते हुए कहते हैं कि परमात्मा ही केवल अर्न्त्यामी हैं। सूत्र 1।2।19 द्रष्टव्य 'अर्न्त्याम्यधिदैवाधिलोकादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'। तात्पर्य है कि अर्न्त्यामी ब्राह्मण के अनुसार निर्मल ब्रह्म ही अर्न्त्यामी हो सकता है।

16 | अदृश्यत्वादिगुणकाधिकरण 3 सूत्र 1|2|22 से 1|2|24 तक अधि 1|2|5

पूर्व के अधिकरण में यह कहा गया है कि ब्रह्म बिना इन्द्रियों की सहायता के देखने में सक्षम हैं। अतः जहां देखने की बात नहीं है वहां ब्रह्म नहीं है। तब यह प्रकृति या मूल वस्तु हो सकती है। इसी बात का खंडन इस पाद के पाचवें अधिकरण का विषय वस्तु है।

इस अधिकरण का विवेचन अथर्व वेद के मुण्डक उपनिषद से होता है। यहां शौनक मुनि अङ्गिरस मुनि के पास जाकर प्रश्न पूछते हैं 'किस वस्तु को जानने से जगत के सभी वस्तु का ज्ञान हो जाता है'। तात्पर्य है कि किसको जानने से जगत का सही ज्ञान हो जाता है। अङ्गिरस मुनि ने बताया कि अपराविद्या एवं पराविद्या ज्ञान के दो स्रोत हैं। वेद वेदांग इतिहास आदि अपराविद्या के स्रोत हैं। परा विद्या में ब्रह्म ज्ञान निहित है। इस उपनिषद में ब्रह्म को अक्षर कहते हैं। अक्षर का ज्ञान कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों से नहीं हो सकता। परमात्मा किसी गोत्र या जाति के नहीं होते। आप इन्द्रियविहीन हैं। आप शाश्वत एवं सर्वत्र विद्यमान हैं। आप जड़ चेतन के अन्तर्यामी बनकर रहते हैं। ज्ञानीलोग आपको जगत का आदिकारण मानते हैं। इसी उपनिषद में एक वाक्य है कि परमात्मा जीवात्मा से श्रेष्ठ हैं तथा जीवात्मा प्रकृति से श्रेष्ठ है। यहां जीवात्मा एवं प्रकृति को भी अक्षर कहा गया है। संशय होता है कि अक्षर केवल ब्रह्म के लिये है या अन्य के लिये। पूर्वपक्षी कहते हैं कि यह जीव एवं प्रकृति के लिये प्रासंगिक है।

सूत्रकार ने सूत्र 1|2|22 में 'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्ते ः' कहा है। तात्पर्य है कि जो इन्द्रियातीत है वह परमात्मा है एवं वह सर्वज्ञ एवं सबगुणों का कोष है।

17 | वैश्वानर अधिकरण 9 सूत्र 1|2|25 से 1|2|33 तक अधि 1|2|6

इस पाद का छठा एवं अंतिम अधिकरण 9 सूत्रों का है। पूर्व के अधिकरण के अंत में यह प्रतिपादित हुआ है कि श्रीमन्नारायण ही अक्षर हैं तथा तीनों लोक आपका शरीर है। इसीलिये आपको 'त्रैलोक्य शारीरक' कहते हैं। मुण्डक उपनिषद में यह उल्लेख है कि शारीरक परमात्मा का अग्नि शिर है सूर्य एवं चन्द्र आंग्रं हैं दिशाये कान हैं वेद वाणी हैं वायु श्वास है जगत हृदय है तथा पृथ्वी पैर हैं। अंत में आपको सर्वभूत अन्तरात्मा कहा गया है यानी आप ही सब के अन्तर्यामी आत्मा हैं। यहां विपक्ष ने कहा कि त्रैलोक्य शारीरकत्वम केवल श्रीमन्नारायण के लिये नहीं है अपितु अन्य के लिये भी प्रयुक्त है। अतः इस अधिकरण से यह प्रतिपादित किया गया कि यह मात्र परमात्मा श्रीमन्नारायण के लिये ही प्रयुक्त हो सकता है। इसका विवेचन छान्दोग्य उपनिषद के पाचवें अध्याय से आगे देखा जा सकता है।

पांच मुनिगन प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, एवं बुडिल, सब मिलकर ब्रह्म के बारे में विवेचन करने पर एक मत पर न पहुँच सके। तब वे उद्दालक मुनि के यहां पहुंचे जो वैश्वानर स्वरूप पर ध्यान कर रहे थे। उद्दालक मुनि भी संशय दूर करने में असमर्थ रहे। तब सभी छः मुनि कैकयदेश के राजा अश्वपति के पास

पहुंचे। मुनि जनों ने राजा से अपने संशय के बारे में बताया तथा राजा से यह अनुरोध किया कि वे उनलोगों को ब्रह्म विद्या में दीक्षित कर परमात्मा के मोक्षदायी वैश्वानर स्वरूप के बारे में बतायें। राजा ने छः मुनियों से अलग अलग मिलकर उनके ज्ञान की सम्पुष्टि की और अंत में बताया कि सभी छः मुनियों के समेकित ज्ञान से वैश्वानर स्वरूप को समझा जा सकता है और यह स्वरूप ही श्रीमन्नारायण स्वयं हैं।

यहां चार संशय खड़ा हुआ। वैश्वानर शब्द का अर्थ 'बेल का रस' 'अग्नि' 'स्वर्गिक देव वैश्वानर' एवं 'परमात्मा' होता है। विपक्षियों ने यह मत रखा कि परमात्मा के अलावे अन्य के लिये भी वैश्वानर उपयुक्त है। सूत्रकार ने सूत्र 1।2।25 में 'वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्' कहा। तात्पर्य हुआ कि वैश्वानर परमात्मा हैं क्योंकि जो गुण यहां बताया गया है वह केवल परमात्मा में ही लागू होता है।

इस अधिकरण में विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का महत्वपूर्ण पक्ष प्रतिपादित है। सूत्रकार ने बताया है कि सभी वैदिक देव के नाम व्युत्पत्ति के विचार से श्रीमन्नारायण के ही द्योत्तक हैं। जैसे अग्नि। यहां 'अग्रम नयति' अग्नि है। तात्पर्य है कि श्रीमन्नारायण सभी भक्ति एवं प्रपत्ति करने वाले का नेता बनकर उन्हें मोक्ष तक ले जाते हैं। इसी तरह से वैश्वानर को 'विशेषम नरानाम नेता' कहते हैं। पुनः 'रुद्र' का अर्थ है श्रीमन्नारायण जो भवरोग का नाश कर मोक्ष देते हैं।

पहले अध्याय का तीसरा पाद

(समन्वय अध्याय, स्पष्ट जीवादि लिंग वाक्य पाद, 44 सूत्र, 10 अधिकरण)

इस पाद में दस अधिकरण हैं। सात अधिकरण साक्षात् संगति वाले हैं यानी परस्पर जुड़े हैं जबकि तीन अधिकरण क्षेपक के रूप में हैं जो छठे अधिकरण दूसरे सूत्र 1 | 3 | 24 की व्याख्या के लिये रचे गये हैं। ये क्षेपक वाले अधिकरण सातवें आठवें एवं नौवें अधिकरण हैं जो छठे अधिकरण के बीच में सम्पुट हैं। इन तीन अधिकरणों में विषयान्तर है फिरभी ये तीसरे पाद के अधिकरण के रूप में गिने जाते हैं। तीसरे पाद को 'स्पष्ट जीवादिलिङ्ग पाद' कहते हैं। यहां जीव एवं प्रकृति का जगत की सृष्टि के कारण होने का संशय उठता है। सूत्रकार ने अधिकरणों में इस मत का खंडन प्रस्तुत किया है। तालिका 5 में अधिकरणों का सार द्रष्टव्य है।

तालिका 5 : पहले अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (44 सूत्र, 10 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²²
18 द्युभ्वादि अधिकरण	1 3 1 से 1 3 6 तक	6	1 3 1
19 भूमाधिकरण	1 3 7 से 1 3 8 तक	2	1 3 2
20 अक्षराधिकरण	1 3 9 से 1 3 11 तक	3	1 3 3
21 ईक्षतिकर्माधिकरण	1 3 12	1	1 3 4
22 दहराधिकरण	1 3 13 से 1 3 22 तक	10	1 3 5
23 प्रमिताधिकरण	1 3 23 से 1 3 24 तक	2	1 3 6
	1 3 40 से 1 3 41 तक	2	प्रमिताधिकरण अधिकरण 26 अपशूद्राधिकरण के बाद 40 एवं 41 सूत्रों से पूरा होता है।
24 देवताधिकरण	1 3 25 से 1 3 29 तक	5	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत है। 1 3 7
25 मध्व अधिकरण	1 3 30 से 1 3 32 तक	3	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत है। 1 3 8

²² 1 | 3 | 1 यानी अध्याय 1 पाद 3 अधिकरण 1

26। अपशूद्राधिकरण	1।3।33 से 1।3।39 तक	7	यह अधिकरण 23 प्रमिताधिकरण के गर्भ से उत्पन्न विशेष उद्येश्य से प्रस्तुत है। 1।3।9
27। अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरण	1।3।42 से 1।3।44 तक	3	1।3।10

18। द्युभ्वादि अधिकरण 6 सूत्र 1।3।1 से 1।3।6 तक अधि 1।3।1

तीसरे पाद के इस पहले अधिकरण का पूर्व के अधिकरण से संगति यानी सम्बन्ध है। दूसरे पाद का पाचवां अधिकरण अदृश्यत्वादिगुणक अधिकरण है। इसमें यह प्रतिपादित है कि अक्षर परमात्मा का द्योत्तक है न कि जीव या प्रकृति का। मुण्डक उपनिषद के परवर्ती भाग में जीव को अक्षर होने का स्पष्ट संकेत है। इस आधार पर कुछ लोग संशय करते हैं कि जीव ही अक्षर है। इसका खंडन इस अधिकरण में है। मुण्डक का उल्लेख है कि अक्षर कहे जाने वाले परमात्मा स्वर्ग आकाश पृथ्वी मन श्वास तथा उनसे जुड़े सारी वस्तुओं के नियंता एवं नियंत्रक हैं। अतः इस सम्बंध में परमात्मा के अतिरिक्त कोई अनुमान व्यर्थ है। आप इस भवसागर के सेतु हैं। सेतु के उस पार दिव्यलोक वैकुण्ठ है जो मोक्ष का लक्ष्य है एवं उपनिषद में इसे अमृत कहते हैं। आप सबके हृदय में निवास करते हैं तथा शरीर के सब अवयवों से रक्तधमनियों वाली नाड़ी से जुड़े हुए हैं। आप हजारों जन्म लेते हैं जबकि आपको जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है। आप सर्वज्ञ हैं एवं समस्त प्राणी की सब बातों का पूर्ण ज्ञान रखते हैं। आप पर प्रणव से ध्यान लगाया जाता है।

पूर्वपक्षी का कहना है कि अनेको जन्म लेने एवं नाड़ी से जुड़े होने के कारण अक्षर जीव है न कि परमात्मा। सूत्रकार 1।3।1 में कहते हैं 'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्'। द्युभ्वाद्यायतनं का अर्थ है कि परमात्मा स्वर्ग पृथ्वी आदि के आधार हैं क्योंकि 'स्वशब्दात्' के अनुसार आपके अपने अनोखे गुण हैं। आपके गुण हैं : 1। जगत के समस्त वस्तुओं के आधार हैं। 2। आप भवसागर से मोक्ष के द्वार तक के सेतु हैं। 3। इस संदर्भ में उपनिषद में उल्लिखित 'आत्मा' परमात्मा का सूचक है। 4। आप सर्वज्ञ हैं एवं समस्त जीव की सब बातें आप जानते हैं। यह जीव के साथ लागू नहीं होता इसलिये आप परमात्मा हैं। 5। चूंकि आपके कर्म नहीं हैं इसलिये आपका जन्म लेना आवश्यक नहीं है परंतु राम तथा कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेकर आप दुष्टों का अंत करते हैं। 6। उपनिषद में यह उल्लिखित है कि भक्ति एवं शरणागति से जीव मोक्ष मिलने पर परमात्मा के मुग्धकारी दिव्यमंगल विग्रह का दर्शन करते हैं। तब जीव के सब पाप एवं पुण्य का क्षय हो जाता है एवं कुछेक गुणों को छोड़कर वह परमात्मा के समान हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस उपनिषद का अक्षर परमात्मा है न कि जीव।

19। भूमाधिकरण 2 सूत्र 1।3।7 से 1।3।8 तक अधि 1।3।2

तीसरे पाद के दूसरे अधिकरण का पूर्व के अधिकरण से संगति यानी सम्बंध है कि पिछले अधिकरण में बिना किसी त्रुटि के परमात्मा को अक्षर सिद्ध किया गया है और इस अधिकरण से संदर्भ रखने वाले छान्दोग्य उपनिषद में जीव बिना त्रुटि का दर्शाया गया है। संशय उठता है कि जीव की महत्ता है न कि परमात्मा की। इस अधिकरण में पुनः इसका निराकरण है।

छान्दोग्य के सातवें अध्याय 'भूमा विद्या प्रकरणम्' के संदर्भ में विवेचन प्रस्तुत है। नारद को चारो वेद ऋक यजुः साम एवं अथर्व, रामायण काव्य, पुराण, पाचवें वेद महाभारत, व्याकरण, कर्मकाण्ड, गणित, ज्योतिष, प्राकृतिक आपदा की पूर्वजानकारी, भूगर्भ के छिपे धन, तर्क, मंदिर में एकायन शाखा की पूजा पद्धति, देवताओं पर ध्यान

करने की विधि, छः वेदांग, मानव को आकर्षित करने की कला, धनुर्विद्या, सांप पकड़ने का गरुड़विद्या, गान एवं नृत्यविद्या, तथा आयुर्वेद आदि में निर्वाध पहुंच थी परंतु ब्रह्म विद्या का ज्ञान नहीं था। वे सनत्कुमार के पास जाकर ब्रह्मविद्या में दीक्षित हुए। सनत्कुमार ने सीधे तरीके से ब्रह्मा विद्या न बताकर विभिन्न वस्तुओं पर नारद को ध्यान करने को कहा और कहा कि वे उन वस्तुओं को परमात्मा समझकर उन पर ध्यान करें। नारद के ध्यान की वस्तुयें हैं : नाम, वाणी, मन, इच्छा, संकल्प, शक्ति, भोजन, जल, अग्नि, आकाश, मन्मथ, दिशा, प्राण यानी जीव, एवं अंत में परमात्मा जो इस उपनिषद में सत्य के नाम से सम्बोधित हैं।

नारद नाम आदि पर ध्यान कर असंतुष्ट रहे। जब प्राण पर ध्यान लगाया तो वे उदासीन भाव के हो गये। प्राण जीव का भी सम्बोधन है क्योंकि श्वास प्राण है और जीव सदा प्राण के साथ रहता है। सनत्कुमार ने नारद को बताया कि जहां व्यक्ति न तो कुछ देखता है, न कुछ सुनता है, और न तो कोई चीज जानता है, उसे भूमा कहते हैं। यहां असीम आनन्द प्राप्त होता है और अगर कोई कुछ सुनता भी है तथा कुछ देखता भी है तो असीम आनन्द की तुलना में ये सब महत्त्वहीन हो जाते हैं। अंततः नारद को सनत्कुमार ने सत्य यानी परमात्मा पर ध्यान करने को कहा। नारद ने यह जानना चाहा कि इस जगत का आधार कौन है। सनत्कुमार ने बताया कि परमात्मा जगत का आधार है। जब नारद ने यह जानना चाहा कि परमात्मा का आधार कौन है तो सनत्कुमार ने बताया कि वे स्वयं पर ही आश्रित हैं उनका कोई पृथक आश्रय नहीं है।

पूर्वापक्षी का मत है कि भूमा जीव के लिये प्रयुक्त हैं क्योंकि सनत्कुमार का ध्यान करने वाली अंतिम वस्तु प्राण है जो जीव है। सूत्रकार ने सूत्र 1|3|7 'भूमा संप्रसादादध्युपदेशात्' से पूर्वापक्षी के मत का खंडन किया है। इस सूत्र का अर्थ है : भूमा परमात्मा है। संप्रसादाद जीव है। परमात्मा जीव से सबतरह से श्रेष्ठ है। भूमा असीम आनन्द को भी कहते हैं। परमात्मा की विशिष्टतायें हैं : आप पुरुषार्थ के चरम लक्ष्य हैं। आप स्वयं पर आश्रित हैं तथा आप अन्तर्यामी के रूप में सब प्राणी की अन्तरात्मा हैं।

20 | अक्षराधिकरण 3 सूत्र 1|3|9 से 1|3|11 तक अधि 1|3|3

तीसरे पाद के इस तीसरे अधिकरण की सहायता से पूर्व की शंका का निराकरण होता है कि ब्रह्म को छोड़कर कोई अन्य वस्तु अपने पर आश्रित है। इस अधिकरण का विषयवाक्य बृहदारण्यक उपनिषद से उद्धृत है। मिथिला के राजा जनक ने ऋषियों की सभा बुलायी और यह घोषणा की कि जो सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी होगा उसे स्वर्णजटित सींग वाली 1000 गायें पुरस्कार में दी जायेंगी। सभी ऋषिगण एकत्रित हुए परंतु किसी ने सबसे ज्यादा ब्रह्मनिष्ठ होने का दावा नहीं किया। सभी शांत बैठे थे। तब याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने शिष्य से सभी गायों को अपने आश्रम पर ले जाने को कहा। ऐसा देख ऋषिगण ने विरोध किया और एक एक करके याज्ञवल्क्य से ब्रह्म सम्बंधित प्रश्न पूछे जाने लगे। ऋषिप्रवर ने सबका समाधान शांत चित्त से किया। इसी बीच गार्गी नाम की एक महिला ने भी दो प्रश्न पूछे। वह कौन सी वस्तु है जिसमें वस्त्र की सूत की तरह भूलोक से ऊपर एवं नीचे के सभी लोक गुंथे हुए रहते हैं ? ऋषि ने उत्तर में 'आकाश' बताया। गार्गी ने प्रसन्न होकर ऋषि का अभिवादन किया एवं दूसरा प्रश्न पूछा कि आकाश किस पर आश्रित है। ऋषि का उत्तर था 'अक्षर'। उन्होंने आगे बताया कि यह अक्षर न तो स्थूल है और न सूक्ष्म है। न लम्बा है न छोटा है। न लालरंग का है, न

किसी स्वरूप वाला है। न निष्पाप है, और न तेल के समान चिकना है। न अंधकार वाला है, न हवा है, न आकाश है, न स्वाद वाला है, न आंखें है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न अग्नि है, न चौड़ा है, न मुखड़ा वाला है, न इन्द्रियों वाला है, न बाहर है और न भीतर है, और न कुछ खाता है। अक्षर ही सूर्य एवं चंद्र तथा अन्य सभी का नियंत्रक है। यहां अक्षर शब्द की व्याख्या पर प्रश्न चिह्न लगा है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि प्रकृति या जीव ही यह अक्षर है न कि परमात्मा। उनका तर्क है कि गार्गी के प्रश्न में आकाश का आश्रय प्रकृति है तथा जड़ वस्तुओं का आश्रय जीव है। इसलिये प्रकृति एवं जीव ही अक्षर हैं।

सूत्रकार ने सूत्र 1 | 3 | 9 'अक्षरम् अम्बरान्तधृते ः' से बताया है कि परमात्मा ही अक्षर है जो आकाश को बनाने वाली प्रकृति का आश्रयदेने वाला है। सूत्रकार ने दूसरे सूत्र 1 | 3 | 10 से जीव को भी अक्षर होने से निरस्त कर दिया है। अतः अक्षर परमात्मा ही सिद्ध होता है।

21 | ईक्षतिकर्माधिकरण 1 सूत्र 1 | 3 | 12 अधि 1 | 3 | 4

तीसरे पाद का चौथा अधिकरण एक सूत्र का है। पूर्व के अधिकरण से इसकी संगति निम्नवत है। पूर्व के उपनिषद के उद्धरण से यह सिद्ध है कि परमात्मा को इन आंखों से नहीं देखा जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि सर्वत्र स्थित दिव्यात्मा स्वरूप को देखा नहीं जा सकता। यह संशय उठता है कि इस अधिकरण के विषयवाक्य वाले प्रश्नोपनिषद में दिखने वाला पुरुष परमात्मा नहीं हो सकता।

प्रश्नोपनिषद का प्रसंग है कि एक बार छः ऋषि सुकेश, शैब्य, सौर्यायणी, कौसल्य, भार्गव, एवं कबन्धी ब्रह्म ज्ञान में दीक्षित होने के लिये पिप्लाद ऋषि के पास पहुंचे। पिप्लाद ने सबों को एक वर्षतक कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के बाद आनेको कहा तथा साथ में यह भी बता दिया कि एक वर्षवाद वे उनके प्रश्न के उत्तर देने में सक्षम होंगे या नहीं यह तो उनलोगों के प्रश्न सुनने के बाद पता चलेगा। प्रश्नोपनिषद इन छः ऋषियों के प्रश्न तथा पिप्लाद ऋषि के प्रश्नोत्तर हैं।

सत्यकाम का प्रश्न था कि जीवन पर्यन्त प्रणव पर ध्यान करने से कौन सा लोक मिलेगा। प्रणव पर ध्यान को प्रणव उपासना कहते हैं जो तीन प्रकार का होता है : 1। एकमात्रा प्रणव उपासना 2। द्विमात्रा प्रणव उपासना 3। त्रिमात्रा प्रणव उपासना। मात्रा से यहां तात्पर्य 'क्षण' से है। एकमात्रा प्रणव का अर्थ है कि सामान्य तरीके से प्रणव के उच्चारण में लगा समय। इस तरह से द्विमात्रा धीरे धीरे उच्चारण होगा एवं इसमें एकमात्रा का दुगुना समय लगेगा। त्रिमात्रा में एकमात्रा से तीन गुना समय लगेगा। एकमात्रा वाले ऋग वेद के माध्यम से मनुष्य लोक पाते हैं तथा यहां सम्मान एवं वैभव का जीवनसुख भोगते हैं। द्विमात्रा वाले यजुर्वेद के माध्यम से स्वर्गलोक पाते हैं एवं वहां का सुखभोगने के पश्चात् इस संसार में वापस लौट आते हैं। त्रिमात्रा वाले सामवेद के माध्यम से दिव्यलोक वैकुण्ठ जाते हैं। ये अपनी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। परमात्मा को 'परात्परम् पुरिशयम पुरुषम्' कहते हैं क्योंकि परमात्मा ध्यान करने वाले के भीतर अन्तर्यामी बनकर रहते हैं। यह अन्तर्यामी परात्पर पुरुष जीवघन चतुर्मुख ब्रह्मा से श्रेष्ठ है। संशय यह होता है कि क्या यह परात्पर पुरुष हिरण्यगर्भा है या चतुर्मुख ब्रह्मा है या परमात्मा है।

पूर्वपक्षी कहते हैं कि अनुमान से इसका लोक स्वर्ग से ऊपर है अतः यह हिरण्यगर्भा है। सूत्रकार 1 | 3 | 12 सूत्र 'ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः' से इसका खंडन करते हैं। 'सः' यानी परमात्मा श्रीमन्नारायण हैं जो कि 'ईक्षतिकर्म' यानी ध्यान के वस्तु हैं एवं ध्यान में दिखते हैं। 'व्यपदेशात्' यानी केवल परमात्मा के अनोखे गुण हैं जो उपनिषद बताता है कि आप उर्मिष्टकहीन यानी भूख, प्यास, दुःख, भ्रम, बुढ़ापा, मृत्यु एवं भय से मुक्त हैं।

22 | दहराधिकरण 10 सूत्र 1 | 3 | 13 से 1 | 3 | 22 तक अधि 1 | 3 | 5

तीसरे पाद के पाचवें अधिकरण में 10 सूत्र हैं एवं इसे दहर अधिकरण कहते हैं। पूर्व में यह प्रतिपादित हुआ कि सबके भीतर अन्तर्यामी रहने वाले परमात्मा हैं। आपही आकाश भी है जो कि दृश्यमान है। अतः यह संशय होता है कि सबके भीतर अन्तर्यामी रहनेवाले परमात्मा नहीं है। इस अधिकरण में इस संशय का निराकरण किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद का अंतिम एवं आठवां अध्याय 'दहर विद्या' का विवेचन करता है। यह मोक्षदायी ब्रह्मविद्या है।

उपनिषद में उल्लेख है कि मानव शरीर में नौ द्वार हैंः दो आंख, दो कान, दो नासिका छिद, एक मुंह, दो मल तथा मूत्र विसर्जन द्वार। इस शरीर को ब्रह्मपुर कहते हैं एवं परमात्मा के इसमें बास है। परमात्मा श्रीमन्नारायण एवं इनके आठ कल्याण गुण पर ध्यान किया जाता है। आपको दहराकाश या केवल दहरा कहा जाता है। दहरा का शाब्दिक अर्थ है 'बहुत छोटा'। आप हृदय कमल के छोटे स्थान में रहते हैं इसलिये आपको दहरा कहा जाता है। आपके आठ कल्याण गुण को गुणाष्टक कहते हैं : 1 | अपहतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल | 2 | विजरो यानी बुढ़ापा से मुक्त | 3 | विमृत्युः यानी मृत्यु से मुक्त | 4 | विशोको यानी शोक दुःख रहित | 5 | विजिघत्सो यानी भूख रहित | 6 | अपिपाश यानी प्यास रहित | 7 | सत्यकाम यानी सभी इच्छा की पूर्ति करनेवाला | 8 | सत्यसंकल्प यानी इच्छा से सबकाम करने में समर्थ | दहराकाश दृश्यमान आकाश की तरह अतिविस्तृत हैं। आप भोग्य, भोगस्थान, भोगोपकरण, एवं भोक्ता के आश्रय हैं। यहां भोग्य यानी आनन्द की वस्तु, भोगस्थान यानी भोग की जगह, भोगोपकरण यानी भोग के अवयव अंग, तथा भोक्ता जीव है। इस जगत में प्राणी जो भी आनन्द की वस्तु की इच्छा करते हैं वह सब दहराकाश है। परमात्मा ही चरम आनन्द की वस्तु हैं।

उपनिषद में उल्लेख है कि जो दहराकाश एवं कल्याण गुण पर ध्यान करते हैं वे मोक्ष के भागी होते हैं। वैकुण्ठ दिव्यलोक में पहुंचकर मुक्तात्मा इन आठ कल्याण गुणों से विभूषित हो जाते हैं। मुक्तात्मा सर्वत्र परिभ्रमण में समर्थ हो जाते हैं तथा जगत की सारी वस्तुओं को परमात्मा पर आश्रित उनके शरीर के रूप में देखते हैं। मुक्तात्मा अपने अनंत पूर्वजन्मों के सगे सम्बन्धियों को देखने में समर्थ रहते हैं। ये सत्यलोक से लेकर पाताल तक 14 लोक को देखने में समर्थ हैं। 14 लोकों के समूह को ब्रह्मांड कहते हैं तथा श्रीमन्नारायण की लीला विभूति में ऐसे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं। लीला विभूति परमात्मा का क्रीड़ा स्थल है जबकि वैकुण्ठ को नित्य विभूति कहते हैं जो आपका स्थायी स्थान है एवं लीला विभूति से तीन गुना बड़ा है। विभूति का अर्थ है संपदा। अतः लीला विभूति एवं नित्य विभूति श्रीमन्नारायण की संपदा हैं।

यह संशय उत्पन्न होता है कि दहराकाश जीव है या आकाश या परमात्मा। दृश्यमान आकाश को भूताकाश कहते हैं। पूर्वापक्षी कहते हैं कि दहराकाश भूताकाश है क्योंकि दोनों में आकाश शब्द वर्तमान है। सूत्रकार इसको निरस्त करते हुए कहते हैं कि उपनिषद में दहराकाश समस्त जगत का आश्रय है जिसमें भोग्य भोगस्थान भोगोपकरण एवं भोक्तृवर्ग सम्मिलित है। पूर्वापक्षी भी महसूस करते हैं कि दहराकाश जीव हो सकता है क्योंकि जीव जो संप्रसाद कहा जाता है जब मोक्ष प्राप्त करता है तो आठ सोये हुए कल्याण गुण खिल उठते हैं। यह प्रजापति ब्रह्मा ने इन्द्र को उपनिषद के बाद के अंश में बताया है जिसे 'प्रजापति वाक्य' कहते हैं। सूत्रकार भी इसको निरस्त करते हुए पहले सूत्र 1 | 3 | 13 'दहर उत्तरेभ्यः' से बताते हैं कि 'दहर' परब्रह्म परमात्मा हैं क्योंकि 'उत्तरेभ्यः' यानी उपनिषद के बाद के अंश में दहराकाश को जड़ एवं चेतन जगत का आश्रय बताया है जो कि जीव नहीं हो सकता। वैकुण्ठवासी मुक्तात्मा में आठ कल्याण गुण का प्रस्फुटन भी श्रीमन्नारायण की कृपा एवं इच्छा से ही संभव होता है।

23 | प्रमिताधिकरण 2 + 2 सूत्र 1 | 3 | 23 से 1 | 3 | 24 तक तथा 1 | 3 | 40 एवं 1 | 3 | 41 तक अधि 1 | 3 | 6

तीसरे पाद के इस छठे अधिकरण में 2 सूत्र पहले हैं 1 | 2 | 23 से 1 | 3 | 24 तक तथा 2 सूत्र नौवें अधिकरण के बाद हैं 1 | 3 | 40 एवं 1 | 3 | 41। पूर्व के अधिकरण में परमात्मा को दहराकाश सिद्ध किया गया। उपासक के हृदयकमल में ध्यान की सुविधा के लिये आपको बहुत छोटा बताया गया है। संशय उठता है कि जीव भी बहुत छोटा है तब तो जीव ही हृदय में रहता है। इस अधिकरण में इस संशय का निदान हुआ है। यहां परमात्मा का आकार उपासक के अंगूठे के बराबर बताया गया है।

श्रीमन्नारायण के पांच स्वरूप बताये गये हैं : पर, व्यूह, विभव, अर्चा, एवं अन्तर्यामी। 1। पर स्वरूप वैकुण्ठ में विराजमान है जिसके दर्शन का आनन्द आदिशेष, गरुड़, विष्वक्सेन, तथा मुक्तात्मा को मिलता है। आप परवासुदेव के नाम से जाने जाते हैं एवं अष्टाक्षर जप में लक्ष्मी के साथ आपके 'पर स्वरूप' का ध्यान किया जाता है। 2। व्यूह स्वरूप क्षीराब्धि में विराजमान है। आप चार रूप में दृश्यमान होते हैं : वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, एवं अनिरुद्ध। वैकुण्ठ के परवासुदेव एवं व्यूह के वासुदेव एक ही हैं दोनों में कोई अन्तर नहीं है। संकर्षण प्रलयकाल में संहार के लिये जाने जाते हैं। व्यूह प्रद्युम्न सृजन के लिये हैं तथा व्यूह अनिरुद्ध पालन के लिये हैं। 3। विभव रूप श्रीमन्नारायण के अवतार के लिये हैं जैसे राम कृष्ण आदि। 4। अर्चा रूप में श्रीमन्नारायण मंदिर के पूजा विग्रह तथा शालग्राम में स्थित रहते हैं जिसे सभी भक्त पूजते हैं। 5। अन्तर्यामी रूप में आप जड़ चेतन के भीतर अन्तरात्मा बनकर रहते हैं।

अन्तर्यामी दो प्रकार के होते हैं : स्वरूप अन्तर्यामी एवं विग्रह अन्तर्यामी। स्वरूप अन्तर्यामी से आप मूल स्वभाव के साथ सभी कीड़े मकोड़े मानव पशु आदि प्राणियों में निवास करते हैं। विग्रह अन्तर्यामी के रूप में आप उपासक के हृदय में अंगूठे के आकार में सर्वकल्याणगुण सम्पन्न ध्यान वस्तु के रूप में रहते हैं।

इस अधिकरण का विषयवाक्य कठोपनिषद से उद्धृत है जो यम एवं नचिकेता के संवाद के रूप में है। परमात्मा उपासक के शरीर के अवगुणों की अवहेलना करके उसके हृदय में अंगूठे के आकार में रहते हैं। जो प्राणी पहले थे आज हैं तथा भविष्य में रहेंगे सब के आप ही नियंता हैं।

पूर्वापक्षी कहते हैं कि उपनिषद में कहा गया है कि जीव अंगूठे के आकार में इन्द्रियों का मालिक बनकर देह में घूमते रहता है। अतः अंगूठे के स्वरूप वाली इकाई परमात्मा न होकर जीव ही है। सूत्रकार इसे अस्वीकारते हुए सूत्र 1 | 3 | 23 में 'शब्दाद् एव प्रमितः' कहते हैं। 'प्रमितः' यानी अंगूठे के आकार का परमात्मा है क्योंकि 'शब्दादेव' यानी उपनिषद में उल्लेख है कि आप भूत वर्तमान एवं भविष्य के प्राणियों के नियंता हैं।

इस अधिकरण का दूसरा सूत्र 1 | 3 | 24 'हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्' में यह कहा गया है कि उपासक के हृदय में परमात्मा अंगूठे के आकार में रहते हैं क्योंकि उतनी ही जगह उपासक के शरीर में उपलब्ध है। सूत्रकार के इस बात से शंका उत्पन्न होती है। इसलिये सूत्रकार ने तीन विशेष अधिकरण का यहां समावेश कर दिया जो एक तरह से मुख्यविषय वस्तु से अलग हैं यानी क्षेपक हैं।

24 | देवताधिकरण 5 सूत्र 1 | 3 | 25 से 1 | 3 | 29 तक अधि 1 | 3 | 7

यह पूर्व के प्रमिताधिकरण की व्याख्या के लिये रचित 3 विशेष अधिकरणों का पहला अधिकरण है। इन तीनों अधिकरणों को क्षेपक या तीसरे पाद के छठे अधिकरण के गर्भ से निःसृत बताते हैं तथा छठे अधिकरण के बीच में सम्पुट हैं। पहले अधिकरण में 5 सूत्र हैं। सामान्य गिनती में यह तीसरे पाद का सातवां अधिकरण है। इस अधिकरण में यह बताया गया है कि स्वर्गिकजन जो देवता कहे जाते हैं तथा जिसमें इन्द्र भी आते हैं उपासना के माध्यम से मोक्ष के अधिकारी हैं।

इस अधिकरण के पूर्वपक्षी निरीश्वर मीमांसक हैं एवं इनका मत है कि देवतागण को शरीर प्राप्त नहीं है इसलिये वे उपासना के अधिकारी नहीं हैं। देवता को पांच वस्तुयें प्राप्त नहीं हैं : भौतिक शरीर, यज्ञ की आहूति, एक ही समय कई यज्ञों में उपस्थित रहना, अर्पित वस्तु से प्रसन्न होना, तथा वरदान देना। उपासना के लिये दो अर्हतायें हैं : अर्थित्व एवं सामर्थ्य। सामर्थ्य से उपासना के लिये भौतिक शरीर मिलता है एवं अर्थित्व से मोक्ष की कामना होती है। चूंकि देवता को भौतिक शरीर प्राप्त नहीं है इसलिये वे उपासना के अधिकारी नहीं हैं।

इसको निरस्त करते हुए सूत्रकार ने 1 | 3 | 25 में कहा है 'तुदपर्यपि वादरायणः संभवात्'। अर्थ है कि वादरायण कहते हैं मानव के अतिरिक्त देवों को भी उपासना का अधिकार है। क्योंकि 'संभवात्' से यह प्रकट होता है कि देवता भी 'सामर्थ्य' एवं 'अर्थित्व' के योग्य हैं। शास्त्र कहता है कि इन्द्र अपने हाथ में बज्र धारण करते हैं। यदि शरीर नहीं होता तो हाथ में बज्र कैसे धारण करते ? देवतागण भी तापत्रय यानी आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक से ग्रस्त होते हैं। कई कारणों से मानसिक स्थिति भी शरीर में रोग एवं दुःख उत्पन्न करती है। इस स्थिति को आध्यात्मिक कहते हैं। आधिदैविक भूकंप बाढ़ आदि से उत्पन्न स्थिति है। आधिभौतिक मौसम एवं जलवायु के कारण उत्पन्न स्थिति है। मोक्ष मिलने पर तापत्रय लुप्त हो जाते हैं। देवता भी मोक्ष की कामना करते हैं जो बताता है कि देवता में 'अर्थित्व' की योग्यता है। अतः देवता भी उपासना के अधिकारी हैं।

यहां एक आकर्षक प्रश्न उठता है जिसका भी निराकरण सूत्रकार करते हैं। जब देवता शरीर धारण करते हैं तो एक समय में एक से अधिक यज्ञ में कैसे उपस्थित रहेंगे ? सूत्रकार कहते हैं कि योग एवं अध्यात्म के बल पर देवता कई रूप से अनेकों स्थलों पर रह सकते हैं। उदाहरण स्वरूप सौभरी ऋषि। आपने तपबल से एक ही साथ 50 शरीर में विराजकर मान्धाता की पुत्रियों से परिणय किया एवं उनके साथ जीवन यापन किया। दूसरा प्रश्न है कि देहधारी इन्द्र के देह का कभी नाश भी होगा। ऐसी स्थिति में शास्त्रोक्त इन्द्र की अनवरत सत्ता में व्यतिरेक हो जायेगा। इसका समाधान है कि इन्द्र कोई व्यक्ति या देवताविशेष नहीं अपितु एक पद है। एक के जाने पर दूसरा स्वयंमेव वहां विराजते हैं। जैसे एक राजा के निधन पर दूसरे राजा का राज्याभिषेक होता है। तीसरा प्रश्न है कि यद्यपि वेद को अपौरुषेय कहा गया है तदपि कुछ अंश को 'वशिष्टसूक्त' एवं 'विश्वामित्रसूक्त' कैसे कहते हैं। इसका समाधान है कि वेद के एक अंश के ये ऋषि लोग हैं जो अपने आध्यात्मिक बल से उस अंश से जुड़ गये हैं। वह अंश पहले भी था और भविष्य में भी रहेगा परंतु ऋषि बदल सकते हैं। अतः वेद शाश्वत है एवं श्रीमन्नारायण इसका स्मरण कर सृष्टि करते हैं। अपने नाभिकमल से ब्रह्मा की रचना कर उन्हें वेद का ज्ञान कराते हैं।

25। मध्वधिकरण 3 सूत्र 1|3|30 से 1|3|32 तक अधि 1|3|8

तीन क्षेपक अधिकरणों में से यह दूसरा है तथा सामान्य रूप से तीसरे पाद का आठवां अधिकरण है। इसमें 3 सूत्र हैं। वसु रुद्र एवं आदित्या विशेष कोटि के देवगण हैं। वसु को ब्रह्म का रूप भी मानते हैं। क्या वसु को भी उपासना करके मोक्ष प्राप्ति की आवश्यकता है। इसे मधुविद्या कहते हैं। पहले दो सूत्र 30 एवं 31 में जैमिनिकहते हैं कि ये उपासना के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि ये ब्रह्म की कोटि में है। तीसरे सूत्र 32 'भावं तु बादरायणोऽस्ति हि' से बादरायण उपर्युक्त बातों का खंडन कर यह बताते हैं कि इन्हें भी उपासना करके कमिक रूप से मोक्ष लेने की आवश्यकता है तथा इस तरह की मुक्ति को कममुक्ति कहते हैं। पहले दो सूत्र को 'पूर्व पक्षसूत्र' एवं तीसरे सूत्र को 'सिद्धांतसूत्र' कहते हैं।

26। अपशूद्राधिकरण 7 सूत्र 1|3|33 से 1|3|39 तक अधि 1|3|9

तीन क्षेपक अधिकरणों में से यह अंतिम है तथा सामान्य रूप से तीसरे पाद का नौवां अधिकरण है। इसमें 7 सूत्र हैं। जो उपनयन संस्कार के अधिकारी नहीं हैं वे वेद नहीं पढ़ सकते तथा फलस्वरूप उपासना नहीं कर सकते। छान्दोग्य उपनिषद पर यह अधिकरण आधारित है। जानश्रुति एक उदार एवं दानशील राजा थे। रैक्वमुनि ने उन्हें शूद्र कहकर 32 ब्रह्मविद्या में से एक 'संवर्ग विद्या' में दीक्षित किया। एक रात राजा जानश्रुति छत पर विश्राम कर रहे थे। उसी समय दो हंस वहां पहुंचा। एक ने कहा राजा विश्राम कर रहे हैं अतः शांत रहने की आवश्यकता है। दूसरे ने कहा कि क्या राजा रैक्व मुनि हैं जिनके ज्ञान के सामने जगतभर का समस्त ज्ञान लेश मात्र है यानी बहुत ही कम है। राजा ने तुरत रैक्व मुनि का पता लगाया एवं उनके पास जाकर ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की। मुनि ने प्रार्थना ठुकरा दी। राजा ने अंततः अपनी पुत्री मुनि को अर्पित कर

दिया। मुनि ने 'शूद्र' कह कर राजा को दीक्षा दी। राजा क्षत्रिय कुल के थे परंतु मुनि ने शूद्र कहा। संस्कृत में शूद्र का अर्थ 'व्यथित' होता है। राजा का मन ब्रह्मज्ञान की अनुपस्थिति में व्यथित था इसलिये मुनि ने उन्हें शूद्र कहा। इस अधिकरण का पहला सूत्र है सूत्र 33 'शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि' यानी हंस से अपमानित होकर राजा व्यथित मन मुनि के पास गये थे इसलिये मुनि ने राजा को शूद्र कहा था।

27 | अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरण 3 सूत्र 1|3|42 से 1|3|44 तक अधि 1|3|10

यह तीसरे पाद का दसवां यानी अंतिम अधिकरण है। इसका विषयवाक्य छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें एवं अंतिम अध्याय पर आधारित है 'आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा। तत् ब्रह्म तदमृतं स आत्मा'। पूर्वपक्षी कहते हैं कि यहां आकाश 'मुक्तात्मा' को कहा गया है न कि परमात्मा को। सूत्रकार ने इसका खंडन कर सूत्र 42 'आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात्' से बताया है कि श्रीमन्नारायण ही आकाश हैं क्योंकि वे 'नाम रूप व्याकरण' में समर्थ हैं।

पहले अध्याय का चौथा पाद

(समन्वय अध्याय, स्पष्टतर जीवादि लिंग वाक्य पाद, 29 सूत्र, 8 अधिकरण)

इस पाद में आठ अधिकरण हैं। इसे स्पष्टतर जीवादिलिङ्ग पाद कहते हैं। इसमें सूत्रकार वादरायण जगत के आदि कारण की निर्णयात्मक विवेचना करते हैं। सभी उपनिषद् श्रीमन्नारायण को ही उपादान कारण, एवं निमित्त कारण बताते हैं। यह तो निर्विवाद है कि आप ही सहकारी कारण हैं। इस पाद में सांख्य दर्शन का स्पष्ट उल्लेख है जिसमें यह बताया गया है कि मौलिक पदार्थ ही जगतसृष्टि का आदिकारण है। इसे प्रकृति, प्रधान, अनुमानिक, तथा अशब्द भी कहते हैं। सांख्य की बात करने वाले उपनिषद् वाक्य को छायानुसारी वाक्य कहते हैं।

आठ अधिकरण में से पहले दो अधिकरण कपिल के निरीश्वर सांख्य सिद्धांत का खंडन करते हैं। तीसरा अधिकरण सांख्य के तत्वों को निरस्त करता है। चौथा अधिकरण 'अव्याकृत' से मौलिक पदार्थ के सम्बोधन को परमात्मा श्रीमन्नारायण सिद्ध करता है। सांसारिक बंधन के जीव बद्धजीव एवं मोक्षप्राप्त जीव मुक्तजीव को जगत का रचयिता होने का खंडन बाद के दो अधिकरण 5 एवं 6 में उल्लिखित है। अंतिम 7 एवं 8 अधिकरण 'शेष्वर सांख्य' का खंडन करते हैं जिसमें ब्रह्म को निमित्त कारण बताया गया है न कि उपादान कारण।

तालिका 6 : पहले अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (29 सूत्र, 8 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²³
28। अनुमानिकाधिकरण	1।4।1 से 1।4।7 तक	7	1।4।1
29। चमसाधिकरण	1।4।8 से 1।4।10 तक	3	1।4।2
30। सांख्योपसंग्रहाधिकरण	1।4।11 से 1।4।13 तक	3	1।4।3
31। कारणत्वाधिकरण	1।4।14 से 1।4।15 तक	2	1।4।4
32। जगद्वाचित्वाधिकरण	1।4।16 से 1।4।18 तक	3	1।4।5
33। वाक्यान्वयाधिकरण	1।4।19 से 1।4।22 तक	4	1।4।6
34। प्रकृति अधिकरण	1।4।23 से 1।4।28 तक	6	1।4।7
35। सर्वव्याख्यान अधिकरण	1।4।29	1	1।4।8

²³ 1।4।1 यानी पहले अध्याय के चौथे अध्याय का पहला अधिकरण।

28 | अनुमानिकाधिकरण 7 सूत्र 1|4|1 से 1|4|7 तक अधि 1|4|1

यह चौथे पाद का पहला अधिकरण है। इसमें सात सूत्र हैं तथा इसका विषयवाक्य कठोपनिषद पर आधारित है जिसमें यम नचिकेता को ब्रह्मज्ञान देते हैं। यम इस मानव शरीर को एक रथ से तुलना करते हैं। जीव रथारूढ़ यात्री है तथा इन्द्रियां इस रथ के घोड़े हैं। बुद्धि सारथी है। मन ही लगाम का काम करता है। विषयसुख यात्रा की दिशाएँ हैं जिसमें घोड़े छलांग लगाकर दौड़ते हैं। अनुभूति से आनंद लेने वाले पांच इन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं एवं इनके सुख के वस्तु हैं : कान से सुने जाने वाले शब्द, त्वचा से स्पर्श, आंखों से रंग, जीभ से स्वाद, एवं नाक से गंध।

रूपक से शरीर को रथ बताने के प्रकरण में मोक्ष के आकांक्षी भक्त को यम एक के बाद एक नियंत्रण का अभ्यास करने को कहते हैं। पहला नियंत्रण मन पर लगाना है। विषय सुख के वस्तु को दूर रहने पर भी मन उसके बारे में सोचते रहता है। दूसरे स्थान पर बुद्धि का नियंत्रण है। तीसरे स्थान पर जीव का नियंत्रण है एवं इसके बाद शरीर पर नियंत्रण है। स्वस्थ शरीर रहने पर ही उपासक परमात्मा की साधना में संलग्न हो सकेगा। इस उपनिषद में शरीर को 'अव्यक्त' कहते हैं।

इसके बाद परमात्मा को नियंत्रित करने का महत्व है। तात्पर्य है कि साधक परमात्मा के चरणकमल में शरणागति के माध्यम से परमात्मा की कृपा का पात्र बनता है। नियंत्रण के इस क्रम को 'वशीकार्य परम्परा' कहते हैं। निरीश्वरवादी सांख्य मतावलंबी का मत है कि 'अव्यक्त' यानी प्रकृति जिसे अनुमानिका भी कहते हैं। यही जगत की रचना का कारण है। प्रकृति से श्रेष्ठ जीव है जो पुरुष नाम से जाना जाता है। प्रकृति पुरुष के समक्ष सृष्टि का काम करती है।

सूत्रकार 1|4|1 से 'अनुमानिकम् अप्य् एकेषाम् इति चेन् न शरीर - रूपक — विन्यस्त - गृहीतेर् दर्शयति च' सांख्यमत का खंडन करते हैं। 'एकेषाम्' यानी कठोपनिषद में, 'अनुमानिकम्' यानी प्रकृति, 'अपि' यानी जगत का कारण है, 'न' यानी मान्य नहीं है। क्योंकि 'शरीर - रूपक — विन्यस्त' यानी इस प्रसंग में मानव शरीर की तुलना रथ से की गयी है। 'गृहीते' यानी इस आशय से वशीकार्य परम्परा का वर्णन किया गया है। 'दर्शयति च' यानी उपनिषद 'अव्यक्त' शरीर के नियंत्रण का निदेश करता है।

अव्यक्त का शाब्दिक अर्थ है अस्पष्ट या न दिखने वाला। संशय होता है कि जब शरीर दिखता है तो अव्यक्त कैसे हुआ। पांच मौलिक तत्व मिट्टी जल वायु अग्नि एवं आकाश का रूपांतरण ही मानव शरीर है परंतु पाचों तत्व अपने मौलिक रूप में नहीं दिखते इसलिये शरीर अव्यक्त हुआ। इस अधिकरण का मुख्य लक्ष्य शरीर को अव्यक्त सिद्ध करना है।

29 | चमसाधिकरण 3 सूत्र 1|4|8 से 1|4|10 तक अधि 1|4|2

चौथे पाद के इस दूसरे अधिकरण में 3 सूत्र हैं। पूर्व के अधिकरण में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का खंडन किया गया है। यह भी प्रतिपादित हुआ कि 'अव्यक्त' प्रकृति या अनुमानिका या प्रधान का सूचक न होकर केवल जीव के शरीर का सूचक है। श्वेताश्वतर उपनिषद में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का उल्लेख है। इससे यह संशय होता है

कि पूर्व के अधिकरण का निर्णय उचित नहीं हो सकता है। अतः इस अधिकरण से पूर्व के निर्णय को पुनः परख कर सत्यापित किया गया है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में उल्लेख है कि प्रकृति तीन तत्व अग्नि जल एवं मिट्टी से बनी है। इनके क्रमशः लाल श्वेत एवं काला रंग हैं तथा प्रकृति इनकी सहायता से विभिन्न रंगों वाले वस्तु देवता तथा जीव की रचना स्वतंत्र रूप से करते रहती है। अज का अर्थ अजन्मा है एवं इस उपनिषद में प्रकृति को अज कहा गया है। अतः विपक्षी घोषण करते हैं कि प्रकृति जीव के समक्ष सब की सृष्टि स्वतंत्र रूप से करती है।

सूत्रकार ने 1|4|8 'चमसवदविशेषात्' से इस मत का खंडन किया है। 'चमस' यज्ञ में प्रयोग में लाने वाला लकड़ी का पात्र है जिसमें सोमलता का रस यज्ञ के ऋत्विकों के पान हेतु एकत्रित किया जाता है। चमसा एक पात्र का संकेत करता है। अज का अर्थ है अजन्मा परंतु उपनिषद में यह उल्लेख नहीं है कि पात्र की तरह यह अजन्मा स्वतंत्र एवं सृष्टि रचना की शक्ति रखता है। तैत्तरीय उपनिषद से उद्धरण देकर दूसरा सूत्र 1|4|9 यह बताता है कि मूल प्रधान पदार्थ यानी प्रकृति परमात्मा से रचित है। इस अधिकरण से यह प्रमाणित होता है कि जगत का ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें परमात्मा अन्तर्यामी यानी अन्तःआत्मा की तरह न रहते हों। अतः जगत की सभी वस्तुयें ब्रह्मात्मक हैं यानी सब के सब परमात्मा के शरीर हैं।

30 | सांख्योपसंग्रहाधिकरण 3 सूत्र 1|4|11 से 1|4|13 तक अधि 1|4|3

चौथे पाद के इस तीसरे अधिकरण में 3 सूत्र हैं। पूर्व के अधिकरण से यह प्रतिपादित है कि जगत अब्रह्मात्मक नहीं है अपितु यह सब्रह्मात्मक है यानी सबके अन्तर्यामी परमात्मा श्रीमन्नारायण हैं। परंतु बृहदारण्य उपनिषद से इसका विरोध होता है। परमात्मा पांच तत्व एवं पांच ज्ञानेन्द्रियों के आश्रय हैं। इस उपनिषद में इन्द्रियों को 'पंचजन' कहा गया है। अतः पांच ज्ञानेन्द्रियों को 'पंच पंचजन' कहा गया। जब कोई व्यक्ति परमात्मा को अमृत के रूप में यानी सबसे ज्यादा आनंद देनेवाला जानता है तो वह स्वयं भी अमृत हो जाता है यानी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अब प्रश्न उठता है कि पंचजन किस इन्द्रिय को कहते हैं। उपनिषद ने प्राण, आंख, कान और मन को पंचजन बताया है। यहां प्राण श्वास यानी मुख्य प्राण न होकर त्वचा से अर्थ रखता है।

बृहदारण्यक के माध्यन्दिन शाखा में इसी तरह नाक का प्रसंग है जहां 'अन्न' का अर्थ नाक एवं जीभ दोनों है। निरीश्वर सांख्यमत के अनुसार पंच पंचजन यानी 5 गुना 5 यानी 25 है। प्रकृति के 24 तत्व हैं एवं पच्चीसवां पुरुष है। यहां चूंकि 26 का उल्लेख नहीं है इसलिये परमात्मा की सत्ता का प्रश्न नहीं उठता। निरीश्वर सांख्य के 25 तत्व हैं : प्रकृति महत् अहंकार 3, पांचभूत पृथ्वी जल वायु अग्नि एवं आकाश 5, पांचतन्मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध, पांच ज्ञान के एवं पांच कर्म के तथा 1 मन कुल इन्द्रियां 11, जीवात्मा पुरुष 1। इसतरह से कुल 25 तत्व हुए। तन्मात्रा पूर्ववती एवं परवर्ती के बीच की स्थिति है जैसे दूध एवं दही के बीच की स्थिति। विशिष्टाद्वैत में भी 25 तत्व की मान्यता है परंतु यहां 26वां तत्व परमात्मा है जो षड्विंशक कहे जाते हैं एवं जीव पंचविंशक यानी 25वां कहा जाता है।

इस प्रसंग में सृष्टि का क्रम भी ध्यान देने योग्य है : प्रकृति, महत्, अहंकार, शब्दतन्मात्रा आकाश, स्पर्शतन्मात्रा वायु, रूपतन्मात्रा तेजस, रसतन्मात्रा जल, गंधतन्मात्रा पृथ्वी। प्रत्येक में श्रीमन्नारायण अन्तर्यामी हैं तथा एक के

बाद दूसरे की रचना उनकी इच्छाशक्ति से होती है। अहंकार तीन तरह के हैं। सात्विक अहंकार से इन्द्रियों का निर्माण होता है तथा तामस अहंकार से पांचभूत बनते हैं। राजस अहंकार इनसबों का आश्रय बनता है। पूर्वपक्षी 25 तत्व के विश्लेषण से परमात्मा की सत्ता को नकार देते हैं। सूत्रकार ने इस मत का खंडन 1।4।11 'नसांख्योपसंग्रहादपि ज्ञानाभावाद् अतिरेकाच्च' से किया है। जबकि 25 तत्वों को स्वीकारा गया है परंतु ये सांख्य के तत्व से भिन्न हैं। आकाश एवं जीवात्मा की गिनती इसके बाहर है। पंच पंचजन का अर्थ 25 ठीक नहीं है। आगे का सूत्र 1।4।12 'प्राणादयो वाक्यशेषात्' से पांच ज्ञानेन्द्रियां ही पंच पंचजन हैं। अतः यहां कोई अब्रह्मात्मक नहीं है।

31 | कारणत्वाधिकरण 2 सूत्र 1।4।14 से 1।4।15 तक अधि 1।4।4

चौथे पाद का यह चौथा अधिकरण है तथा इसमें 2 सूत्र हैं। पूर्व के अधिकरण से यह सिद्ध है कि आकाश एवं इन्द्रिय परमात्मा पर आश्रित हैं अतः प्रकृति जगत की सृष्टि का कारण नहीं हो सकती। निरीश्वरवादी कहते हैं कि उपनिषद में सृष्टि के कारण पर मतैक्य नहीं है परंतु प्रकृति इसका कारण है इस पर कुछ उपनिषदों की सहमति प्राप्त है। इस अधिकरण में इसका खंडन किया गया है।

इस विश्लेषण में उपनिषद में विभिन्न इकाइयों को सृष्टि के कारण के रूप में जांचा गया है। एक उपनिषद में 'सत्' को तो दूसरे में 'असत्' को कारण रूप में देखा गया है। तीसरे उपनिषद में 'अव्याकृत' को कारण कहा गया है। विपक्षी कहते हैं कि उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में ब्रह्म को कारण कहना कठिन है। विपक्षियों का मत है कि ईक्षण यानी सृष्टि का संकल्प तो प्रधान यानी प्रकृति के साथ भी लागू होता है।

सूत्रकार ने 1।4।14 'कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः' से इसका खंडन किया है। 'आकाशदिषु कारणत्वेन यतः व्यपदिष्ट उक्तेः' तात्पर्य है कि श्रीमन्नारायण हीं आकाश एवं अग्नि के कारण हैं क्योंकि सर्वज्ञ होकर आप सर्वशक्तिमान हैं तथा सबको रचने की इच्छाशक्ति यानी संकल्प से संपन्न हैं। तैत्तरीय उपनिषद भी कहता है कि ब्रह्म ने आकाश एवं अन्य तत्वों को बनाया। दूसरे सूत्र 1।4।15 'समाकर्षात्' से सूत्रकार ने स्पष्ट बताया है कि सत्, असत्, अव्याकृत, ये सब का तात्पर्य ब्रह्म है।

32 | जगद्धाचित्वाधिकरण 3 सूत्र 1।4।16 से 1।4।18 तक अधि 1।4।5

चौथे पाद के पांचवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। चूंकि निरीश्वर सांख्य परमात्मा की सत्ता को नहीं स्वीकारते हैं चेतन जीव अगर बद्धावस्था में भी है तो जगत का आदिकारण हो सकता है। बद्धजीव का नश्वर शरीर प्रकृति के तत्वों से बना है अतः प्रकृति अपरोक्षरूप से जगत का आदि कारण बन सकती है। इस अधिकरण का विषय कौषीतकि उपनिषद से लिया गया है। बालाकि नामका गर्ग गोत्रीय एक विद्वान व्यक्ति काशी में रहता था। इसने राजा अजातशत्रु को ब्रह्मविद्या में दीक्षा लेने को बोला। अजातशत्रु ने प्रसन्न होकर सोचा कि सबलोग राजा जनक को ब्रह्मज्ञान देने जाते हैं क्योंकि वहां सम्मानीय पुरस्कार मिलता है। बालाकि राजा जनक के पास न जाकर हमारे पास आये हैं अतः हमें इनका राजा जनक की तरह सम्मान करना चाहिए। बालाकि ने अजातशत्रु को बताया कि कैसे बालाकि स्वयं सौरमंडल के केन्द्र में पुरुष पर ध्यान स्थिर करते हैं। उन्होंने राजा को भी वैसा ही करने के लिये बताया। राजा ने तब कहा कि वे पहले से इस तथ्य को जानते हैं इसलिये बालाकि से

दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। बालाकि ने पुनः एक एक कर ध्यान के अन्य वस्तुओं के बारे में बताया जैसे : चंद्र, तड़ित, बादल, आकाश, हवा, अग्नि, चित्र, प्रतिध्वनि, छाया, जीव, जीव निद्रा में, जीव स्वप्न में, दार्यों आंख में दृश्य, बार्यों आंख में दृश्य आदि। राजा ने बताया कि वह ये सब जानता है अतः उसे बालाकि से दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद बालाकि चुप हो गया। तब राजा ने बालाकि से पूछा कि वे जितना जानते हैं वे सब राजा को बता दिये या क्या कुछ और बतायेंगे। बालाकि ने स्वीकार किया कि वे इससे ज्यादा नहीं जानते। राजा ने तब बालाकि से कहा कि आपने अब तक जो बताया उसमें से कोई ब्रह्म नहीं है अपितु वे सब ब्रह्म से बनाये गये हैं इसलिये ब्रह्म का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है। तत्पश्चात् बालाकि राजा का शिष्य हो गया। राजा ने बालाकि के हाथ पकड़े और दोनों एक ऐसे व्यक्ति के पास गये जो गाढ़ी निद्रा में लीन था। तब राजा ने उस व्यक्ति की सांस को सम्बोधित किया परंतु व्यक्ति नहीं जागा। जब राजा ने छड़ी से उसकी पिटाई की तो वह जाग गया। इस दृष्टान्त से राजा ने यह सिद्ध किया कि सांस जिसे प्राण कहते हैं जीव नहीं है। जीव परमात्मा में लीन होकर सोता है और पुनः वहां से लौटकर जागता है। अतः जीव परमात्मा से तथा अन्य वस्तुओं से पृथक है।

पूर्वपक्षी विरोध में बताते हैं कि बालाकि से बताये गये सारी वस्तुयें मनोरंजन या मनोरंजन के साधन थे। वे सब जीव के द्वारा कर्म के अनुसार सृजित होते हैं। जीव अपने कर्म से पाप एवं पुण्य का भागी बनता है अतः जीव ही जगत का रचयिता है और इसके शरीर को छोड़कर जीव पर ही ध्यान करना चाहिये। निरीश्वर सांख्य मत वाले कहते हैं कि जीव या पुरुष से समर्थित प्रकृति ही जगत का रचयिता है।

सूत्र 1।4।16 'जगद्वचित्वात्' से इसका खंडन करते हैं। उपनिषद में उद्धृत कर्म जगत है न कि पाप और पुण्य। इसलिये पुरुष या जीव से समर्थित प्रकृति रूपी शरीर जगत का कारण नहीं बन सकता। तात्पर्य है कि ब्रह्म ही जगत के नियंता हैं न कि जीव या प्रकृति।

33। वाक्यान्वयाधिकरण 4 सूत्र 1।4।19 से 1।4।22 तक अधि 1।4।6

चौथे पाद के छठे अधिकरण चार सूत्रों का है। पूर्व के अधिकरण में कर्म को जगत बताकर यह सिद्ध हुआ कि उपनिषद का यह भाग जीव से तात्पर्य नहीं रखता है। विरोध पक्ष कहता है कि इस अधिकरण के विषयवाक्य वाला उपनिषद पाप एवं पुण्य के भोक्ता जीव से तात्पर्य रखता है। इस पूर्वपक्ष का यहां खंडन हुआ है। यहां की विवेचना बृहदारण्यक उपनिषद के मैत्रेयी ब्राह्मण पर आधारित है जो चौथे अध्याय का पाचवां उपभाग है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियां थीं कात्यायनी एवं मैत्रेयी। कात्यायनी सांसारिक विषयानुरागी थी जबकि मैत्रेयी अध्यात्म में अभिरुचि रखती थी। सन्यास लेने के पूर्व ऋषिप्रवर ने अपनी संपत्ति दोनों के नाम बांट देना चाहा। मैत्रेयी ने पूछा कि जो धन उसे मिलेगा क्या वह मोक्ष यानी परमानन्द पाने में सहायक होगा ? ऋषि के नकारने पर उसने मोक्षप्राप्ति के ज्ञान की जिज्ञासा प्रकट की। पति ने कहा कि एक पत्नी अपने पति को प्रिय भगवान की इच्छा से होती है तथा उसीतरह पति पत्नी को प्रिय केवल भगवदेच्छा से ही होता है। इसीतरह पुत्र, धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, स्वर्गलोक, इन्द्रादि देवगन, तथा जीवित प्राणी सब भगवान यानी श्रीमन्नारायण की इच्छा से ही प्रिय एवं सुखकर होते हैं। किसी आचार्य के चरणाश्रित होने पर श्रीमन्नारायण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। श्रीमन्नारायण पर मन को दृढ़ करके हृदय कमल में उनका ध्यान करना चाहिये। श्रीमन्नारायण को जान लेने पर संसार के सब वस्तुओं का जानकारी हो जाती है। जो यह सोचते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा अन्य चेतन एवं जड़ प्राणी परमात्मा से बाहर स्वतंत्र हैं वे जन्म मरण के भंवर में संसार में चक्कर लगाते रहते हैं। जब ढोल को छड़ी से पीटते हैं तब आवाज होती है। या तो छड़ी न रहे या ढोल ही न रहे या पीटने

वाला ही न रहे तो आवाज नहीं आती। उसी तरह इन्द्रियां जब विषयवस्तु के बारे में सोचना छोड़ देती हैं या पूर्णतया वश में हो जाती हैं तो मन विषयसुख से हटकर परमात्मा पर स्थिर हो जाता है। इसी तरह का उदाहरण शंख एवं वीणा का भी है। जब भींगी लकड़ी का आग से संगति होती है तो धुंआ उत्पन्न होता है। धुंआ के लिये लकड़ी उपादान कारण है एवं आग निमित्त कारण है। इसीतरह से श्रीमन्नारायण ही जगत के लिये उपादान एवं निमित्त कारण हैं। चार वेद, इतिहास के रूप में रामायण, पुराण एवं उपनिषद सब श्रीमन्नारायण से उत्पन्न हैं। संदर्भ के उपनिषद में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग हुआ है। पत्नी को पति प्रिय नहीं लगता है परंतु जब परमात्मा भीतर की आत्मा के रूप में अपनी इच्छा करता है तब प्रिय लगने लगता है। निरीश्वर सांख्य का कहना है कि पत्नी या पति की आत्मा जीव का सूचक है और जीव पर ही ध्यान करना श्रेयस्कर है न कि परमात्मा पर। सांख्य सिद्धांत बताता है कि शरीर से जीव को पृथक करके उस पर ध्यान करने से मोक्ष मिलता है। पुरुष यानी जीव के समक्ष ही प्रकृति जगत की सृष्टि करती है। सूत्रकार 1।4।19 'वाक्यान्वयात्' से इस मत का खंडन करते हैं। तात्पर्य है कि इस उपनिषद के सभी वाक्य परस्पर जुड़े हैं तथा प्रारंभ से ही परमात्मा का उल्लेख है। भैत्रेयी चिरंतन सुख की बात करती है जो केवल परमात्मा के ध्यान से संभव है न कि जीवात्मा से। विशिष्टाद्वैत के लिये यह अधिकरण बहुत ही महत्वपूर्ण है। व्यास ने अन्य तीनों ऋषि आश्वरथ्य (1।4।20), औडुलोमि (1।4।21), एवं काशकृत्स्न (1।4।22) के सिद्धांत की बात करते हैं तथा अंततः काशकृत्स्न की यह बात कि जीव ईश्वर का शरीर है स्वीकार कर लेते हैं।

34। प्रकृति अधिकरण 6 सूत्र 1।4।23 से 1।4।28 तक अधि 1।4।7

चौथे पाद के सातवें अधिकरण में 6 सूत्र हैं। पूर्व के अधिकरण में श्रीमन्नारायण के अवतार के रूप में प्रसिद्ध कपिल के सांख्य मत का खंडन किया गया। इस मत का यह कहना है कि उपादान कारण रूपा प्रकृति जगत की रचना करती है एवं जीव यानी पुरुष निमित्त कारण बनता है। यह वेद के विरुद्ध है क्योंकि श्रीमन्नारायण ही रचना की वस्तु एवं रचना की प्रक्रिया हैं। इसलिये इस अधिकरण में परमात्मा को 'अभिन्न उपादान एवं निमित्त कारण' प्रतिपादित किया गया है। पूर्व के अधिकरण में निरीश्वर सांख्य का खंडन हुआ है एवं इस अधिकरण में सेश्वर सांख्य मत को निरस्त किया गया है।

इस अधिकरण के विरोध में पूर्वपक्षी कहते हैं कि परमात्मा निमित्त कारण है न कि उपादान कारण। अपने समर्थन में श्वेतश्वर उपनिषद से उद्धरण देते हैं जिसमें प्रकृति को जगत का कारण कहा गया है। वास्तव में यहां यह उल्लेख है कि मायी ब्रह्म अपनी माया प्रकृति से सृष्टि कराते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं कि हमारे पर्यवेक्षण में प्रकृति जगत की रचना करती है (अध्याय 9। श्लोक 10) 'मयामध्यक्षेण प्रकृतिस्सूयते सचराचरम्'। जीवात्मा परमात्मा की माया के अधीन हो जाता है।

जैसे आभूषण में स्वर्णकार निमित्त कारण है एवं स्वर्ण उपादान कारण है उसीतरह से परमात्मा निमित्त हैं एवं प्रकृति उपादान है। सूत्रकार 1।4।23 'प्रकृतिश् च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्' से खंडन करते हैं कि उपादान यानी प्रकृति भी ब्रह्म ही हैं। उपनिषद का यह उदघोष है कि परमात्मा निमित्त कारण है और मूल कारण को

जान लेने पर सब का ज्ञान हो जाता है। उद्यालक श्वेतकेतु को लोहा मिट्टी एवं स्वर्ण का उदाहरण देता है। अतः कारण स्वरूप में परमात्मा जड़ एवं चेतन के अन्तर्यामी बनकर अपनी इच्छा से रूपांतरण कराते हैं तथा जगत का निर्माण करते हैं और चेतन में जीवात्मा का संचरण होता है। उदाहरणस्वरूप जैसे मकड़ा स्वयं ही उपादान एवं निमित्त कारण है उसीतरह ब्रह्म स्वयं उपादान एवं निमित्त कारण हैं।

35 | सर्वव्याख्यान अधिकरण 1 सूत्र 1|4|29 अधि 1|4|8

पहले अध्याय के चौथे यानी अंतिम पाद का यह आठवां यानी अंतिम अधिकरण है। इसमें एक सूत्र है। इस अधिकरण को मिलाकर पहले अध्याय में कुल 35 अधिकरण हैं। पूर्व के 34 अधिकरण में परमात्मा को जगत का मूल कारण बताया गया है। कुछेक उपनिषद में रूद्र, हिरण्यगर्भ, एवं इन्द्र को सृष्टि का कारण बताने से संशय उत्पन्न हो जाता है। इस अधिकरण में इसी संशय का निराकरण किया गया है।

विपक्षी कहते हैं कि श्वेताश्वतर उपनिषद में रूद्र को जगत का कारण बताकर उसी पर ध्यान करने को कहा गया है। सूत्र 1|4|29 'एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः' से इसका खंडन किया है। व्याख्याताः की पुनरावृत्ति से यह स्पष्ट है कि अध्याय का यह उपसंहार है। पूर्व के उद्धरण में रूद्र आदि दवों के ध्यान की बात है वह श्रीमन्नारायण से सम्बंध रखता है क्योंकि सबके अन्तः स्थल में आप अन्तर्यामी होकर स्थित हैं। श्रुतप्रकाशिका के लेखक श्रीसुदर्शन सूरी ने इन नामों का विश्लेषण कर यह सिद्ध किया है कि सब का तात्पर्य श्रीमन्नारायण से ही है। कुछेक उदाहरण तालिका 7 में दिया जा रहा है।

तालिका 7 : नारायण के विभिन्न स्वरूप

उपनिषद	नाम	अर्थ	तात्पर्य
बृहदारण्यक	ब्रह्म	इसका अर्थ ब्राह्मण जाति अग्नि देवता या चतुरानन ब्रह्मा हो सकता है।	भगवान ने कहा है कि मैंने चतुरानन ब्रह्मा को बनाया है। इसलिये यहां यह नारायण का सूचक है।
बृहदारण्यक	मृत्यु	समस्त जगत इससे प्रभावित है।	सुबाल उपनिषद में मृत्यु नारायण का शरीर बताया गया है।
सुबाल	सत है। असत है। दोनों नहीं है।	इससे तामस की रचना होती है।	इस उपनिषद में प्रायः नारायण का उल्लेख है। इसलिये सत असत नारायण ही हैं।
यजुर्वेद आरण्यक	सूर्य आदित्य	जगत की आत्मा के रूप में	सूर्य के अन्तःस्थल में अन्तर्यामी नारायण हैं।
पश्नोपनिषद	प्रजापति	प्रजापति ने अपनी इच्छा से जगत की सृष्टि की।	प्रजापति के अन्तर्यामी नारायण हैं। परवर्ती अंश में परमपुरुष कहा गया है।

बृहदारण्यक	हिरण्यगर्भ	प्रलय काल में केवल हिरण्यगर्भ थे और उन्होंने सृष्टि की।	सहस्रनाम स्तोत्र में हिरण्यगर्भ नारायण का एक नाम है।
तैत्तिरीय	धाता	धाता ने सूर्य चन्द्र का निर्माण किया	धाता का अर्थ नारायण है क्योंकि सृष्टि के आरंभ में वे क्षीरसागर में शयन करते हैं।
श्वेताश्वतर	रुद्र	रुद्र ने हिरण्यगर्भ को बनाया	<p>1। श्रीमन्नारायण के नाभि कमल से निकले ब्रह्मा ने रुद्र को बनाया। अतः रुद्र जगत के आदिकारण नहीं हैं।</p> <p>2। सहस्रनाम में एक नाम रुद्र है।</p> <p>3। रुक् द्रव्यति इति रुद्रः। यानी जो सांसारिक रोग का निवारण करते हैं वे श्रीमन्नारायण हैं।</p>

इसी तरह का तात्पर्य शंभु एवं शिव आदि नामों का है।

‘तत्त्वम् जिज्ञासामननम् हेतुभिः सर्वतो मुखैः । तत्त्वमेको महायोगी हरिः नारायणः परः । ।’

विश्लेषण के सभी उदाहरण से अभिप्राय हरि का है जो परतत्त्व हैं।

आलोडय सर्वाशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदम् एकम् सुनिष्पन्नम् ध्येयो नारायणः सदा । ।

शास्त्र का गहराई से अध्ययन एवं बार विचार करने पर यह निश्चित हुआ कि श्रीमन्नारायण ही एक मात्र ध्यान करने योग्य हैं। यह विचार ‘बाह्यमत’ से यानी वेद के बाहर से प्रमाण देकर कभी निरस्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह वेद एवं उपनिषद् से पामाणित है। वेद एक स्वर में कहता है कि श्रीमन्नारायण ही जगत के उपादान एवं निमित्त कारण हैं। कुछेक वेद का गलत व्याख्या करते हैं और ऐसे लोग ‘कुट्टिमत’ कहे जाते हैं।

ॐॐॐॐ अतः समन्वय नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ।

इसके चार पाद में कुल 138 सूत्र तथा 35 अधिकरण हुए। ॐॐॐॐ

दूसरे अध्याय का पहला पाद

(अविरोध अध्याय, स्मृति पाद, 36 सूत्र, 10 अधिकरण)

दूसरे अध्याय को अविरोध नाम से जानते हैं। इसका अर्थ 'अनापत्ति' हुआ। तात्पर्य है कि पहले अध्याय के निष्कर्ष को कि श्रीमन्नारायण ही जगत के एकमात्र आदि कारण हैं इस अध्याय में सबल किया जाता है तथा सभी विरोध को निरस्त कर दिया जाता है। पहले अध्याय की तरह इसमें भी चार पाद हैं तथा सभी पाद भिन्न भिन्न अधिकरणों में बंटा है। इसमें कुल 149 सूत्र एवं 33 अधिकरण हैं। पहले पाद को स्मृति पाद, दूसरे को तर्क पाद, तीसरे को वियत पाद, एवं चौथे को इन्द्रिय पाद या प्राण पाद कहते हैं।

पूरे अध्याय में निरीश्वर सांख्य मत वाले पूर्वापक्षी हैं। श्रीमन्नारायण के अवतार कपिल मुनि इस मत के प्रवर्तक हैं। आपने कपिल स्मृति की रचना की तथा 24 मौलिक तत्वों को प्रकृति के अवयव बताया। 25वां तत्व जीव है। इस मत में ब्रह्म या ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है तथा जीव यानी पुरुष की उपस्थिति में प्रकृति को जगत का रचियता बताया है। इसलिये इसे निरीश्वर सांख्य कहते हैं।

एक दूसरा मत है जिसे 'शेश्वर सांख्य' कहते हैं जो हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा से प्रतिपादित हुआ। इसमें 26 वां तत्व ईश्वर है इसलिये इसे शेश्वर सांख्य कहते हैं। यहां जगत की रचना में प्रकृति को उपादान कारण तथा ईश्वर को निमित्त कारण बताया गया है। ये दोनों मत वेद के सिद्धांत का विरोध करते हैं जिसमें ईश्वर को ही जगत की रचना के लिये उपादान तथा निमित्त कारण बताया गया है। इस वेद मत का समर्थन करते हुए विशिष्टाद्वैत सिद्धांत में भी 26 मौलिक तत्व स्वीकार किये गये हैं।

36। स्मृति अधिकरण 2 सूत्र 2।1।1 एवं 2।1।2 अधि 2।1।1

दो सूत्र के इस अधिकरण में निरीश्वर सांख्य मत वाले कहते हैं कि वेद एवं उपनिषद की व्याख्या के लिये स्मृति का सहारा लेना भी आवश्यक है। स्मृति में दैनिक व्यवहार में आने वाली विधियों का भी वर्णन रहता है। मनु स्मृति आदि अनेकों स्मृतियां उपलब्ध हैं परंतु सांख्य मत वाले कपिल स्मृति को सर्वोपरि मानते हैं। जहां उपनिषद एवं स्मृति में विरोधाभास रहता है वहां वेद का मत मान्य होता है। पूर्वापक्षी कहते हैं कि वेद ने कपिल मुनि को सम्मान दिया है इसलिये वेद वाक्य की व्याख्या कपिल स्मृति के द्वारा की जा सकती है।

सूत्रकार ने सूत्र 2।1।1 'स्मृति अनवकाश दोष प्रसंग इति चेन्न अन्यस्मृति अनवकाश दोष प्रसंगात्' से इसका निरस्त किया है। इस सूत्र का तात्पर्य है कि वेद एवं उपनिषद की व्याख्या में अगर कपिल स्मृति का उपयोग नहीं है तो यह स्मृति व्यर्थ है। वेद में प्रतिपादित श्रीमन्नारायण की सत्ता को कपिल स्मृति नकारता है जबकि अन्य स्मृतियां, जैसे 'मनु स्मृति' 'पराशर स्मृति' आदि, इसका समर्थन करती हैं।

मनु स्मृति कहती है :

'आपो नारा इति प्रोक्ताः आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायतनं पुंस स्तेन नारायणस्मृतः'।।

इससे स्पष्ट है कि श्रीमन्नारायण जगत के आदिकारण हैं। मनुस्मृति का समर्थन वेद भी करता है और बताता है कि मनु स्मृति के वाक्य भवरोग की औषधि हैं। अतः वेद की तरह मनुस्मृति भी प्रामाणिक है। पूर्वापक्षी का कहना है कि कपिल ने योगबल से अतिमानवीय वस्तुओं को देखा अतः कपिल स्मृति मान्य है। सूत्रकार इसे नकारते हुए कहते हैं कि मनु को भी योगबल था परंतु अतिमानवीय वस्तुओं को वे नहीं देख सके। अतः कपिल स्मृति मान्य नहीं है।

37 | योगप्रतियुक्ति अधिकरण 1 सूत्र 2|1|3 अधि 2|1|2

एक सूत्र का यह अधिकरण पहले पाद का दूसरा अधिकरण है। हिरण्यगर्भ से स्थापित शेश्वर सांख्य को इस अधिकरण में निरस्त किया गया है क्योंकि यह श्रीमन्नारायण को निमित्त कारण मानता है एवं प्रकृति को उपादान कारण मानता है। शेश्वर सांख्य को योग पद्धति का दर्शन भी मानते हैं। सूत्र 2|1|3 'एतेन योगः प्रत्युक्तः' का तात्पर्य है कि पूर्व की युक्ति के अनुसार 'योग पद्धति' भी मान्य नहीं है। जबकि ब्रह्मा नारायण के नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं परंतु वे राजस एवं तामस से ग्रस्त हैं। इसलिये इनका वाक्य प्रामाणिक नहीं है।

38 | विलक्षणत्वाधिकरण 9 सूत्र 2|1|4 से 2|1|12 तक अधि 2|1|3

पहले पाद के तीसरे अधिकरण में 9 सूत्र हैं। पहले 2 सूत्र में पूर्वापक्षी की आपत्ति है एवं बाद के 7 सूत्र में उनकी आपत्तियों का निराकरण किया गया है। सूत्र 2|1|4 'न विलक्षणत्वाद् अस्य तथात्वं च शब्दात्' में कहा है कि यह जगत तीन गुणों के मिश्रण से बना है जबकि ब्रह्म का गुण विल्कुल ही भिन्न है। ऐसी स्थिति में ब्रह्म जगत का उपादान कारण कैसे हो सकता है? उपनिषद् से यह स्पष्ट है कि ब्रह्म एवं जगत के पदार्थ सर्वथा भिन्न हैं। सामान्य ज्ञान यह बताता है कि मिट्टी से बने घड़े का पदार्थ मिट्टी ही है। स्वर्ण से बने आभूषणों का पदार्थ स्वर्ण ही है। मिट्टी एवं स्वर्ण उपादान कारण हैं। प्रकृति के जड़ एवं चेतन पदार्थ जगत के उपादान कारण हैं।

ब्रह्म सर्वत्र विराजमान, सर्वज्ञ, एवं सर्वशक्तिमान है परंतु जीव अज्ञानी एवं सरल है। जीव ब्रह्म से भिन्न है एवं जड़ वस्तु भी ब्रह्म से भिन्न है तब ब्रह्म जगत को उपादान कारण कैसे हो सकता है। सूत्र 2|1|6 'दृश्यते तु' से सूत्रकार पूर्वापक्षी के मत को नकार देता है। जगत में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां कारण एवं फल के पदार्थ एवं रंग में भिन्नता देखा जाता है। गाय के गोबर से विच्छु का उद्भव होता है। क्या दोनों में किसी की तरह की समानता है? अतः कारण एवं कार्य में समरूपता आवश्यक नहीं है। श्रीरामानुज स्वामी ने एक दृष्टान्त दिया है कि बालक जन्म से ही परिवर्तनशील होता है। शैशव, कुमार, युवा, एवं वृद्धा अवस्थाओं में सदा परिवर्तन होते रहता है। जो भी परिवर्तन होता है वह शरीर में दृष्टिगोचर होता है परंतु चैतन्य में नहीं। इसी तरह से ब्रह्म अन्तर्यामी होकर सबके भीतर रहता है। प्रलय काल के कारणत्व स्थिति में सभी जड़ एवं चेतन सूक्ष्म वस्तुओं के रूप में विराजते हैं और परमात्मा सबका अन्तर्यामी होकर विराजता है। जब परमात्मा सृष्टि करना चाहता है तब सभी सूक्ष्म से बढ़कर अपने अपने रूप एवं नाम से पुनः प्रकट होते हैं। कारणावस्था में चेतन एवं जड़ सूक्ष्म रूप में हैं जबकि कार्यावस्था में वे स्थूल रूप के हो जाते हैं। परमात्मा के जड़ एवं चेतन शरीर में परिवर्तन दृश्यमान होता है न कि अन्तर्यामी स्वरूप में। अतः पूर्वापक्षी के मत का खंडन हो जाता है कि परमात्मा उपादान नहीं हो

सकता। श्रीरामानुज स्वामी ने मरणधर्मा शरीर की बहुत ही सुन्दर परिभाषा दी है। 'कर्म फलरूपसुखदुःखभोगसाधनभूतन्द्रियाश्रयः पञ्चवृत्तिप्राणाधीनधारणः पृथिव्यादिभूतसङ्घातविशेषः। तथा विधिस्यैव लोकवेदयोः शरीरत्वप्रसिद्धेः।' यानी शरीर उसे कहते हैं जो आत्मा का अवयव है, आत्मा पर आश्रित है एवं आत्मा से नियंत्रित है।' यही परिभाषा जीव पर लागू होता है जो परमात्मा का शरीर है।

तालिका 8 : दूसरे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (36 सूत्र, 10 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²⁴
36। स्मृति अधिकरण	2।1।1। से 2।1।2 तक	2	2।1।1
37। योग प्रतियुक्ति अधिकरण	2।1।3	1	2।1।2
38। विलक्षणत्वाधिकरण	2।1।4। से 2।1।12 तक	9	2।1।3
39। शिष्टापरिग्रहाधिकरण	2।1।13	1	2।1।4
40। भोक्तापत्यधिकरण	2।1।14	1	2।1।5
41। आरम्भणाधिकरण	2।1।15 से 2।1।20 तक	6	2।1।6
42। इतरव्यपदेशाधिकरण	2।1।21। से 2।1।23 तक	3	2।1।7
43। उपसंहारदर्शनाधिकरण	2।1।24। से 2।1।25 तक	2	2।1।8
44। कृत्स्नप्रसक्ति अधिकरण	2।1।26। से 2।1।31 तक	6	2।1।9
45। प्रयोजनत्वाधिकरण	2।1।32। से 2।1।36 तक	5	2।1।10

39। शिष्टापरिग्रहाधिकरण 1 सूत्र 2।1।13 अधि 2।1।4

एक सूत्रवाला यह अधिकरण पहले पाद का चौथा अधिकरण है। निरीश्वर सांख्य के उत्तर में सूत्रकार बताते हैं कि जो वेद की प्रामाणिकता को नहीं मानते वे सभी अन्य मत नष्ट एवं लुप्त हो जाते हैं। ये मत हैं कणाद का वैशेषिक तथा अक्षपाद कहे जानेवाले गौतम का न्याय और जैन एवं बौद्ध मत। परमाणुकरणवादी कहते हैं कि जगत का आदिकारण परमाणु है न कि प्रकृति।

40। भोक्तापत्यधिकरण 1 सूत्र 2।1।14 अधि 2।1।5

पहले पाद का पाचवां अधिकरण एक सूत्र वाला है। इस अधिकरण का इस पाद के तीसरे अधिकरण विलक्षणत्वाधिकरण से सीधा सम्बंध है जिसमें यह कहा गया कि चेतन अचेतन सभी परमात्मा के शरीर हैं। निरीश्वर सांख्यवादी कहते हैं कि सूक्ष्म एवं स्थूल जगत परमात्मा का शरीर है तब जीवात्मा एवं परमात्मा में अंतर ही क्या है। जैसे शरीर के सुखदुःख से जीवात्मा का सम्बंध है उसीतरह से जगतरूपी शरीर के सुख दुःख से परमात्मा का भी सम्बंध है। अतः ऐसे सुख दुःख भोगी ब्रह्म से प्रकृति का जगत का आदिकारण होना ज्यादा सटीक है।

²⁴ 2।1।1 यानी अध्याय 2 के पाद 1 का पहला अधिकरण।

सूत्र 2 | 1 | 14 'भोत्रापत्तरेविभागश्चेत् स्याल्लोकवत्' से यह स्पष्ट है कि जीवात्मा एवं परमात्मा में अन्तर है। जीव अपने कर्म के कारण सुख दुःख भोगता है न कि शरीर के कारण। सूत्रकार ने एक व्यवहारिक उदाहरण से इसे समझाया है। जेल का अधीक्षक जैसे जेल में बंद कैदी के सुख दुःख से प्रभावित नहीं होता उसीतरह अन्तर्यामी परमात्मा भी जीव रूपी शरीर के सुख दुःख से अछूता रहता है। अतः ब्रह्म जगत का एकमात्र आदिकारण है।

41 | आरम्भणाधिकरण 6 सूत्र 2 | 1 | 15 से 2 | 1 | 20 तक अधि 2 | 1 | 6

पहले पाद के छठे अधिकरण में 6 सूत्र हैं। पूर्व के विलक्षणत्वाधिकरण में कहा गया कि कारण एवं कार्य में एक ही वस्तु या पदार्थ के उपयोग दृश्यमान होता है। विपक्षी इसका विरोध करते हैं कि कारण कार्य से भिन्न है। जैसे:

- नाम में भिन्नता है। कारण को मिट्टी कहते हैं तो कार्य को घड़ा कहते हैं।
- स्वरूप में भिन्नता है। मिट्टी के ढेर से घड़ा का स्वरूप भिन्न है।
- उपयोग में भिन्नता है। घड़े पानी ढोने का पात्र बनता है जो मिट्टी नहीं कर सकती।
- काल की आवश्यकता है। मिट्टी से घड़ा बनाने में समय लगता है।
- अगर घड़ा एवं मिट्टी एक ही है तो कुंभकार का प्रयत्न निरर्थक हो जाता है।

इसीतरह कारण ब्रह्म से कार्य जगत भिन्न है। अतः ब्रह्म जगत का कारण नहीं हो सकता।

उपर्युक्त मत का खंडन करते हुए सूत्र 2 | 1 | 15 'तत् अन्यत्वम् आरम्भण शब्दादिभ्यः'। उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को मिट्टी लोहा एवं स्वर्ण का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि सृष्टि के पूर्व में जगत केवल सत था। ब्रह्म सत हैं एवं जगत सृष्टि की इच्छा से आपने अपने को जगत के रूप में रूपान्तरित कर दिया। सृष्टि के समय जड़ चेतन सभी सूक्ष्म रूप में रहते हैं एवं परमात्मा उनके अन्तर्यामी रहते हैं। जब जगत का विस्तार कर परमात्मा स्थूल एवं दृश्यमान स्वरूप में होते हैं तब भी सबके अन्तर्यामी रहते हैं। पूर्व के कर्म के अनुसार जीव को परमात्मा चार तरह का स्वरूप देते हैं : 1 | देवता 2 | मानव 3 | पशु एवं 4 | जड़ पदार्थ। अतः इन चारों स्वरूपों में परमात्मा अन्तर्यामी रूप में स्थित हैं।

घड़े एवं मिट्टी के ढेर में स्वरूपतः अंतर है। प्रातः काल में मिट्टी का ढेर रहता है परंतु आवश्यकतानुसार सायं काल तक उसका घड़ा या थाल बना दिया जाता है। वस्तुतः मूल पदार्थ एक ही है केवल आवश्यकतानुसार स्वरूप में परिवर्तन कर दिया गया है। इसी तरह कारण एवं कार्य के मूल में एकही परमात्मा हैं। जगत के परिप्रेक्ष्य में जगत परमात्मा का स्वरूप है। स्वरूप जगत एवं परमात्मा अनन्य हैं एवं दोनों एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। एकही उपनिषद में सत को असत एवं अव्याकृत कहा गया है। तात्पर्य है कि ब्रह्म ही रूपांतरण यानी कार्य के पूर्व के कारणस्वरूप में असत एवं अव्याकृत कहे जाते हैं।

42 | इतरव्यपदेशाधिकरण 3 सूत्र 2|1|21 से 2|1|23 तक अधि 2|1|7

पहले पाद के सातवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। पूर्वापक्षी ने नयी युक्ति के साथ प्रस्तुत किया कि ब्रह्म जगत का कारण नहीं हो सकता है। जब कारण एवं कार्य एक ही हैं और जब जीव भी परमात्मा का कार्य है ऐसी स्थिति में परमात्मा भी जीव हुए क्योंकि वे कारण के साथ कार्य हैं एवं दोनों अनन्य हैं। इसके अतिरिक्त परमात्मा ने जो सृष्टि की वह जीव के लायक नहीं है। इसतरह से जीव रूपी परमात्मा दो त्रुटि से ग्रस्त हैं। एक तो जो जगत उन्होंने बनाया वह जीव के लायक नहीं है और दूसरा वह ऐसा जगत नहीं बना सकते जो जीव के लायक हो। अतः ब्रह्म जगत के स्रष्टा नहीं हो सकते। यह युक्ति अद्वैतियों से मेल खाती है। आदिशंकर कहते हैं कि जीव एवं परमात्मा एक ही हैं। अविद्या के कारण जीव परमात्मा से भिन्न दिखता है परंतु अविद्या के नाश होने पर वह परमात्मा हो जाता है 'तत् त्वमसि'। सूत्रकार ने इसका खंडन किया है। सूत्र 2|1|21 'इतरव्यपदेशात् हिताकरणादिदोषप्रसक्तिः।' पूर्वापक्षी का मत रखता है जो ऊपर बताया गया। दूसरा सूत्र 2|1|22 'अधिकं तु भेद निर्देशात्' सिद्धान्त सूत्र है जो उपर की बात का खंडन करता है। तात्पर्य है कि परमात्मा श्रीमन्नारायण जीव से बहुत ही श्रेष्ठ हैं एवं परमात्मा में यह दोष लगता ही नहीं कि जीव के लायक उनकी सृष्टि नहीं है।

43 | उपसंहारदर्शनाधिकरण 2 सूत्र 2|1|24 से 2|1|25 तक अधि 2|1|8

पहले पाद का यह आठवां अधिकरण है एवं यह अधिकरण 2 सूत्र का बना है। पूर्वापक्षी बताते हैं कि कुम्भकार चाक एवं छड़ी की सहायता से घड़ा का निर्माण करता है। इसीतरह स्वर्णकार विभिन्न उपकरणों के प्रयोग से आभूषण बनाता है। प्रलय काल में परमात्मा के पास कोई उपकरण तो है नहीं तब ये जगत की रचना कैसे करते हैं। सृष्टि में उपादान एवं निमित्त कारण के अतिरिक्त सहकारी कारण भी है जो स्वयं परमात्मा हैं। सूत्र 2|1|24 का 'क्षीरवद्धि' बताता है कि दूध बिना किसी उपकरण के दही बन जाता है। किसी उपकरण के प्रयोग के बिना विश्वामित्र ने केवल यौगिक बल से त्रिशंकु के लिये दूसरा स्वर्ग बना दिया। बिना किसी उपकरण के इन्द्र, शिव, तथा चतुर्मुख ब्रह्मा जैसा चाहते हैं उस तरह की रचना करते हैं। इसीतरह ब्रह्म भी बिना किसी उपकरण की सहायता के जगत की सृष्टि करते हैं।

44 | कृत्स्नप्रसक्ति अधिकरण 6 सूत्र 2|1|26 से 2|1|31 तक अधि 2|1|9

पहले पाद के नौवें अधिकरण में 6 सूत्र हैं। विपक्षी आरम्भणाधिकरण का सहारा लेकर कहते हैं कि जब ब्रह्म अपने को जगत के रूप में रूपांतरित करते हैं तब तो ब्रह्म लुप्त हो जाते हैं क्योंकि वे विभाजित होकर भिन्न वस्तु बन जाते हैं। तात्पर्य है कि जब ब्रह्म हैं तो जगत नहीं है या जब जगत है तो ब्रह्म नहीं है। सूत्र 2|1|26 'कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा' विपक्ष का सूत्र है तथा 6|1|27 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' सिद्धान्त सूत्र है। सूत्रकार सिद्धान्त सूत्र से विपक्ष का खंडन करते हुए कहते हैं कि श्रुति उपनिषद में उल्लेख है कि ब्रह्म 'निरवयव' हैं यानी इनके हाथ पैर आदि नहीं हैं। निरवयव के अंगों के विभाजन का प्रश्न नहीं उठता। परमात्मा के पास असीम अतिमानवीय शक्ति है। वे इच्छा से सबकुछ बनाते हैं तथा स्वयं भी विराजते रहते हैं। सांसारिक सामान्य ज्ञान से परमात्मा को नहीं समझा जा सकता।

45 | प्रयोजनत्वाधिकरण 5 सूत्र 2|1|32 से 2|1|36 तक अधि 2|1|10

पहले पाद के इस अंतिम तथा दसवें अधिकरण में 5 सूत्र हैं। विपक्षी निरीश्वर सांख्य कहते हैं कि जो ब्रह्म को जगत नियन्ता के रूप में परिभाषित किया जा रहा है वे तो ऐसे हैं जिनकी इच्छा की पूर्ति कभी हुई ही नहीं और ये 'अवाप्त समस्त काम' हैं। कोई भी कार्य दो उद्देश्य से होता है। या तो स्वयं के लिये लाभदायक हो या दूसरे के हित के लिये हो। अवाप्त काम को स्वयं का लाभ तो है नहीं। दूसरे के लिये जिस तरह के जगत की सृष्टि उन्होंने की है वह दुःख अवसाद आदि से भरा है। अतः यह जगत ने उनके लाभ का है न दूसरे के लाभ का है। ब्रह्म इसलिये जगत के रचयिता नहीं हो सकते। साधारण सिद्धांत है कि मूढ़ भी कोई कार्य या तो स्वयं के लाभ के लिये करता है या दूसरे को लाभ देता है। यह लागू नहीं है इसलिये ब्रह्म जगत रचयिता नहीं हैं। पहला सूत्र 2|1|32 'न प्रयोजनवत्त्वात्' तो विपक्षी का सूत्र है। दूसरा सूत्र 2|1|33 'लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्' सिद्धान्त सूत्र है जो बताता है कि परमात्मा मनोरंजन के लिये लीला करते हैं तथा जगत का सृजन पालन एवं संहार उनकी क्रीड़ा मात्र है।

विपक्षी का मत है कि उपर का सिद्धान्त स्वीकार करने से परमात्मा में दो त्रुटि दिखती है। उनकी सृष्टि में समानता नहीं है। यह पक्षपाती एवं निर्दयता के दोष से भरा है। कुछ के साथ पक्षपात करके उसे खुश रखते हैं तथा कुछ को निर्दयी होकर दुःख प्रदान करते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि ये दोनों दोष परमात्मा के नहीं हैं। वे तो जगत की सृष्टि जीवों के पूर्व के कर्म के अनुसार करते हैं। इस पर विपक्षी का कहना है कि प्रलय काल में तो ब्रह्म अकेले हैं दूसरे जीवादि की तो सत्ता ही नहीं है। सूत्रकार व्यास जी का कहना है कि जीव अनादि काल से शाश्वत काल के लिये हैं। इसलिये भौतिक रूप से उनको बनाया नहीं जाता और उनके पूर्व के कर्म भी अनादि काल से हैं जिनका कोई प्रारंभ नहीं है।

इस तरह से इस पाद में परमात्मा का जगत का कारण होना सबतरह से सिद्ध होता है।

दूसरे अध्याय का दूसरा पाद

(अविरोध अध्याय, तर्क पाद, 42 सूत्र, 8 अधिकरण)

दूसरे अध्याय के तर्क पाद नामके दूसरे पाद में सूत्रकार ने आक्रामक तरीके से विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के विपक्षियों के तर्क को निरस्त किया है। विपक्ष के मत हैं ः 1। कपिल का निरीश्वर सांख्य, 2। कणाद का वैशेषिक 3। बौद्ध का चतुष्टय 4। जैन 5। पाशुपत। इन मतों में से कपिल का मत वेद को प्रमाण मानता है परंतु अन्य मत वेद की प्रामाणिकता को नहीं मानते। सांख्य मत का मूल शास्त्र 'कपिल स्मृति' अब उपलब्ध नहीं है परंतु इस मत के विद्वान ईश्वर कृष्ण की रचना 'सांख्य कारिका' ही अब मूल ग्रंथ है। सांख्य मत का मुख्य सिद्धान्त है कि प्रधानम या अनुमानिकम या अशब्दम कही जानी वाली प्रकृति ही सृष्टि का आदि कारण है। प्रकृति जीव के समक्ष सृष्टि करती है। जीव को इस मत में पुरुष कहा गया है।

46। रचनानुपपत्त्यधिकरण 9 सूत्र 2।2।1 से 2।1।9 तक अधि 2।2।1

दूसरे पाद के पहले अधिकरण में 9 सूत्र हैं तथा सभी सांख्य मत का खंडन करते हैं। यह जगत सत्व, राजस, एवं तामस का एक अनोखा संमिश्रण है। सत्व से परम एवं शाश्वत आनन्द मिलता है। राजस सुख संपदा की कामना उत्पन्न करता है। तामस से भ्रम होता है। प्रकृति से सृष्टि का कम रूपान्तरण के माध्यम से चलता है एवं यह कम है ः 1। प्रकृति 2। महत् 3। अहंकार 4। तन्मात्रा एवं 5। भूत। प्रकृति स्वयमेव ही सृजन करती रहती है। सूत्रकार सूत्र 2।2।1 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रवृत्तेश्च' से बताते हैं कि सर्वज्ञ एवं अन्तर्यामी परमात्मा की अनुपस्थिति में प्रकृति जगत की रचना स्वयं नहीं कर सकती। अन्तीत्मा परमात्मा ही अपनी स्वेच्छा से प्रकृति का रूपान्तरण कराते हुए जगत की रचना करते हैं।

दूसरे सूत्र से विपक्षी कहते हैं कि दूध स्वयं ही दही हो जाता है। नारियलवृक्ष के जड़ में दिया गया जल इसके फल का स्वादिष्ट जल अपने आप बन जाता है। आम के पेड़ के जड़ में दिया गया भी अपने आप मधुर रस में बदल जाता है। इसमें परमात्मा की कोई आवश्यकता नहीं है। सूत्रकार कहते हैं कि यह सब अन्तर्यामी स्थित परमात्मा की इच्छा से होता है अन्यथा एकही जल आम में मधुर एवं नारियल में क्षारीय क्यों हो जाता है। तीसरे सूत्र में सूत्रकार कहते हैं कि प्रलय एवं उदभव बार बार होता है परंतु परमात्मा की इच्छा के कारण यह एक क्रम से होता है।

चौथे सूत्र से विपक्षी का कहना है कि गाय घास चरने के बाद स्वयं ही दूध देती है। यह प्रकृति का नियम है। सूत्रकार कहते हैं कि वृषभ भी वही घास चरता है परंतु वह दूध नहीं देता। अतः यह सब परमात्मा की इच्छा से नियन्त्रित है।

विपक्षी का अगला तर्क है कि लंगड़ा आदमी अंधे को राह दिखाता है तथा चुम्बक लोहे के कण को आकर्षित करता है। यह सब प्रकृति के नियम हैं। सूत्रकार का कहना है कि लंगड़े आदमी के भीतर अन्तर्यामी परमात्मा उसे राह दिखाने के लिये प्रेरित करता है तथा चुम्बक की शक्ति भी अन्तर्यामी के कारण है।

सांख्य कहते हैं कि प्रलय काल में सत्व रज एवं तम सम होकर बराबर भाग में रहते हैं। जब ये विषम होकर असमान हो जाते हैं तब उदभव का प्रारंभ होता है। सूत्रकार का तर्क है कि अगर यह तर्क दिया जाय कि

प्रलयकाल में विषम भी गुण रहें तो सदा ही उदभव होता रहेगा तो प्रकृति का कहां स्थान है। यह सब तो अन्तर्यामी के कारण हो रहा है।

सांख्य के मत से जीव के समक्ष प्रकृति रचना करती है। सूत्रकार कहते हैं कि तब तो जीव कभी मोक्ष के लिये चरम पुरुषार्थ कर ही नहीं सकता। जब जीव मोक्ष प्राप्त करता है तब प्रकृति अन्तर्यामी परमात्मा के बिना कैसे सृष्टि कर सकती है।

इस तरह से सूत्रकार ने सांख्यमत को विरोधाभास से ग्रस्त बताते हुए निरस्त कर दिया है।

47 | महत् दीर्घाधिकरण 7 सूत्र 2|2|10 से 2|1|16 तक अधि 2|2|2

दूसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 7 सूत्र हैं। यहां कणाद के वैशेषिक मत का खंडन हुआ है। कणाद प्रकृति को कारण न मानकर परमाणु को जगत् का आदि कारण मानते हैं। दो परमाणु मिल कर एक होते हैं जिसे ह्रस्व कहते हैं। इसी तरह ह्रस्व से आगे तीसरा परमाणु मिलकर **परिमण्डल** बनते हैं जिसे 'महत् दीर्घ' कहते हैं। इस तरह से परमाणु का घनीकरण होकर सृष्टि सूक्ष्म से स्थूल होती जाती है। परमाणु के छः सतह होते हैं जिस पर अन्य परमाणु आकर मिलते हैं और वस्तु का आकार बढ़ता जाता है जैसे सरसों के दाने को एकत्र कर पर्वत बनाया जा सकता है। सूत्रकार इस मत को अधिकरण के सात सूत्रों से खंडन करते हैं।

पहला सूत्र 2|2|10 'महद्दीर्घवद् वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्' कहता है कि दो एवं तीन परमाणुओं से बढ़ते हुए सृष्टि होना उचित नहीं है। जैसे कपड़ा का निर्माण लंबाई एवं चौड़ाई में सूत की विनाई से होता है। इस तरह का निर्माण तो दो परमाणु एवं तीन परमाणु वाले घनीभूतीकरण से संभव नहीं है।

दूसरे सूत्र 2|2|11 से वैशेषिक के मत का पुनः खंडन होता है। परमाणु में गति उसके पूर्व के कार्यकलाप से आती है जिसे 'कर्म' या 'अदृष्ट' कहते हैं। प्रश्न उठता है कि 'कर्म या अदृष्ट' जीव में होता है कि परमाणु में। कर्म को शाश्वत भी कहा है जिसका अर्थ हुआ कि सृष्टि शाश्वत रहेगी। यह मत मान्य नहीं है।

तीसरे सूत्र 2|2|12 से वस्तुओं के आपस के सम्बंध को समवाय कहते हैं। यह 'अपृथक् सिद्ध सम्बंध' से भिन्न है। वस्तु को गुणी एवं उसके स्वभाव को गुण कहते हैं। पुनः इसे जाति एवं व्यक्ति से सम्बोधित करते हैं। अगर समवाय से सम्बंध माना जाय तो एक समवाय का अन्वेषण करने पर ही आगे का सम्बंध जोड़ा जा सकता है।

यह मान्य नहीं है।

चौथे सूत्र 2|2|13 से समवाय को शाश्वत मानने वाले मत को निरस्त किया गया है। जैसे घड़ा का आधार भूमि है। अगर ये शाश्वत हो जायेंगे तो न विनाश होगा और न सृष्टि होगी।

पांचवें सूत्र 2|2|14 से बताया है कि घड़ा का अपना रंग परमाणु के रंग के कारण है। जब परमाणु शाश्वत है अति सूक्ष्म है तथा रंगहीन है तो यह कैसे संभव होगा।

छठे सूत्र 2|2|15 से विरोधाभास को आगे उजागर किया गया है। जब कारण रूपी परमाणु रंगहीन है तो कारण का फल कार्य कैसे रंगवाला हो जाता है।

सातवें सूत्र 2 | 2 | 16 से यह बताया है कि कपिल का मत तो वेद को मानता है परंतु कणाद का मत वेद को नहीं मानता। अतः कणाद मान्य नहीं है।

48 | समुदायाधिकरण 10 सूत्र 2 | 2 | 17 से 2 | 1 | 26 तक अधि 2 | 2 | 3

दूसरे पाद का 10 सूत्रवाला यह अधिकरण तीसरा अधिकरण है। 3 सूत्रों का चौथा अधिकरण है उपलब्धि अधिकरण। 1 सूत्र का पाचवां अधिकरण है सर्वथा अनुपपत्ति अधिकरण। ये तीनों अधिकरण बौद्ध मत का खंडन करते हैं। बौद्ध मत की चार शाखायें हैं : 1। 'वैभाषिक' वाले बताते हैं कि जो वस्तु हम आंखों से प्रत्यक्ष देखते हैं वे क्षणिक हैं और उनके बारे में ज्ञान भी क्षणिक है। 2। 'सौत्रान्तिक' वाले कहते हैं कि बाहरी वस्तु जिसे हम प्रत्यक्ष देख नहीं सकते परंतु अनुमान कर सकते हैं। ये वस्तु क्षणिक हैं एवं इनके बारे में ज्ञान भी क्षणिक है। 3। 'योगाचार' वाले कहते हैं कि बाहरी वस्तु बिल्कुल नहीं है परंतु उनके बारे में ज्ञान क्षणिक है। 4। 'माध्यमिक' वाले कहते हैं कि इस जगत में कोई भी वस्तु नहीं है एवं सबकुछ व्यर्थ का बकवास है। ये 'सर्वशून्य वादी' कहे जाते हैं।

उपर्युक्त ये सभी बताते हैं कि जगत परमाणु से बना है और इसलिये इन्हें परमाणुकरणवादी कहा जाता है। वैभाषिक के अनुसार बाहरी सभी वस्तुयें मिट्टी जल अग्नि एवं वायु के परमाणु के संयोग से बने हैं जबकि भीतरी वस्तुयें ज्ञान के प्रवाह एवं इच्छा मात्र हैं। मिट्टी के परमाणु रूप स्वाद स्पर्श एवं गंध वाले हैं। जल के परमाणु रूप स्वाद एवं स्पर्श वाले हैं। अग्नि के परमाणु रूप एवं स्पर्श वाले हैं। वायु के परमाणु स्पर्श वाले हैं। इस सिद्धान्त में आकाश के परमाणु की मान्यता नहीं है।

वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक सिद्धान्त का खंडन : 1। परमाणु के संयोग से मिट्टी जल अग्नि एवं वायु का निर्माण होता है जो शरीर तथा इन्द्रियों के निर्माण में सहायक होते हैं। यह सिद्धान्त सही नहीं है क्योंकि सबकुछ को क्षणिक बताया गया है। इस जगत में इनके बारे में कोई विवेचन नहीं किया जा सकता क्योंकि इनकी स्थिति क्षणिक है। अब इनके बारे में कुछ प्रश्न उठते हैं जिनके संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलते।

- जब परमाणु क्षणिक हैं तो कैसे ये संयोग करके मिट्टी आदि तत्वों का निर्माण करते हैं।
- कब ये दृश्यमान वस्तु बनते हैं।
- कब इनको स्वीकार या निरस्त किया जाता है।
- तथा इनकी आत्मा कौन हैं आदि आदि।

2। ये सिद्धान्त बताते हैं कि बाहरी वस्तु एवं इनके बारे में ज्ञान की क्षणिक स्थिति जीव के अविद्या के कारण है अन्यथा ये शाश्वत हैं। सूत्रकार का पक्ष है कि जगत की रचना के बारे में ये सिद्धान्त कुछ भी बताने में असमर्थ हैं। क्षणिक वस्तु को शाश्वत कहने के लिये अविद्या का प्रयोग एक विरोधाभास है।

3। इनका मत है कि घड़े की स्थिति पूर्व के घड़े की स्थिति पर आधारित है। यह सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि पूर्व के घड़े की स्थिति तो लुप्त हो चुकी है तो नया घड़ा कैसे स्थित रहेगा। अगर बकवास या **अभाव** कारण है तो सब कुछ शून्य से कैसे निकलेगा। आकाश की वास्तविक स्थिति है परंतु ये मतवाले आकाश की स्थिति को नकार देते हैं। वैशेषिक का यह मत कि सबकुछ तुच्छ यानी शून्य से निकलता है सही नहीं है। मिट्टी से घड़ा

बनता है तथा स्वर्ण से आभूषण बनता है। इन सबों को बकवास या शून्य कैसे कहा जा सकता है। पूर्व में देखी गयी वस्तु का हम स्मरण करते हैं जिसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। ऐसी स्थिति में सबकुछ या सब ज्ञान क्षणिक कैसे हो जायेगा। सौत्रान्तिक का मत है कि एक स्थिति वाले वस्तु के गुण दूसरी स्थिति वाली वस्तु में स्थानान्तरित हो जाते हैं। सूत्रकार इसे भी निरस्त कर देते हैं।

अगर शून्य से कुछ भी उत्पन्न होता है तो किसी व्यक्ति को कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। सामान्यतया इस जगत में कुछ प्राप्त करने के लिये या दोष के निवारण के लिये सदा प्रयत्न की आवश्यकता होती है। अगर हर वस्तु क्षणिक है एवं क्षण में नष्ट हो जाता है तो प्रयत्न से कुछ भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। अगर शून्य से सबकुछ बनते रहता है तो किसी व्यक्ति को सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति या स्वर्गिक सुख या मोक्ष के लिये कुछ प्रयत्न ही नहीं करना पड़ता। वैशेषिक एवं सौत्रान्तिक विवेचन के आधार पर स्वतः निरस्त हो जाते हैं।

किसी वस्तु के बारे में चार माध्यम से ज्ञान मिलता है ः इन्द्रिय, दृष्टि, वस्तु, एवं आभास। इसे प्रतिज्ञा कहते हैं। जिस इन्द्रिय से वस्तु के बारे में आभास मिलता है उसे अधिपति कहते हैं। जब एक क्षण में घड़ा है तो दूसरे क्षण में भी घड़ा है। पहला क्षण कारण है तो दूसरा क्षण कार्य या प्रभाव है। प्रश्न उठता है कि एक ही समय में कारण एवं कार्य दोनों कैसे विद्यमान रहेंगे। अतः 'क्षणिक' मत मान्य नहीं है।

वैशेषिक मत में 'निरन्वय विनाश' के अनुसार जब एक वस्तु का नाश होता है तो कुछ भी नहीं शेष रहता। दीपक बुझने के बाद बिल्कुल ही समाप्त हो जाता है। जब दीपक जलते रहता है तब प्रत्येक क्षण दीपक की ज्योति बदलती रहती है क्योंकि प्रत्येक क्षण में तेल एवं बत्ती जलते हैं और तेल तथा बत्ती का शेष भाग दीपक को आगे जलने में सहायक होता है। प्रत्यक्ष अनुमान में ज्योति समान दिखती है परंतु बदलते अवशेष तेल एवं बत्ती के कारण वह निरंतर बदलती रहती है।

वैशेषिक के अनुसार विनाश दो तरह का होता है। दीपक या तो किसी के द्वारा बुझा दिया जाता है या तेल तथा बत्ती के जल जाने के कारण स्वयं बुझ जाता है। पहले उदाहरण को 'अप्रति सांख्य निरोध' एवं दूसरे को 'प्रतिसांख्य निरोध' कहते हैं। दोनों तरह के विनाश को 'निरन्वय विनाश' कहते हैं। विनाश के बाद स्थूल अवशेष को 'प्रतिसांख्य निरोध' कहते हैं तथा सूक्ष्म अवशेष को 'अप्रति सांख्य निरोध' कहते हैं।

सूत्रकार इस मत को यह कर निरस्त करते हैं कि विनाश हमेशा सन्वय होता है क्योंकि विनाश तो रूपान्तरण है। घड़े को टूटने पर अवशेष खपड़ा सन्वय विनाश है। दीपक के बुझने पर अतिसूक्ष्म वस्तु को हवा उड़ा ले जाती है। यह भी सन्वय विनाश है। सूत्र 2।2।25 'नासतोऽदृष्टत्वात्' से सौत्रान्तिक को निरस्त किया जाता है। सौत्रान्तिक कहते हैं कि यद्यपि बाहरी वस्तु स्थित है परंतु इसे अनुमान से ही समझा जाता है। वस्तु एवं वस्तु सम्बन्धी ज्ञान क्षणिक होते हैं।

49। उपलब्धि अधिकरण 3 सूत्र 2।2।27 से 2।1।29 तक अधि 2।2।4

दूसरे पाद के चौथे अधिकरण में 3 सूत्र हैं और यहां बौद्ध मत के योगाचार सिद्धान्त का खंडन हुआ है। योगाचार बताता है कि यद्यपि वस्तु नहीं है परंतु तत्सम्बन्धी ज्ञान रहता है हालांकि ज्ञान क्षणिक होता है। जैसे

स्वप्न का वस्तु क्षणिक होता है उसी तरह जाग्रतावस्था का वस्तु भी क्षणिक होता है। इनका मत है कि भिन्न भिन्न तरह का ज्ञान विभिन्न वस्तुओं के कारण न होकर अनवरत मानसिक जागरूकता के कारण होता है और इसे 'वासना' कहते हैं। तात्पर्य की जागरूकता की पृथकता के कारण वासना होती है। जैसे घड़े का ज्ञान इसके टूटे हुए अवस्था के खपड़ा के भी ज्ञान का कारण होता है। घड़े का ज्ञान पूर्व के घड़े के ज्ञान के कारण होता है परंतु यह ज्ञान क्षणिक होता है क्योंकि पूर्व का ज्ञान नये ज्ञान से बदल दिया जाता है। योगाचार यह भी बताते हैं कि सरसों एवं पर्वत के स्वरूप का आभास तो तत्सम्बन्धी शब्द से होता है।

सूत्र 2 | 2 | 27 'नाभाव उपलब्धेः' से यह तात्पर्य है कि जब वस्तु उपस्थित है तो इसकी अनुपस्थिति सिद्ध नहीं किया जा सकता। अर्थात् वस्तु एवं इसकी परिकल्पना समसामयिक हैं। वस्तु की उपस्थिति एवं तत्सम्बन्धी समसामयिक परिकल्पना को योगाचार 'सहोपलम्भ' कहते हैं। 'उपलम्भ' का अर्थ परिकल्पना है तथा 'सह' का अर्थ साथ साथ है। इनका कहना है कि वस्तु एवं उसकी परिकल्पना दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। भगवद् रामानुज कहते हैं कि 'सहोपलम्भ' का यह अर्थ मान्य नहीं है। उदाहरण के लिये जब कोई व्यक्ति कहता है कि 'मैं घड़े की परिकल्पना करता हूँ' तो यहां 'मैं' कर्ता है एवं घड़ा वस्तु है। जब कर्ता बदल जाता है तो परिकल्पना भी भिन्न हो जाता है।

सूत्र 2 | 2 | 28 कहता है कि स्वप्न की वस्तु एवं जागे हुए अवस्था की वस्तु भिन्न हैं। स्वप्न में वस्तु की परिकल्पना नींद की स्थिति तथा मानसिक स्थिति की त्रुटियों से प्रभावित होती है। जब कोई वस्तु नहीं है तो परिकल्पना भी नहीं रहेगी। जब कर्ता या वस्तु न हो तो परिकल्पना भी नहीं रहेगी। इस तरह से योगाचार सिद्धान्त मान्य नहीं है।

50 | सर्वथा अनुपपत्ति अधिकरण 1 सूत्र 2 | 2 | 30 अधि 2 | 2 | 5

दूसरे पाद के पाचवें अधिकरण में 1 सूत्र है तथा यह बौद्ध मत के 'माध्यमिक' सिद्धान्त का खंडन करता है। इसे सर्वशून्यवादी भी कहते हैं। बुद्ध का यह निर्णय है कि न तो वस्तु है न उसकी परिकल्पना। शून्य ही इस मत की खूबी है एवं शून्य ही मोक्ष है। किसी वस्तु की उपस्थिति के कारण का अन्वेषण आवश्यक है। कुछ वस्तु से कुछ वस्तु की रचना नहीं देखी जाती। जब मिट्टी का ढेर समाप्त हो जाता है तो शून्य की स्थिति में शून्य ही घड़ा बन सकता है। इस जगत में सबकुछ भ्रम है।

सूत्र 2 | 2 | 30 'सर्वथाऽनुपपत्तेश्च' से इसका खंडन होता है। अर्थात् किसी भी कल्पना से किसी समय या स्थान में इस शून्यवाद का कोई अर्थ नहीं है। अतः यह जानना होगा कि क्या सब कुछ स्थित है या स्थित नहीं है या दोनों स्थिति से भिन्न कोई स्थिति है। इसका समाधान 'माध्यमिक सिद्धान्त' में उपलब्ध नहीं है।

51 | एकस्मिन् असंभवाधिकरण 4 सूत्र 2 | 2 | 31 से 2 | 2 | 34 तक अधि 2 | 2 | 6

4 सूत्र वाले छठे अधिकरण में जैन मत का खंडन किया गया है। जैन भी परमाणुकारणवादी हैं तथा इनकी विशेषतायें हैं: 1 | जड़ एवं चेतन वाले इस जगत का कोई ईश्वर या नियंता नहीं है। 2 | इस जगत का निर्माण जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, काल एवं आकाश नामक 6 द्रव्य या पदार्थ से हुआ है।

जीव चेतन है, तथा यह 'बद्ध' 'सिद्धयोग' एवं 'मुक्त' तीन प्रकार का होता है। बद्ध जीव संसार से बंधा हुआ है। यौगिक बल से सम्पन्न तथा सांसारिक वस्तुओं से विरागी व्यक्ति को 'सिद्धयोग' कहते हैं। 'मुक्त' जीव बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

'धर्म' वह शक्ति है जो व्यक्ति को प्रयाण की स्थिति में मुक्त होने योग्य बनाता है। 'अधर्म' सांसारिक माया मोह में लिप्त रखता है। 'पुद्गल' का अर्थ रंग, गंध, स्वाद, एवं स्पर्श से है। यह परमाणु तथा उसके विभिन्न संयोग से परिभाषित होता है। परमाणु के संयोग से वायु, अग्नि, जल, मिट्टी, शरीर, एवं जगत आदि की रचना होती है। 'काल' परमाण्विक होकर भूत, वर्तमान, तथा भविष्य में बंटा हुआ है। असीम विस्तार को 'आकाश' कहते हैं। जब कोई वस्तु असीम विस्तार प्राप्त कर लेता है तो उसे 'आस्तिकाय' कहते हैं तथा काल को छोड़कर बाकी पांच द्रव्य के लिये यह लागू होता है। जैसे जीव आस्तिकाय, धर्म आस्तिकाय, अधर्म आस्तिकाय, पुद्गल आस्तिकाय, एवं आकाश आस्तिकाय। सद्व्यहार, अन्तर्दृष्टि एवं ज्ञान की सम्पन्नता ही मुक्ति के साधन हैं। जीवात्मा के स्वभाव का पूर्ण प्रस्फुटन ही मुक्ति है।

इसके अतिरिक्त यह मत बताता है कि सभी वस्तु सात तरह की स्थिति वाले होते हैं जिसे सप्तभंगीवाद कहा जाता है। 1। हो सकता है वस्तु की स्थिति हो। 2। हो सकता है वस्तु की स्थिति नहीं हो। 3। हो सकता है कि वस्तु हो भी और न भी हो। 4। हो सकता है कि वस्तु को परिभाषित न किया जा सके। 5। हो सकता है वस्तु हो और अपरिभाषित हो। 6। हो सकता हो वस्तु हो ही नहीं एवं परिभाषित भी न हो। 7। हो सकता है कि वस्तु हो भी और न भी हो तथा परिभाषित भी न हो।

सूत्र 2।2।31 'नैकस्मिन् असंभवात्' से इस मत के सभी परस्पर विरोधाभासों को उजागर किया जाता है। एक वस्तु में एक ही समय विरोधी गुण नहीं रह सकते। यह उसी तरह से है कि तेज धूप एवं छाया दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं। जैसे यह संभव नहीं है उसी तरह से एक ही वस्तु के सात गुण या सात स्थिति एक साथ नहीं रह सकती है। अतः जैन मत ग्राह्य नहीं है। दूसरे एवं तीसरे सूत्र से जैन मत के अन्य सिद्धान्तों का खंडन होता है। जैन कहते हैं कि जीव का कोई निश्चित आकार नहीं है। हर जन्म के समय जीव शरीर के आकार का हो जाता है। यहां विरोधाभास है कि जब जीव हाथी होता है तो हाथी के आकार का हो जाता है और जब चींटी बनता है तो सिकुड़ कर चींटी के आकार का हो जाता है। यह नहीं हो सकता क्योंकि जीव पृथक्शील नहीं है। इस तरह से जैन मत निरस्त होता है।

52। पशुपति अधिकरण 4 सूत्र 2।2।35 से 2।2।38 तक अधि 2।2।7

दूसरे पाद के सातवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। पशुपति कहे जानेवाले शिव जी द्वारा संस्थापित पाशुपति मत का यहां खंडन किया गया है। इस मत के सिद्धान्त हैं : जगत के निमित्त कारण शिव हैं तथा उपादान कारण मूल प्रकृति है। इस मतवाले अशोभनीय परम्परा एवं पद्धति वाले हैं। इनके सभी सिद्धान्त वेदविरोधी हैं। इनके चार विभेद हैं। 1। कापालिक : जो शरीर पर धारण करने वाले छः मुद्रिका के बारे में जानते हैं। कान का कुंडल, अंगूठी, गले का हार, शरीर पर भस्म, जनेऊ, तथा केश में रूद्राक्ष ये छः मुद्रिका हैं। स्वयं पर ध्यान कर मुक्ति प्राप्त करते हैं। 2। कालमुख : ये शरीर पर श्मसान का भस्म लगाते हैं, उसे चखते हैं, नरखोपड़ी में भोजन

करते हैं, हाथ में दंड रखते हैं, तथा पात्र में शराव रखकर उसकी पूजा करते हैं। 3। पाशुपत एवं 4। शैव। अंतिम दो पहले दोनों की तरह शिक्षा देते हैं तथा यह बताते हैं कि निम्न जाति का उच्च जाति में परिणत हो सकता है।

सूत्र 2।2।35 'पत्युः असामञ्जस्यात्' कहता है कि पाशुपत मत पूर्णतया अस्वीकार्य है क्योंकि विरोधाभासों के अतिरिक्त यह वेदविरोधी है। समस्त वेद कहते हैं कि श्रीमन्नारायण ही जगत के आदि कारण हैं। उपनिषद के कुछ संदर्भ जो शिव एवं चतुर्मुख ब्रह्मा की बात करते हैं उन्हें प्रथम अध्याय के पहले पाद का 'इन्द्रप्राण अधिकरण' से समझा जा सकता है। सूत्र 1।1।31 'शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्' कहता है कि शास्त्र में श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त जिन देवों के ध्यना का संदर्भ है उन सबों में नारायण ही अर्न्तयामी होकर निवास करते हैं तथा नारायण ही एकमात्र ध्यान के विषय हैं।

ब्रह्म को निमित्त कारण मानना तथा उपादान कारण नहीं मानना यह मात्र अनुमान पर आधारित है और वेद विरोधी है। कुम्भकार घड़ा बनाने के क्रम में मिट्टी के ढेर तथा अन्य उपकरणों का नियंत्रक होता है। कुम्भकार को अधिष्ठान कहते हैं क्योंकि वह शरीरधारी है। अगर पशुपति नाथ को शरीर धारी माना जाय तो शरीर तो नश्वर होता ही है क्योंकि यह शाश्वत रह नहीं सकता और इसका एक न एक दिन नाश निश्चित है। अतः शिव निमित्त कारण नहीं हो सकते।

यह कहा जाता है कि जीवात्मा शरीर एवं सुख दुःख भोगने वाले इन्द्रियों का अधिष्ठान होता है। इसलिये शिव प्रकृति के अधिष्ठान होकर निमित्त कारण हो सकते हैं। जीव शरीर का अधिष्ठान अपने पाप एवं पुण्य के कारण होता है। शिव को पाप पुण्य होता नहीं अतः ये अधिष्ठान हो नहीं सकते। अगर शिव को पुण्य पाप मानकर अधिष्ठान माना भी जाय तो ये एक साधारण जीव की तरह सीमित ज्ञान वाले हो सकते हैं। अतः वे निमित्त कारण नहीं हो सकते। इसलिये पाशुपत मत निरस्त हो जाता है।

सूत्रकार बादरायण का बौद्ध एवं जैन मत निरस्त करने की प्रक्रिया में एक संशय उठता है। सूत्रकार तो द्वापर युगी थे परंतु ये मत तो कलियुग के हैं। तब प्रश्न उठता है कि सूत्रकार ने कैसे इन मतों को निरस्त किया। जैन एवं बौद्ध मतावलंबियों के बीच इन मतों का प्रचार हुआ। ये मत तो अनादि काल से हैं अतः सूत्रकार का निरस्त करना समीचीन सिद्ध होता है। इसका दूसरा पक्ष भी है। एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युग होता है। आज का कलियुग वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में 28 वां कलियुग है यानी चतुर्युग की 28 वीं आवृत्ति चल रही है जबकि एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युग होता है। जब 27 वीं आवृत्ति चल रही होगी एवं बौद्ध तथा जैन ने अपने मत स्थापित किये होंगे तो 28वीं आवृत्ति के द्वापर में सूत्रकार ने इन मतों को नकार दिया।

53। उत्पत्ति असंभवाधिकरण 4 सूत्र 2।2।39 से 2।2।42 तक अधि 2।2।8

दूसरे पाद का यह आठवां तथा अंतिम अधिकरण है। इसमें 4 सूत्र हैं। यहां पाञ्चरात्र के विरोधियों को निरस्त करते हुए पाञ्चरात्र पद्धति को स्थापित किया गया है। श्रीमन्नारायण को वेद का रचयिता नहीं कहा जाता परंतु आपने अपने नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्मा को वेद पढ़ाया। पाञ्चरात्र पद्धति के रचयिता श्रीमन्नारायण स्वयं हैं तथा आपने इसका प्रचार प्रसार किया। प्रारंभ में आपने इसे पांच रात में पांच जनों अनंत, आदिशेष,

गरुड, चतुर्मुख ब्रह्मा, तथा इन्द्र को पढ़ाया। इसीलिये यह पाञ्चरात्र कहा जाता है। इसे पाञ्चरात्र एक और कारण से कहते हैं कि एक व्यक्ति प्रतिदिन पांच तरह से अपनी साधना करता है ः अभिगमन, उपादान, इज्य, स्वाध्याय, एवं योग।

पाञ्चरात्र शास्त्र में 108 संहिता हैं जो वेद की तरह चार भाग में बंटे हुए हैंः आगम सिद्धान्त, मंत्र सिद्धान्त, तंत्र सिद्धान्त, तथा तंत्रातंत्र सिद्धान्त। उपनिषद में मोक्ष प्राप्ति हेतु 32 ब्रह्मविद्या के माध्यम से भक्तियोग का वर्णन है। इसी तरह पाञ्चरात्र की कोई एक संहिता का अनुशीलन करने से चरम आनंददायी मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस पद्धति पर एक संशय खड़ा हो गया क्योंकि एक संहिता में एक वाक्य आया है 'संकर्षणों नाम जीवो जायते'। चूंकि उपनिषद के अनुसार किसी जीव का जन्म मरण नहीं होता अतः यह वाक्य वेद विरोधी प्रतीत होता है।

इस अधिकरण का पहला 2 सूत्र पूर्वपक्ष का मत रखता है तथा अंत का 2 सूत्र सिद्धान्त मत का है जो पूर्वपक्ष को निरस्त करता है। सूत्र 2।2।39 'उत्पत्ति असंभवात्' से यह तात्पर्य है कि जीव की उत्पत्ति असंभव है। चूंकि पाञ्चरात्र जीव की उत्पत्ति की बात करता है इसलिये यह शास्त्र प्रामाणिक नहीं हो सकता।

सूत्रकार ने सूत्र 2।2।41 'विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः' से विपक्ष के मत का खंडन किया है। इसका तात्पर्य है कि परवासुदेव के व्यूह में संकर्षण, पद्युम्न, तथा अनिरुद्ध हैं, और संकर्षण नामका कोई जीव नहीं है इसलिये उपर्युक्त संदर्भ के वाक्य में कोई विरोधाभास नहीं है। अतः पाञ्चरात्र प्रामाणिक शास्त्र है।

वास्तव में संकर्षण श्रीमन्नारायण का प्रतिनिधि होकर जीव के प्रतीक हैं तथा पद्युम्न इन्द्रियों के प्रतीक हैं। प्रलयकाल में संकर्षण को संहार का कार्य मिला है जबकि प्रलय के बाद पद्युम्न को सृजन का तथा अनिरुद्ध को पालन का कार्य बंटा हुआ है। भगवद रामानुज ने संहिताओं के अनेकों उद्धरणों से यह सिद्ध कर दिया है कि पाञ्चरात्र वेद सम्मत है एवं पूर्णतया प्रामाणिक है।

दूसरे अध्याय को अविरोध अध्याय कहते हैं एवं सूत्रकार ने श्रीमन्नारायण को जगत का एकमात्र उपादान, निमित्त, तथा सहकारी कारण सिद्ध किया है। अतः श्रीमन्नारायण अविरोध जगत के एकमात्र नियंता प्रतिपादित होते हैं। प्रारंभ के 6 पादों यानी पहले अध्याय के चार पाद तथा दूसरे अध्याय के दो पाद से सूत्रकार ने ब्रह्म श्रीमन्नारायण को नियंता सिद्ध किया है और अब आगे के दो पादों में ब्रह्म द्वारा बनाये गये वस्तुओं का विश्लेष प्रस्तुत है। एक विहंगम दृष्टिपात के लिये दूसरे पाद के अधिकरणों को तालिका 9 में संयोगा है।

तालिका 9 ः दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (42 सूत्र, 8 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²⁵
46 रचनानुपपत्त्यधिकरण	2 2 1 से 2 1 9 तक	9	2 2 1
47 महत् दीर्घाधिकरण	2 2 10 से 2 1 16 तक	7	2 2 2
48 समुदायाधिकरण	2 2 17 से 2 1 26 तक	10	2 2 3
49 उपलब्धि अधिकरण	2 2 27 से 2 1 29 तक	3	2 2 4
50 सर्वथाअनुपपत्ति अधिकरण	2 2 30	1	2 2 5
51 एकस्मिन् असंभवाधिकरण	2 2 31 से 2 2 34 तक	4	2 2 6
52 पशुपति अधिकरण	2 2 35 से 2 2 38 तक	4	2 2 7
53 उत्पत्ति असंभवाधिकरण	2 2 39 से 2 2 42 तक	4	2 2 8

²⁵ 2|2|1 यानी अध्याय 2 पाद 2 अधिकरण 1

दूसरे अध्याय का तीसरा पाद

(अविरोध अध्याय, वियत् पाद, 52 सूत्र, 7 अधिकरण)

54 | वियदधिकरण 9 सूत्र 2|3|1 से 2|3|9 तक अधि 2|3|1

दूसरे अध्याय के तीसरे पाद में भीतर कलह को शांत किया गया है। ब्रह्म द्वारा बनाये गये वस्तुओं के बारे में वेद में विरोधाभास प्रतीत होता है। इसका समाधान इस तीसरे पाद में किया गया है। कुछेक विरोधाभास की बातें हैं ः 1। आकाश को वेद में एक जगह शाश्वत बताकर ब्रह्म की रचना से अलग बताया है। जबकि उसी वेद में आकाश को निर्मित बताकर अशाश्वत कहा है। 2। कुछ वेद कहते हैं कि जीव का सृजन हुआ है एवं ये शाश्वत नहीं है जबकि कुछेक उपनिषद इसे शाश्वत बताकर किसी की रचना नहीं बताते हैं। 3। क्या जीव चेतन है ? अर्थात् ज्ञानी होकर जीव वस्तुओं की परिकल्पना करने में समर्थ हो सकता है क्या ? 4। कहीं जीव को अकर्ता तथा कहीं पर कर्ता बताया गया है। 5। अगर जीव कर्ता है तो यह सिद्ध करना है कि क्या जीव स्वतंत्र है या परमात्मा की इच्छा के अधीन है। 6। कहीं पर जीव एवं ब्रह्म में कतई कोई सम्बंध होने का उल्लेख है जबकि अन्यत्र तथा गीता में जीव को परमात्मा का शरीर कहा गया है। 7। कहीं पर यह उल्लेख है कि इन्द्रियां रची नहीं गयी हैं तथा अन्यत्र इन्हें सृजित होने का उल्लेख है। इनकी कुल संख्या में अंतर है। 8। मुख्यप्राण श्वास है। कहीं इसको सृजित कहा गया है तो अन्यत्र सृजित नहीं होने का उल्लेख है। 9। मुख्यप्राण एवं इन्द्रियों के आकार पर मतविभेद है। कुछ इसे बहुत बड़ा कहते हैं तो दूसरे इसे परमाणु की तरह सूक्ष्म कहते हैं। 10। चतुर्मुख ब्रह्मा को हिरण्यगर्भ कहते हैं। सृष्टि में वस्तुओं का नामकरण चतुर्मुख ब्रह्मा करते हैं या इनके अन्तर्यामी श्रीमन्नारायण ?। इस प्रक्रिया को नामरूप **व्याकरण** कहते हैं।

उपर्युक्त द्वंदों का निराकरण पाद 3 एवं 4 में किया गया है।

इस पहले अधिकरण में 9 सूत्र हैं। वियत् का अर्थ आकाश है। पूर्वपक्ष वाले का मत है कि आकाश का सृजन नहीं सुना गया है। समर्थन में बताते हैं कि एक उपनिषद अंतरिक्ष यानी आकाश तथा वायु को शाश्वत कहता है। छान्दोग्य के सदविद्या नामक छठे अध्याय में यह उल्लेख है कि जगत की सृष्टि के पहले केवल सत् की सत्ता है। सत् अर्थात् केवल श्रीमन्नारायण हैं। श्रीमन्नारायण ने अपनी इच्छा से अग्नि बनायी, पुनः जल बनाया, तथा तत्पश्चात् आपने पृथ्वी बनायी। इसमें वायु एवं आकाश के सृजन का उल्लेख नहीं है। अतः आकाश शाश्वत है।

सूत्रकार ने इस अधिकरण में विपक्षी के मत को नकारते हुए अनेकों दृष्टान्त से सिद्ध किया है कि आकाश का सृजन हुआ है। 1। तैत्तिरीय उपनिषद में यह स्पष्ट उल्लेख है कि परमात्मा ने पहले आकाश बनाया। तत्पश्चात् वायु का सृजन किया और क्रमशः अग्नि, जल, एवं पृथ्वी का सृजन हुआ। 2। मुण्डक में असंदिग्ध रूप से यह उल्लेख है कि श्रीमन्नारायण से मुख्यप्राण श्वास, मस्तिष्क, अन्य दस इन्द्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। 3। पूर्वपक्ष का मत है कि जब छान्दोग्य ने आकाश तथा वायु के सृजन का उल्लेख नहीं किया है तब तैत्तिरीय आदि के उद्धरण से शाब्दिक अर्थ लगाना अनावश्यक है। 4। पूर्वपक्ष को शांत करने के लिये यह उल्लेख आवश्यक हो जाता है कि तैत्तिरीय में जब अन्य तत्त्व अग्नि

जल पृथ्वी का शाब्दिक अर्थ लगाया जा रहा है तब आकाश एवं वायु को क्यों छोड़ा जाय। पूर्वपक्षी का विरोध है कि मुण्डक में ब्रह्म का एक स्थान पर शाब्दिक अर्थ अन्यत्र के शाब्दिक अर्थ से भिन्न है तब तैत्तिरीय के आकाश एवं वायु का भी शाब्दिक अर्थ कुछ भिन्न ही होगा। 5। सूत्रकार ने पूर्वपक्षी के मत को यह बताकर नकारा है कि छान्दोग्य के छठे अध्याय में किसी अपवाद का उदघोष नहीं है। छान्दोग्य का उदघोष है कि जब मूल वस्तु का ज्ञान हो जाता है तब उससे बनने वाले अनेकों वस्तुओं का भी ज्ञान हो जाता है। उदघोष कहता है कि ब्रह्म ही जगत के आदिकारण हैं तथा ब्रह्म के अतिरिक्त जगत के सभी वस्तुओं का निर्माण ब्रह्म ने किया है। इस उदघोष का कोई अपवाद नहीं है। अतः आकाश एवं वायु को शाश्वत बताने से उपर्युक्त उदघोष की मर्यादा भंग होती है। अतः आकाश का सृजन हुआ है एवं यह शाश्वत नहीं है।

55 | तेजोऽधिकरण 8 सूत्र 2 | 3 | 10 से 2 | 3 | 17 तक अधि 2 | 3 | 2

तीसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 8 सूत्र हैं। भूत एवं तन्मात्रा के निर्माण पर एक संशय है। क्या उतरोत्तर एक से दूसरे का उदभव होता है या अन्तर्यामी परमात्मा की इच्छा से सीधे इनका स्वतंत्र निर्माण होता है। उदाहरण के लिये एक दूसरे से उदभव का क्रम हो सकता है : प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से शब्दतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा से आकाश, आकाश से स्पर्शतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा से वायु, वायु से रूप तन्मात्रा, रूपतन्मात्रा से अग्नि, अग्नि से रसतन्मात्रा, रसतन्मात्रा से जल, जल से गंध तन्मात्रा, एवं गंधतन्मात्रा से पृथ्वी। तैत्तिरीय उपनिषद में तन्मात्रा का उल्लेख नहीं है और पांच भूत एक दूसरे से क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं। छान्दोग्य में इसका उल्लेख नहीं है कि परमात्मा के इच्छा से ये निर्मित होते हैं। सुबालोपनिषद में तन्मात्रा का उल्लेख है। तन्मात्रा की स्थिति भूत के बीच की स्थिति है। छान्दोग्य में उल्लेख है कि तेजस यानी अग्नि इच्छा प्रकट करती है और जल का उदभव होता है। पुनः जल की इच्छा से पृथ्वी निकलती है। तेजस एवं जल में ज्ञान यानी चेतन का अभाव है अतः ये इच्छा कैसे कर सकते हैं। वास्तव में इनके भीतर अन्तर्यामी परमात्मा इच्छा करते हैं और क्रमिक उदभव होता है। मुण्डकोपनिषद में स्पष्ट उल्लेख है कि भूतों के भीतर अन्तर्यामी परमात्मा इच्छा करते हैं एवं क्रमशः एक से दूसरे का उदभव होता है। मुण्डक में यह बताया गया है कि श्रीमन्नारायण ही मन, मुख्यप्राण श्वास, इन्द्रियां, एवं भूत की रचना करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि क्रमिक रूप से प्रकृति से प्रारंभ करके एक के बाद दूसरे महत् एवं अहंकार का उदभव होता है और इसके मूल कारण अन्तर्यामी स्थित परमात्मा की इच्छा ही है। उपर्युक्त वर्णित क्रम में अहंकार के तीन भेद हैं: सात्विक, राजस, एवं तामस। सात्विक अहंकार से ही 10 इन्द्रियों तथा 1 मन यानी 11 का निर्माण होता है। राजस अहंकार सात्विक एवं तामस की सहायता मात्र करता है। तामस अहंकार से ही भूतों का क्रमिक उदभव होता है। भूतों का तात्पर्य ऊपर वर्णित तन्मात्रा भी है।

ऊपर उल्लिखित शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गंध क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, एवं पृथ्वी के गुण हैं।

जिन इन्द्रियों के माध्यम से इनकी अनुभूति होती है वे क्रमशः हैं : कान, त्वचा, आंख, जीभ एवं नाक।

इस अधिकरण के प्रारंभ के चार सूत्र पूर्वपक्षी का मत रखते हैं जिसमें वे परमात्मा की इच्छा वाले सिद्धान्त का विरोध करते हैं। अंतिम चार सूत्र में सूत्रकार सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं कि सबों का उदभव इनके भीतर

अन्तर्यामी परमात्मा के संकल्प से ही होता है। विशिष्टाद्वैत की 'अपर्यवसन वृत्ति' इस अधिकरण से परिपुष्ट होती है। सभी वस्तुओं में श्रीमन्नारायण अन्तर्यामी हैं क्योंकि जड़ एवं चेतन जगत आपके शरीर का निर्माण करते हैं।

56 | आत्माधिकरण 1 सूत्र 2 | 3 | 18 अधि 2 | 3 | 3

तीसरे पाद के तीसरे अधिरण में 1 सूत्र है। पूर्वपक्षी का मत है कि ब्रह्म सब के नियंता है और आपने ही जीव की सृष्टि की है। समर्थन में तैत्तिरीय उपनिषद तथा यजुर्वेद संहिता एवं कुछ अन्य उपनिषद का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लेख है कि ब्रह्म सर्वोपरि इकाई हैं जहां से सारे जगत का उद्भव हुआ है। आप ही जगत का पालन तथा प्रलय काल में संहार करते हैं। इसी उपनिषद में अन्यत्र यह उल्लेख है कि जगत ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और आपने जीव के साथ जल का निर्माण किया। यजुर्वेद संहिता में श्रीमन्नारायण ही प्रजापति हैं तथा उन्होंने प्रजा यानी जीव का सृजन किया है। छान्दोग्य उपनिषद में भी ऐसा आया है कि प्रजागन अर्थात् जीव की उत्पत्ति सत् से हुई है। यहां सत् स्वयं श्रीमन्नारायण हैं।

एक और मत है कि छान्दोग्य उपनिषद का 'तत्त्वमसि' का अर्थ है कि जीव स्वयं ब्रह्म है। जब जीव स्वयं ब्रह्म है तब तो वह शाश्वत है। इसका विरोध छान्दोग्य के अन्य उद्धरण से किया जाता है कि जगत का सबकुछ ब्रह्म है तब तो सब कुछ शाश्वत है। इसका अर्थ हुआ कि आकाश भी शाश्वत है परंतु आकाश का तो सृजन होना कहा गया है। इसीतरह से जीव भी शाश्वत नहीं हो सकता।

सूत्र 2 | 3 | 18 'नात्मा श्रुतेर नित्यत्वाच्च च ताभ्यः' से सूत्रकार बताते हैं कि आत्मा या जीव दो कारण से सृजित नहीं होते। 1। कठोपनिषद में उल्लेख है कि जीव न तो जन्म लेता है और न मरता है। यहां भी उल्लेख है कि परमात्मा सर्वेश्वर हैं तथा जीव पृथक् पृथक् हैं और दोनों शाश्वत हैं। 2। कठोपनिषद में अन्यत्र यह उल्लेख है कि जीव की संख्या अनन्त है। परमात्मा सर्वोपरि होकर सभी जीवों के प्रेरणा स्रोत हैं। यहां यह प्रश्न उठता है कि जब जीव का सृजन नहीं होता है तब यह उद्घोष कैसे सच सिद्ध होगा जिसमें कहा गया है कि 'एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानेन...' अर्थात् कारण जानने से सारे कार्यो को जान लिया जाता है। इसके विवेचन में यह द्रष्टव्य है कि ब्रह्म या परमात्मा को छोड़कर सभी सृजित होते हैं। सृजन के दो भेद हैं: 1। 'रूप अन्यत भाव' से जड़ पदार्थ का रूपान्तरण होता है। जैसे मिट्टी से घड़ा तथा घड़ा पुनः टूटकर खपड़ा आदि बनजाता है। 2। चेतन के स्वभाव में रूपान्तरण जिसे 'स्वभाव अन्यतभाव' कहते हैं। ज्ञान ही चेतन है तथा इसे 'धर्मभूत ज्ञान' कहते हैं जिसके माध्यम से चेतन जीव अन्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है या उनकी अनुभूति प्राप्त करता है। ज्ञान का संकुचन या विकास होना ज्ञान का रूपान्तरण है। एक जीव से दूसरे जीव में धर्मभूत ज्ञान की सीमा भिन्न होती है जो उनके पूर्व के कर्म पर आधारित है। जड़ पदार्थ में धर्मभूत ज्ञान शून्य होता है जबकि ब्रह्म, नित्यसूरी, तथा मुक्तात्मा में इस ज्ञान की सीमा अनन्त है। यद्यपि जीव सृजन या विनाश से मुक्त है तद्यपि 'स्वभाव अन्यतभाव' यानी ज्ञान के रूपान्तरण के कारण जीव सृजित होने की श्रेणी में रखा गया है। अतः 'एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानेन...' का उद्घोष सही सिद्ध होता है।

उपर्युक्त उपनिषद के उद्धरण से पूर्वपक्षी कहते हैं कि जीव का सृजन एवं विनाश होता है। इसे नकारते हुए यह कहा गया है कि जीव अविनाशी है। केवल उसके प्रत्येक जन्म के शरीर का नाश होता है न कि जीव का।

57 | ज्ञाधिकरण 14 सूत्र 2 | 3 | 19 से 2 | 3 | 32 तक अधि 2 | 3 | 4

तीसरे पाद के चौथे अधिकरण में 14 सूत्र हैं। इस अधिकरण से प्रारंभ करके इस पाद के अंतिम अधिकरण तक जीव के आकार प्रकार एवं गुण आदि तथा परमात्मा के साथ इसके सम्बन्ध का विवेचन प्रस्तुत है। इस अधिकरण में जीव को स्वयंप्रकाशित बताया गया है यानी जो स्वयं ही अपने को जान सके। इसको धर्मीज्ञ भी कहते हैं। जीव धर्मी है तथा ज्ञान ही ज्योति है। स्वयं के अतिरिक्त अन्य को जानने के लिये इसे 'धर्मभूत ज्ञान' की आवश्यकता होती है। इस तरह से जीव 'धर्मीज्ञान' तथा 'धर्मभूतज्ञान' नामक दो विशेषताओं से संपन्न रहता है। स्वप्न या गाढ़ी निद्रा में भी इसका धर्मीज्ञान जागरूक रहता है। धर्मीज्ञान के क्षेत्र में यह ब्रह्म के समरूप है। 'धर्मभूत ज्ञान' में ब्रह्म की सीमा नहीं है जबकि जीव का धर्मभूतज्ञान उसके पूर्वकर्म के आधार पर सीमित रहता है।

इस अधिकरण में विवेचन का मुख्य विषयवस्तु है 1। क्या जीव बौद्ध एवं सांख्य मत की तरह केवल स्वयंप्रकाशित है ? 2। कणाद के अनुसार क्या जीव चैतन्यशून्य पत्थर की तरह है ? 3। क्या जीव सर्वदा चैतन्य न रहकर कभी कभी चैतन्य रहता है ? इसके अतिरिक्त एक अन्य मत के अनुसार जीव ज्ञाता है तथा वस्तुओं के बारे में स्वयं जान लेता है। एक और दूसरे मत के अनुसार जब जीव का स्वयं प्रकाशित होना तथा चैतन्य होना सहज गुण है तब तो जीव सर्वव्याप्त है एवं चैतन्य सर्वदा विराजते रहता है। ऐसी स्थिति में उसे इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि गाढ़ी नींद में चैतन्य नहीं रहता है अतएव यह सर्वदा नहीं रहता। जाग्रतावस्था में जीव का चैतन्य वर्तमान रहता है परंतु अन्य वस्तुओं के ज्ञान के लिये पर्याप्त प्रकाश, वस्तु की उपस्थिति, तथा धर्मभूतज्ञान की आवश्यकता रहती है। अतः उपर्युक्त मत का पक्षधर कहता है कि जीव को न तो स्वयंप्रकाश है और न धर्मभूतज्ञान है। अतः जीव का चैतन्य सर्वदा न रहकर समय समय पर रहता है। हालांकि जीव स्वयं कार्य में सब जगह प्रवृत्त हो जाता है इसलिये जीव सबजगह वर्तमान है। परंतु यह प्रमाणित नहीं है कि क्या जीव केवल शरीर को गतिमान करने पर ही कार्यशील होता है ?

कुछेक उपनिषद में उल्लेख है कि गाढ़ी निद्रा तथा मोक्ष की अवस्था में चैतन्य की अनुपस्थिति रहती है। उपर्युक्त प्रस्तुति के आलोक में सूत्र 2 | 3 | 19 'ज्ञोऽत् एव' ध्यातव्य है। सूत्र का तात्पर्य है कि स्वयंप्रकाशित होने के अतिरिक्त धर्मभूतज्ञान का धारक होकर ज्ञाता है यानी सहज में चैतन्य है। उपनिषद में उल्लेख है कि जीव द्रष्टा, श्रोता, गंध सूंघने वाला, भोक्ता, विचारक, ज्ञाता, कर्ता एवं चेतन है। अतः वह धर्मभूतज्ञान के कारण अपनी इन्द्रियों से अन्य वस्तु की अनुभूति करता है। इस अधिकरण के अन्य 13 सूत्र का सारांश है : 1। जीवात्मा सूक्ष्म परमाणु के आकार का है क्योंकि मृत्यु के समय शरीर छोड़ देता है तथा जन्म के समय अन्य शरीर में प्रवेश कर जाता है। 2। अतः जीव अपने पूर्व के पुण्य तथा पाप कर्म के कारण भौतिक रूप में बहिर्गमन तथा अन्तर्गमन करता है परंतु शरीर नाशवान रहता है। 3। श्वेताश्वतर उपनिषद में जीव के आकार का उल्लेख है। घोड़े की पूंछ के एक बाल के एक सौवां भाग का पुनः एक सौवां भाग सूक्ष्म जीव का आकार है। मोक्ष प्राप्ति के बाद जीव का धर्मभूतज्ञान अनंत हो जाता है। किसी अन्य उपनिषद के अनुसार जीव का आकार चमड़े की सिलाई करने वाली सूई की नोक के बराबर सूक्ष्म है। 4। जीव सूक्ष्मावस्था में हृदय के एक कोने में

विराजमान रहता है। प्रश्न उठता है कि कैसे यह शरीर के अन्यभाग के सुख दुःख का अनुभव कर लेता है। इसकी संवेदनशीलता का एक दृष्टान्त है कि एक छोटे स्थान पर भी चंदन का लेप लगाने पर उसकी शीतलता का अनुभव होता है उसीतरह जीव अन्य अनुभूति प्राप्त करता है। 5। धर्मभूत ज्ञान के सहारे जीव हृदयस्थल में भी रहकर शरीर के बारे में उसीतरह से जानता है जैसे एक दीपक का प्रकाश चतुर्दिक उपलब्ध रहता है। 6। धर्मज्ञान एवं धर्मभूत ज्ञान में अन्तर है। पहला चेतन 'मैं' की अनुभूति कराता है तो दूसरा अन्यवस्तु की अनुभूति प्राप्त करने में सहायक होता है। अतः धर्मभूत ज्ञान जीव का एक गुण है न कि धर्मभूत ही स्वयं जीव है। जैसे मिट्टी का गंध मिट्टी का गुण है न कि स्वयं गंध ही मिट्टी है। 7। धर्मभूत ज्ञान या चैतन्य यानी विज्ञान जीव से भिन्न है तब संशय उठता है कि उपनिषद में जीव को 'विज्ञान' कैसे कहा गया है। श्रीमन्नारायण विज्ञान यानी जीव के पास खड़ा होते हैं तथा विज्ञान यज्ञ करता है। सूत्रकार इसका निराकरण एक उदाहरण से करते हैं। गुण को संज्ञा की तरह सम्बोधित करने की एक रीति है। जैसे 'आनन्द' परमात्मा का कल्याण गुण है परंतु परमात्मा आनन्द शब्द से भी सम्बोधित होते हैं। उसीतरह धर्मभूत ज्ञान के कारण जो कि जीव का शाश्वत गुण है उसे विज्ञान कहा जाता है। 8। एक अन्य संशय उठता है कि धर्मभूतज्ञान जीव का शाश्वत गुण है तो गाढ़ी निद्रा की स्थिति में कैसे यह लुप्त हो जाता है। एक बालक का धर्मज्ञान संकुचित रहता है जबकि युवावस्था में यह प्रस्फुटित होता है। सूत्रकार एक उदाहरण से समझाते हैं। बचपन में बालक का यौन पुरूषत्व शिथिल रहता है परंतु युवा होने पर सक्रिय हो जाता है। इसी तरह निद्रावस्था में धर्मज्ञान शिथिल रहता है जो जागने पर सक्रिय हो जाता है। 9। जीव को सर्वव्याप्त एवं स्वयंप्रकाश होने को नकारते हुए सूत्रकार सिद्ध करते हैं कि जीव धर्मि ज्ञान तथा धर्मभूतज्ञान से सम्पन्न है।

58। कर्तु अधिकरण 7 सूत्र 2।3।33 से 2।3।39 तक अधि 2।3।5

तीसरे पाद के पाचवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं। यह जीव को कर्ता सिद्ध करता है। कठोपनिषद एवं गीता के उद्धरण से शंका हो जाती है। कठोपनिषद में उल्लेख है कि एक हत्यारा कहता है कि वह नहीं जानता कि वह हत्यारा है एवं दोनों नहीं जानते कि एक की हत्या हुई एवं दूसरा नहीं जानता कि वह हत्यारा है। इसी तरह गीता में भगवान अर्जुन को कहते हैं कि जीव को कर्ता होने का भ्रम है। वास्तव में कर्ता तो प्रकृति के तीनों गुण सत्व रज एवं तम हैं। पूर्वपक्षी इसके सहारा से जीव को कर्ता नहीं मानते।

सूत्र 2।3।33 'कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्' से तात्पर्य है कि जीव कार्य के फल का भोक्ता है इसलिये वह कर्ता है। ज्योतिष्म यज्ञ से स्वर्गलोक की प्राप्ति बतायी जाती है। परमात्मा श्रीमन्नारायण के ध्यान करने से मोक्ष मिलता है। यहां कर्ता ही स्वर्ग या मोक्ष फल का भोक्ता है। अतः प्रकृति के तीन गुण कर्ता नहीं हो सकते। अन्य 6 सूत्र में सूत्रकार अन्य उपनिषद का उद्धरण देते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लेख है कि विज्ञान यानी जीव यज्ञ का कर्ता है 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेपि च'। कुछ मतवाले विज्ञान से जीव का अर्थ न लेकर बुद्धि यानी स्थिर मन का अर्थ लेते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि जब बुद्धि का तात्पर्य रहता तब तृतीया विभक्ति से 'विज्ञानेन' कहा जाता परंतु ऐसा नहीं कहा गया है। अतः भोक्ता होने के नाते जीव ही कर्ता है।

59। परायत्ताधिकरण 2 सूत्र 2।3।40 से 2।3।41 तक अधि 2।3।6

तीसरे पाद का छठा अधिकरण 2 सूत्र का है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि जीव का कार्य परमात्मा के अधीन है। पूर्वपक्षी का मत है कि जब परमात्मा प्रत्येक कार्यकलाप को नियंत्रित करते हैं तो विधिशास्त्र एवं निषेधशास्त्र का महत्व ही क्या रह जाता है। सूत्र 2 | 3 | 40 'परात् तु तत् श्रुते' का तात्पर्य है कि उपनिषद के वाक्य से परमात्मा कार्यकलाप के नियंत्रक हैं। जीव के भीतर अन्तर्यामी रूप से परमात्मा निवास करते हैं तथा जीव के सभी कार्यकलाप को नियंत्रित करते हैं। परमात्मा जीव से भिन्न हैं तथा जीव परमात्मा का शरीर है। गीता 15 | 15 में भगवान कहते हैं कि वे सब के हृदय में बैठकर उसके कार्य को नियंत्रित करते हैं 'सर्वस्व चाहं हृदिसंनिविष्टो मतः स्मृतिः ज्ञान मपोहनं च'। गीता के 18 | 61 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृदयदेशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' सबके हृदय के बैठकर यंत्रवत् उसे चलाते रहते हैं। अगले सूत्र 2 | 3 | 41 से विपक्षी को निरस्त करते हैं। विपक्षी का मत है कि जीव को अगर कार्य की स्वतंत्रता नहीं है तो विधिनिषेध शास्त्र व्यर्थ है। सूत्रकार का सिद्धान्त है कि पाप पुण्य कर्म के अनुसार जीव को शरीर एवं इन्द्रियां मिलती हैं जिससे वह कार्यरत रहता है। परमात्मा के नियंत्रण के बाद भी इन्द्रियों के वसीभूत जीव पाप कर्म करता है तथा फल भोगने में परमात्मा को निष्ठुर कहता है। जब परमात्मा ने जीव को शरीर एवं इन्द्रिय प्रदान किया है तो दोनों को एक दूसरे की सहमति से इसका उपयोग करना चाहिये। भगवत रामानुज ने एक दृष्टान्त से इसे समझाया है। जैसे एक पिता अपने पुत्र को रिक्त प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर किसी धनराशि के उपयोग की अनुमति देता है। अगर पुत्र ने उसका सदुपयोग किया तो वह प्रसन्न रहेगा परंतु दुरुपयोग करने पर पुत्र बाद में पश्चाताप करेगा। सदकार्य करने वाले को परमात्मा सदा अपनी कृपा का पात्र बनाये रहते हैं तथा अंततः मोक्ष देते हैं। दुष्कार्य में लीन व्यक्ति को उसीतरह से दंडित भी करते हैं। अतः विधिनिषेध शास्त्र का महत्व सिद्ध होता है।

60 | अंशाधिकरण 11 सूत्र 2 | 3 | 42 से 2 | 3 | 52 तक अधि 2 | 3 | 7

तीसरे पाद के इस अंतिम एवं सातवें अधिकरण में 11 सूत्र हैं। इस अधिकरण में परमात्मा एवं जीवात्मा के सम्बंध का विवेचन है। प्रश्न है कि 1 | क्या दोनों दो स्वतंत्र इकाई हैं ? 2 | क्या अविद्या के भ्रम के कारण परमात्मा ही जीवात्मा हो जाते हैं ? 3 | नश्वर शरीर की उपाधि प्राप्त कर क्या परमात्मा जीव हो जाते हैं ? 4 | क्या जीव परमात्मा का एक अंश है ?

उपर्युक्त प्रश्न कुछेक उपनिषद के अस्पष्ट वाक्य से उत्पन्न हुये हैं। परमात्मा सर्वज्ञ हैं जबकि जीव अज्ञानी है। अर्थात् दोनों स्वतंत्र इकाई हैं। उपनिषद के अन्य वाक्य 'परमात्मा जीव हैं तथा जीव परमात्मा हो जाता है' से अविद्या का भ्रम उत्पन्न होता है।

सूत्र 2 | 3 | 42 'अंशो नानाव्यपदेशाद् अन्यथा चापि दासकित्वादित्वम् अधीयत एके' का अर्थ है कि जीव परमात्मा का अंश है। जीव अंश है तथा परमात्मा अंशी हैं। इसे अंशअंशी भाव कहते हैं जो शरीर आत्मा भाव के समान है। अर्थात् परमात्मा आत्मा हैं तथा जीव शरीर है। अथर्व वेद का एक वाक्य कहता है कि ब्रह्म यानी परमात्मा मछुआरा हैं। इसका तात्पर्य है कि मछुआरे के शरीर की आत्मा परमात्मा हैं। अतः हरेक जीव अपने अपने पृथक शरीर में परमात्मा का शरीर है। गीता 15 | 7 में भी भगवान ने यही कहा है 'ममैवांशे जीवलोके

जीवभूतः सनातनः'। प्रश्न है कि जब सब जीव परमात्मा के अंश से समान हैं तो फिर जाति, रंग, धर्म से भेद कैसा ? सूत्रकार इसका निराकरण करते हैं कि मूल स्वभाव से जीव समान हैं परंतु पूर्वकर्म के कारण प्राप्त शरीर ही भेद उत्पन्न करता है। अतः जाति रंग धर्म का भेद शरीर से है न कि जीव से। जैसे श्मशान की अग्नि और रसोई घर की अग्नि तत्वतः एक है परंतु श्मशान स्थल के स्पर्श से अग्नि श्मशान की हो गयी। श्मशान में मृतक शरीर के माध्यम से अग्नि जलती है जबकि रसोई में चूल्हे एवं लकड़ी के माध्यम से जलती है। इस अधिकरण के बाकी सूत्रों में अद्वैत भास्कर सिद्धान्त तथा द्वैत सिद्धान्त को निरस्त किया गया है। इस तरह से दूसरे अध्याय का तीसरा पद पूर्ण हुआ।

तालिका 10 : दूसरे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (52 सूत्र, 7 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²⁶
54। वियदधिकरण	2 3 1 से 2 3 9 तक	9	2 3 1
55। तेजोऽधिकरण	2 3 10 से 2 3 17 तक	8	2 3 2
56। आत्माधिकरण	2 3 18	1	2 3 3
57। ज्ञाधिकरण	2 3 19 से 2 3 32 तक	14	2 3 4
58। कर्तु अधिकरण	2 3 33 से 2 3 39 तक	7	2 3 5
59। परायत्ताधिकरण	2 3 40 से 2 3 41 तक	2	2 3 6
60। अंशाधिकरण	2 3 42 से 2 3 52 तक	11	2 3 7

²⁶ 2 | 3 | 1 यानी अध्याय 2 पाद 3 अधिकरण 1

दूसरे अध्याय का चौथा पाद

(अविरोध अध्याय, प्राण पाद, 19 सूत्र, 8 अधिकरण)

दूसरे अध्याय के चौथे पाद को इन्द्रिय पाद या प्राण पाद कहते हैं। इस पाद में इन्द्रियों का सृजन उनकी संख्या मुख्य प्राण श्वास का सृजन एवं अन्य प्रासंगिक विषय का विवेचन प्रस्तुत है। आकाश के सृजन की तरह इन्द्रियों का सृजन भी विवाद का विषय है। इसके साथ उनकी संख्या एवं आकार पर भी विवाद है। हर पक्ष अपने समर्थन में उपनिषद का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। यहां मुख्यप्राण के विवाद का भी निराकरण करके श्रीमन्नारायण को सर्वनियंता के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस पाद में इन सभी बातों का उचित विवरण है कि अपनी नाभिकमल से चतुर्मुख ब्रह्मा को बनाकर कैसे परमात्मा सृष्टि रचना का कार्य संपादित करते हैं। **पञ्चीकरणम** से पांच भूतों को मिलाकर तत्वों का निर्माण होता है।

61 | प्राण उत्पत्ति अधिकरण 3 सूत्र 2।4।1 से 2।4।3 तक अधि 2।4।1

चौथे पाद के पहले अधिकरण में 3 सूत्र है। यहां प्राण का अर्थ है इन्द्रिय। पूर्वपक्ष के अनुसार उपनिषद में उल्लेख है कि सृष्टि के पूर्व केवल ऋषिगण थे। यहां ऋषि शब्द इन्द्रिय का पर्यायवाची है। सूत्र 2।4।1 'तथा प्राणाः' का तात्पर्य है कि आकाश की तरह इन्द्रियां भी सृजित हुई हैं। मुण्डक उपनिषद में उल्लेख है कि परमात्मा से मुख्यप्राण श्वास, इन्द्रिय, तथा पांच भूत की रचना हुई है। अब प्रश्न उठता है कि ऋषिगण कौन थे ? सूत्रकार ने सिद्ध किया है कि ऋषि का तात्पर्य इन्द्रिय न होकर परमात्मा है। अब दूसरा प्रश्न है कि उपनिषद का शब्द 'ऋषयः' बहुवचन है जबकि 'परमात्मा' एकवचन है। सूत्र 2।4।2 में यह बताया गया है कि परमात्मा के साथ भाषा व्याकरण की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह प्राण भी परमात्मा ही हैं। सृष्टि के समय परमात्मा के अतिरिक्त किसी का नाम नहीं था। अन्य किसी का न तो कोई स्वरूप था न कोई नाम था। अतः इन्द्रियों का सृजन हुआ।

62 | सप्तगति अधिकरण 2 सूत्र 2।4।4 से 2।4।5 तक अधि 2।4।2

चौथे पाद के दूसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं तथा यहां इन्द्रियों की संख्या का विचार किया गया है। शंका होती है कि इन्द्रियां सात हैं या ग्यारह। पूर्वपक्षी तैत्तिरीय उपनिषद का उद्धरण देकर बताते हैं कि जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में सात इन्द्रियों के साथ जाता है। ये सात इन्द्रियां हैं मन, बुद्धि, आंख, कान, नाक, जीभ, एवं त्वचा। सूत्र 2।4।4 'सप्तगतेर्विशेषित्वाच्च' को पूर्वपक्ष का सूत्र कहते हैं। इसका अर्थ है कि जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में सात इन्द्रियों के साथ गमन करता है।

सूत्र 2।4।5 'हस्तास्तु स्थितेऽतो नैवम्' से पूर्वपक्ष को निरस्त कर यह बताया जाता है कि हाथ आदि को मिलाने पर इन्द्रियां सात ही नहीं हैं। अतः इनकी 11 की संख्या उचित है। पांच ज्ञानेन्द्रियां : आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा हैं। पांच कर्मेन्द्रियां : हाथ, पैर, वाणी, यौन अवयव, एवं मलमूत्र विसर्जन अवयव। ग्यारहवां इन्द्रिय मन है। बुद्धि इन्द्रिय नहीं है क्योंकि किसी वस्तु के ज्ञान में स्थिरता प्राप्त करने की अवस्था को बुद्धि कहते हैं।

63 | प्राण अनुत्वाधिकरण 2 सूत्र 2।4।6 से 2।4।7 तक अधि 2।4।3

चौथे पाद के तीसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं और यह इन्द्रियों के आकार का ज्ञान कराता है। बृहदारण्यक उपनिषद में यह उल्लेख है कि इन्द्रियां समान एवं अंतहीन आकार की हैं। अंतहीन का अर्थ सर्वव्याप्त भी लिया जा सकता है जो परमात्मा की तरह विभु है। सूत्र 2।4।6 'अणवश्च' सीमित आकार बताता है। कुछ मत से इन्हें परमाणु की तरह सूक्ष्म बताया गया है परंतु यह लागू नहीं होता। त्वचा सारे शरीर पर फैला है तब वह परमाणु की तरह सूक्ष्म कैसे हो सकता है। भगवद रामानुज बताते हैं कि ये परिमित यानी सीमित आकार के हैं और मृत्यु के समय उसके पास वाले व्यक्ति को इन्द्रियों के निकल जाने का अनुभव भी नहीं होता है। मृत्यु के समय मुख्यप्राण यानी श्वास के बन्द होने का उल्लेख उपनिषद में मिलता है। मुख्यप्राण के निकलते ही सभी ग्यारह इन्द्रियां शरीर छोड़ देती हैं। इन्द्रियों का प्रवेश एवं निकास परिमित आकार का होने पर ही संभव है। सूत्र 2।4।7 'श्रेष्ठश्च' बताता है कि मुख्यप्राण का सृजन होता है। मुख्यप्राण को श्रेष्ठ प्राण भी कहते हैं। इसके सृजन की बात यहां इसलिये की गयी कि उपनिषद में यह उल्लेख है कि वायु के रूप में यह महाप्रलय के समय भी विराजमान रहता है। चतुर्मुख ब्रह्मा की अवधि दो परार्ध यानी 10¹⁷ वर्ष यानी 10 पर 17 के घातांक के बराबर वर्ष है और महाप्रलय चतुर्मुख ब्रह्मा की अवधि के अंत में आता है। महाप्रलय काल में वायु की उपस्थिति को नकारते हुए सूत्रकार ऋक वेद का उद्धरण देते हैं जिसमें श्रीमन्नारायण की अकेली उपस्थिति का उल्लेख है। मुण्डक उपनिषद में मुख्यप्राण के सृजन का स्पष्ट उल्लेख है। अतः मुख्यप्राण आकाश एवं इन्द्रियों की तरह सृजित होता है।

64 | वायुक्रियाधिकरण 4 सूत्र 2।4।8 से 2।4।11 तक अधि 2।4।4

चौथेपाद के चौथे अधिकरण में 4 सूत्र हैं तथा यहां मुख्यप्राण की प्रकृति तथा क्रियाकलाप का विवेचन है। मुख्यप्राण के सम्बंध में कुछ प्रश्न उठते हैं: 1। क्या यह वायु की तरह कोई अन्य पांचभूत जैसा है? 2। क्या यह वायु की गति का सूचक है? 3। क्या यह विशेष तरह की वायु है?

सूत्र 2।4।8 'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्' से यह स्पष्ट है कि ऊपर का तीसरा प्रश्न लागू होता है। अर्थात् मुख्यप्राण पांचभूत वाली वायु से पृथक है तथा यह वायु की क्रियाशीलता मात्र का द्योत्तक नहीं है। अतः यह विशेष वायु है जैसाकि मुण्डक उपनिषद में स्पष्ट उल्लेख है कि श्रीमन्नारायण से मुख्यप्राण, मन, तथा दस इन्द्रियों का सृजन हुआ है।

सूत्र 2।4।9 'चक्षुरादिवत् तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः' से यह स्पष्ट है कि आंख की तरह मुख्यप्राण जीव का सहायक है। यह वायु का रूपान्तरण मात्र न होकर अग्नि की तरह पृथक तत्व ही है। छान्दोग्य उपनिषद में 'प्राण संवाद' नाम से एक रूचिकर प्रसंग है। शरीर में अन्तर्यामी परमात्मा, जीवात्मा, मुख्यप्राण मन, तथा दस इन्द्रियां स्थित हैं। एक बार इन्द्रियों में कौन सर्वश्रेष्ठ है के प्रश्न पर कलह प्रारंभ हो गया। चतुर्मुख ब्रह्मा के पास सब निर्णय के लिये गये। चतुर्मुख ब्रह्मा ने उन्हें एक एक कर शरीर से बाहर निकल कर अपने प्रभाव का अध्ययन करने को कहा। वाणी पहले शरीर से बाहर निकल गयी। शरीर जीवित रहा परंतु प्राणी गूंगा हो गया। पुनः वाणी के लौटने पर उसकी मूकावस्था का नाश हो गया तथा वह पूर्व की तरह यथावत बोलने लगा। इसीतरह से

आंख आदि इन्द्रियां शरीर से बाहर निकल कर प्राणी की अवस्था का अनुभव प्राप्त की। शरीर जीवित रहा परंतु एक इन्द्रिय विशेष के न रहने पर कठिनाई और कष्ट का अनुभाव हुआ परंतु उनके लौटने पर यथास्थिति कायम हो गयी। जब मुख्य प्राण ने शरीर छोड़ दिया तो सभी इन्द्रियां बाहर निकल गयीं तथा शरीर मृत होकर क्षरण की विकृति से ग्रस्त होने लगा। चतुर्मुख ब्रह्मा ने तत्पश्चात् निर्णय दिया कि मुख्यप्राण ही सर्वश्रेष्ठ है एवं सबका नेता होकर शरीर तथा इन्द्रियों को आश्रय देता है।

मुख्यप्राण पांच रूप से शरीर में क्रियाशील रहकर शरीर तथा इन्द्रियों को आश्रय प्रदान करता है। 1। 'प्राण' के रूप में हृदय में। 2। 'अपान' के रूप में मलमूत्र विसर्जन अवयव में 3। 'समान' के रूप में नाभि में। 4। 'उदान' के रूप में कंठ में। 5। 'व्यान' के रूप में सम्पूर्ण शरीर में।

65 | श्रेष्ठ अणुत्वाधिकरण 1 सूत्र 2।4।12 अधि 2।4।5

चौथे पाद के पांचवें अधिकरण में 1 सूत्र है तथा यह मुख्यप्राण के सीमित आकार का ज्ञान कराता है। ऐसा कुछ उपनिषद में उल्लेख है कि मुख्यप्राण सर्वव्याप्त तथा अनंत होकर विभु की तरह सब को आच्छादित किये हुए है। सूत्र 2।4।12 'अणुश्च' का तात्पर्य है कि यह अति सूक्ष्म आकार का तथा अतिवृहत् आकार का है। इसका अति सूक्ष्म होना आवश्यक है क्योंकि उपनिषद का उल्लेख बताता है कि यह शरीर छोड़कर जब निष्क्रमण करता है तब जीव भी शरीर का त्याग कर देता है।

66 | ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरण 2 सूत्र 2।4।13 से 2।4।14 तक अधि 2।4।6

चौथे पाद का यह छठा अधिकरण 2 सूत्र का है। दूसरे अध्याय के पहला पाद का सूत्र 2।1।5

'अभिमानिव्यपदेशस् तु विशेषानुगतिभ्याम्' का तात्पर्य है कि चैतन्यहीन प्रत्येक जड़ वस्तु के नियंत्रण के लिये पृथक् पृथक् एक जड़ वस्तु के लिये एक देवता अभिनियोजित हैं जो 'अभिमानी देवता' या 'अधिष्ठान देवता' कहे जाते हैं। इस पाद के चौथे अधिकरण 'वायुक्रियाधिकरण' में बृहदारण्यक के प्राण संवाद का संदर्भ दिया गया है। चतुर्मुख ब्रह्मा से इन्द्रियां अपने अपने अभिमानी देवता के माध्यम से ही बात कर रहीं थी। उपनिषद में उल्लेख है कि वाणी का अभिमानी देवता अग्नि है जो जीभ में स्थित रहते हैं। सूर्य आंख के अभिमानी देवता हैं तथा वायु देवता नाक में स्थित होकर मुख्यप्राण के अभिमानी देवता हैं। इसीतरह से अन्य देवता अन्य इन्द्रियों के अभिमानी देवता हैं। इसीक्रम में शरीर का अभिमानी देवता जीव माना जाता है। अब इससे यह प्रश्न उठता है कि इन्द्रियों का नियंत्रण या शरीर का नियंत्रण सम्बन्धित अभिमानी देवता की स्वतंत्र इच्छा है या सब कुछ परमात्मा श्रीमन्नारायण के संकल्प से होता है। चूंकि कुछ अन्य सिद्धान्त वाले जीव को ध्यान की वस्तु कहकर फल देने वाला बताते हैं। वर्तमान अधिकरण यानी इस छठे अधिकरण से तथाकथित सिद्धान्त को निरस्त किया गया है। सूत्र 2।4।13 'ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् प्राणवता शब्दात्' में 'ज्योति आदि अधिष्ठानं प्राणवता' का अर्थ है कि मुख्यप्राण तथा जीव सहित अन्य इन्द्रियों के अधिष्ठान या अभिमानी देवता जो अग्नि आदि हैं सब परमात्मा के संकल्प से क्रियाशील हैं। 'प्राणवता' का अर्थ है जीव एवं 'तदामननात्' का अर्थ है परमात्मा का संकल्प। 'तत्' यानी परमात्मा तथा 'आमननम्' यानी संकल्प। इस तरह के निष्कर्ष का आधार है 'शब्दात्' यानी उपनिषद के वाक्य। बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण के अध्याय तीन में याग्यवल्क्य ने

उद्यालक को ऐसे 21 वस्तुओं के बारे में बताया है जहां परमात्मा भीतर में अन्तर्यामी होकर रहते हैं तथा वस्तु से सर्वथा भिन्न हैं। वस्तु परमात्मा को बिल्कुल नहीं जानता। उद्यालक के भीतर प्रश्नकर्ता भी वही अन्तर्यामी परमात्मा हैं। उद्यालक को बताये गये वस्तुयें हैं : पांच तत्व, इन्द्रियां, जीव, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, समस्त प्राणी, अंधकार, प्रकाश, दिशायें आदि। अन्तर्यामी ब्राह्मण के अनुसार सभी देवता, जीव, तथा जगत के समस्त वस्तुओं के कार्य कलाप परमात्मा के अधीन है। सुबालोपनिषद में उल्लेख है कि अन्तर्यामी श्रीमन्नारायण निर्मल हैं तथा वैकुण्ठ में रहते हैं। आप समस्त जगत को भीतर तथा बाहर से आच्छादित किये हुए हैं। सबों के साथ अन्तर्यामी होना परमात्मा का शाश्वत गुण है।

67 | इन्द्रियाधिकरण 2 सूत्र 2 | 4 | 15 से 2 | 4 | 16 तक अधि 2 | 4 | 7

चौथे पाद के सातवें अधिकरण मे 2 सूत्र हैं। इसमें इस संशय का निदान हुआ है कि मुख्यप्राण भी इन्द्रिय की श्रेणी में है या उनसे बाहर कोई अन्य इकाई है। इस शंका का कारण है कि इन्द्रिय को भी प्राण कहते हैं तथा मुख्यप्राण भी प्राण है और ये सब शरीर में जीव को आधार प्रदान करते हैं।

सूत्र 2 | 4 | 15 'त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशान्यत्र श्रेष्ठात्' का तात्पर्य है कि श्रेष्ठप्राण यानी मुख्यप्राण इन्द्रियों से भिन्न है। सूत्र 2 | 4 | 16 'भेदश्रुतेर्वैलक्षण्याच्च' का तात्पर्य है कि श्रुति कहती है कि परमात्मा ने इन्द्रियों तथा मुख्यप्राण का सृजन किया। इस तरह से श्रुति या उपनिषद मुख्यप्राण तथा इन्द्रियों को पृथक बताते हैं।

68 | संज्ञामूर्तिक्लृप्ति अधिकरण 3 सूत्र 2 | 4 | 17 से 2 | 4 | 19 तक अधि 2 | 4 | 8

चौथे पाद के अंतिम आठवां अधिकरण 3 सूत्रों का है। यहां 'संज्ञा' का अर्थ नाम है तथा 'मूर्ति' का अर्थ स्वरूप है। इस जगत के सभी वस्तु का एक पृथक नाम है तथा एक पृथक स्वरूप है। सृष्टि का प्रारंभ महाप्रलय के बाद होता है। महाप्रलय का समय चतुर्मुख ब्रह्मा के लिये निर्धारित दो परार्द्ध की अवधि के अंत में है। यह अवधि 10¹⁷ वर्ष यानी 10 पर 17 के घातांक वर्ष का दोगुना है क्योंकि एक परार्द्ध 10¹⁷ वर्ष का है। चतुर्मुख ब्रह्मा के लिये एक दिन एक कल्प है तथा एक रात भी एक कल्प है। दिन के कल्प को श्वेतवाराह कल्प कहते हैं तथा रात वाले कल्प को पद्म कल्प कहते हैं। एक कल्प की अवधि 1000 चतुर्युग है। एक चतुर्युग 4320000 यानी 43 लाख 20 हजार मानवीय वर्ष का है। कलिकाल 432000 वर्ष है। द्वापर 864000 वर्ष का है। त्रेता 1296000 वर्ष का है। सतयुग 1728000 वर्ष का है। कुल एक चतुर्युग 4320000 वर्ष का हुआ। प्रलय की अविधि दो परार्द्ध के बराबर की अवधि है। एक चतुर्युग में 4320000 हुआ। 1000 चतुर्युग यानी 1 कल्प में 4320000 x 1000 मानव वर्ष हुआ। ब्रह्मा की आयु 100 देव वर्ष है। एक देव वर्ष मानव वर्ष का 365 गुणा होता है क्योंकि मानव का 1 वर्ष देव का 1 दिन होता है। ब्रह्मा की पूरी आयु 4320000 x 1000 x 2 x 365 x 100 x 365 यानी लगभग 10¹⁷ वर्ष का है। यहां 2 का गुणक दिन एवं रात के लिये है क्योंकि 1000 चतुर्युग मात्र एक दिन में होता है। अतः रात के लिये 2 से गुणा करने पर एक दिन एक रात का गणित हो जायेगा। वर्ष में 365 दिन तथा 365 रात का युग्म हुआ। पहला 365 वर्ष की गणना करता है। 100 का अंक ब्रह्मा की 100 वर्ष की आयु का सूचक है। दूसरा 365 मानव वर्ष एवं देव वर्ष का गुणक है।

सृष्टि के विभिन्न स्तर हैं : 1। समष्टि सृष्टि यानी श्रीमन्नारायण पांच भूतों या तत्वों की रचना करते हैं। 2। त्रिवृत्करणम यानी पञ्चीकरणम। 3। अण्ड सृष्टि यानी अण्डे के आकार की सृष्टि जिसमें चौदह भुवन हैं : सात ऊपर : भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, तथा सात नीचे : अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, सुतल, एवं पाताल। यहां भूलोक में हमलोग रहते हैं। एक अण्ड में चौदह लोक हुए तथा अण्ड के देवता को अण्डपति कहते हैं जो चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। अनन्त अण्ड हैं अतः श्रीमन्नारायण अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक हुए। प्रत्येक अण्ड के चतुर्मुखब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र अलग अलग हैं।

4। अण्डसृष्टि के बाद श्रीमन्नारायण के नाभिकमल से प्रत्येक अण्ड में एक एक चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि होती है। 5। चतुर्मुख ब्रह्मा के अन्तर्यामी श्रीमन्नारायण हैं जो नामरूप व्याकरणम करते हैं जिसे व्यष्टि सृष्टि कहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा को समष्टि पुरुष कहते हैं।

त्रिवृत्करणम का विवरण : समष्टि सृष्टि के बाद जिसमें पांच भूतों को रचा गया था आगे कोई कार्य नहीं बढ़ा। अर्थात् देव, ऋषि, मानव, पशु, जड़ पदार्थ आदि की सृष्टि नहीं हो सकी। इसका कारण था कि पांच भूत आपस में मिल नहीं सके। इन पांच भूतों को आपस में मिश्रित किया गया जिसे पञ्चीकरणम कहते हैं। जैसे सीमेंट बालू जल गिट्टी अलग अलग पड़ रहने पर कंक्रीट का निर्माण नहीं कर सकते उसी तरह की स्थिति पांच भूत की रचना के बाद की थी। जब सबको मिलाया गया तब सृष्टि का प्रारंभ हुआ।

पञ्चीकरणम से प्राप्त वस्तु : 1। आकाश में 50 % आकाश रखा गया तथा अन्य चार 12.5 % रखे गये। 2। वायु में 50 % वायु रखा गया तथा अन्य चार 12.5 % रखे गये। 3। अग्नि में 50 % अग्नि रखी गयी तथा अन्य चार 12.5 % रखे गये। 4। जल में 50 % जल रखा गया तथा अन्य चार 12.5 % रखे गये। 5। पृथ्वी में 50 % आकाश रखा गया तथा अन्य चार 12.5 % रखे गये। अतः जगत के हर वस्तु में पांचों तत्वों का सम्मिश्रण है। इसी तरह से मानव शरीर भी पांच भूतों का मिश्रण है।

छान्दोग्य उपनिषद में उल्लेख है कि त्रिवृत्यकरणम का तात्पर्य है कि अग्नि जल पृथ्वी तीन तत्वों के मिश्रण से सृष्टि की रचना हुई। इसी तीन तत्वों के मिश्रण को त्रिवृत्यकरणम कहते हैं। उद्यालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को बताते हैं कि ज्योति में तीन रंग का मिश्रण है : लाल, श्वेत, एवं काला। लाल रंग तेजस अग्नि का है तथा श्वेत जल का रंग है एवं काला रंग पृथ्वी का है। तैत्तिरीय उपनिषद में पांचभूतों की रचना का उल्लेख है। छान्दोग्य में श्रीमन्नारायण को सत् कहा गया जो हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा के अन्तर्यामी बने तथा जगत के वस्तुओं को नाम एवं रूप देने में सहायक हुए। जगत के प्रत्येक वस्तु का अपना नाम है तथा उसमें जीव है एवं अन्तर्यामी परमात्मा हैं। कोई भी वस्तु बिना नाम, जीव, तथा परमात्मा के बिना नहीं है। जड़ वस्तु में जीव एवं परमात्मा की स्थिति शिथिल है परंतु चेतन में ये स्पष्टतः क्रियाशील हैं।

अतः यह स्पष्ट हुआ कि सभी जड़ एवं चेतन वस्तु परमात्मा के शरीर हैं। सूत्र 2।4।17 'संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात्' का तात्पर्य है कि जो परमात्मा पहले त्रिवृत्यकरण करते हैं वे ही नाम रूप का निर्धारण भी करते हैं।

तालिका 11 : दूसरे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (19 सूत्र, 8 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²⁷
61 प्राण उत्पत्ति	2 4 1 से 2 4 3 तक	3	2 4 1
62 सप्तगति अधिकरण	2 4 4 से 2 4 5 तक	2	2 4 2
63 प्राण अनुत्वाधिकरण	2 4 6 से 2 4 7 तक	2	2 4 3
64 वायुक्रियाधिकरण	2 4 8 से 2 4 11 तक	4	2 4 4
65 श्रेष्ठ अणुत्वाधिकरण	2 4 12	1	2 4 5
66 ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरण	2 4 13 से 2 4 14 तक	2	2 4 6
67 इन्द्रियाधिकरण	2 4 15 से 2 4 16 तक	2	2 4 7
68 संज्ञामूर्तिक्लृप्ति अधिकरण	2 4 17 से 2 4 19 तक	3	2 4 8

²⁷ 2 | 4 | 1 यानी अध्याय 2 पाद 4 अधिकरण 1

तीसरे अध्याय का पहला पाद

(साधना अध्याय, वैराग्य पाद, 27 सूत्र, 6 अधिकरण)

तीसरे अध्याय में परमात्मा की प्राप्ति के उपाय का वर्णन है। पहले दो अध्याय में यह सिद्ध हुआ है कि श्रीमन्नारायण ही इस जगत के उपादान, निमित्त, तथा सहकारी कारण हैं। यह पहले अध्याय तथा दूसरे अध्याय के पाद 1 एवं 2 का विषय वस्तु रहा है। आपके द्वारा बनाये गये मुख्य वस्तुओं का विवेचन भी द्वितीय अध्याय के पाद 3 एवं 4 का विषय वस्तु है।

कुल 545 सूत्रों में से तीसरे अध्याय में 182 सूत्र हैं तथा 156 अधिकरणों में से तीसरे अध्याय में 55 अधिकरण हैं। तीसरे अध्याय के चार पाद हैं : वैराग्य, उभयलिंगपाद, गुणोपसंहार, एवं अंग। मोक्ष प्राप्ति के लिये दो आवश्यकता है : वैराग्य एवं भक्ति। सांसारिक सुख से विराग या उदासीन भाव का रखना ही वैराग्य है। श्रीमन्नारायण के चरणाविंद से अतिशय प्रेम करना ही भक्ति है। वैराग्य भक्ति का सहायक है और दोनों भाई बहन हैं। प्राणी इस शरीर में चार तरह की अवस्थाओं से गुजरता है : जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, एवं मूर्च्छा। ब्रह्मसूत्र के सूत्रकार बादरायण मुनि ने सोचा कि अगर इन अवस्थाओं के दोष से मानव को अवगत करा दिया जाय तो वह वैराग्य की साधना करके वह भक्तियोग में निष्ठ हो सकता है। इस अध्याय के पहले पाद में जाग्रत अवस्था के दोष का वर्णन है तथा दूसरे पाद में अन्य तीनों अवस्थाओं के दोष को दिखवाया गया है।

श्रीमन्नारायण के कल्याण गुण प्राणी के हृदय में सुषुप्ति, स्वप्न, एवं मूर्च्छा की तीनों अवस्थाओं में भी प्रवेश पाते हैं इसलिये इन तीन अवस्थाओं की प्रकृति से अवगत कराने का सूत्रकार ने उद्देश्य बनाया तथा इनका विवेचन दूसरे पाद में किया। श्रीमन्नारायण ही जगत के नियंता है यह स्वप्न की अवस्था का कल्याण गुण है। प्राणी गाढ़ी निद्रा में भगवान में ही आश्रय पाकर सोता है यह सुषुप्ति अवस्था का कल्याण गुण है। इस शरीर में भगवान जीव की रक्षा करते हैं यह मूर्च्छा अवस्था का कल्याण गुण है।

दूसरे पाद में भगवान की निर्मलता एवं अनंत कल्याण गुण कोष का विवेचन है इसीलिये इसे उभयलिंग यानी दो शाश्वत पहचान का पाद मानते हैं। ये दोनों तत्व प्राणी की भक्ति को सुदृढ़ करते हैं तथा शरणागति या प्रपत्ति कराते हैं। तीसरे पाद को गुणोपसंहार पाद कहते हैं तथा इसमें अनेकों ब्रह्म विद्या का विवेचन है। ब्रह्म विद्या से व्यक्ति भगवान पर सतत ध्यान की प्रवृत्ति को सुदृढ़ करता है। ब्रह्मविद्या ही भक्ति योग है। चौथे पाद को अंग पाद कहते हैं जिसका उद्देश्य है भक्ति के विभिन्न अवयवों एवं मार्गों का सम्यक दिग्दर्शन।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि इस अध्याय के पहले पाद में इस संसार में संघर्षशील जीव की जाग्रतावस्था के दोष का विवेचन है। स्वर्ग या नरक से सुख या दुःख भोगकर जीव संसार में पुनः प्रकट होता है। इस प्रसंग में छान्दोग्य उपनिषद का पाचवां अध्याय बहुत उपयोगी है। अरूणी ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु जावाली के पुत्र प्रवाहण राजा के पास पहुंचता है। राजा के पूछने पर वह बताता है कि वह अपने पिता से ही विद्या अर्जन करते रहा है। राजा उससे पांच प्रश्न पूछते हैं। 1। यज्ञ करने वाला जीव अपना नश्वर शरीर के छूटने पर कहां जाता है ? 2। स्वर्ग का सुख भोगने के बाद वह किस मार्ग से पुनर्जन्म प्राप्त करता है ? 3। देवयान एवं पितृयान

मार्ग में क्या अंतर है ? | 4 | स्वर्ग जीवों से सदा भरा क्यों नहीं रहता ? | 5 | माता की गर्भ के माध्यम से कैसे जीव स्वर्ग से अग्नि की आहुति बनकर पृथ्वी पर लौटता है ? |

उपर्युक्त पश्न में देव यान अर्चिरादि गति को कहते हैं जो दिव्यलोक वैकुण्ठ जाने वाले प्रपत्ति प्रवण भक्तों के लिये है। पितृयान वाले स्वर्ग के भागी होते हैं जो इष्टाधिकारी कहे जाते हैं। नरक जाने वाले को अनिष्टाधिकारी कहा जाता है तथा उनके मार्ग को कष्टमार्ग कहते हैं।

अग्नि पांच तरह की हैं: स्वर्ग, वर्षा, पृथ्वी, पुरुषवर्ग तथा नारी वर्ग। स्वर्ग का पुण्य भोग लेने के बाद जीव को घी की तरह यज्ञा अग्नि में आहुति के रूप में डाला जाता है। वहां से वह वर्षा के माध्यम से पृथ्वी पर आ जाता है। यहां वह अन्न के पौधा में प्रवेश कर अन्न में स्थित हो जाता है। अन्न के रूप में भोजन के माध्यम से वह पुरुष वर्ग में प्रवेश करता है। पुरुष के शरीर में वीर्य रूप से वह मां के गर्भ में स्थापित होता है। दस महीने में नया शरीर प्राप्त कर नये तरह से पुण्य एवं पाप अर्जित करने लगता है। पुनः स्वर्ग या नरक का जीवन व्यतीत करता है। यह आवृत्ति इसी तरह से चलते रहती है। पांच अग्नि के संस्कृत नाम हैं : द्यु, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष, एवं योषित। उल्लिखित अग्नि में आहुति डाले जाने वाले वस्तु क्रमशः हैं : श्रद्धा, सोमराज, वर्षा, अन्न, एवं रेता। श्रद्धा तरल पदार्थ की तरह है। सोमराज स्वर्ग का सुन्दर जीव है। अन्न भोजन है तथा रेता वीर्य है।

69 | तदन्तरप्रतिपत्ति अधिकरण 7 सूत्र 3 | 1 | 1 से 3 | 1 | 7 तक अधि 3 | 1 | 1

तीसरे अध्याय के पहले पाद में 7 सूत्र हैं। इसका विषयवाक्य उपर्युक्त छान्दोग्य उपनिषद से उद्धृत है। संशय होता है कि क्या एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने पर पांच भूत भी जीव के साथ रहते हैं। पांच भूत आकाश वायु अग्नि जल एवं पृथ्वी है। इसीलिये इस शरीर को पांच भौतिक शरीर कहते हैं एवं पांच भूत को भूत सूक्ष्म कहते हैं। सूत्र 3 | 1 | 1 'तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्' का तात्पर्य है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में जीव के साथ भूत सूक्ष्म भी जाते हैं। उपर्युक्त प्रसंग में राजा प्रवाहण बताते हैं कि स्वर्ग में पहुंचते ही सुख सुविधा के उपभोग के लिये जीव सुन्दर शरीर धारण कर लेता है। इन्द्रियों के देवगन अग्नि में 'श्रद्धा' की आहुति देते हैं और यह तरल पदार्थ 'श्रद्धा' जीव तथा सूक्ष्म भूत का बना होता है। सूत्रकार ने इस अधिकरण के अन्य सूत्रों से यह प्रतिपादित किया है कि जीव सूक्ष्म भूत के साथ शरीर बदलता है। इसके साथ इसकी इन्द्रियां भी रहती हैं।

उपनिषद में उल्लेख है कि पिता के वीर्य से माता के गर्भ में जीव शरीर प्राप्त करता है। जीव वीर्य के संसर्ग में है तथा वीर्य में जल रूपी भूत विद्यमान है। तब संशय होता है कि क्या जीव अन्य सूक्ष्म भूत के संसर्ग में भी है। सूत्रकार ने इस संशय को दूर करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि अन्य सूक्ष्म भूत भी वीर्य में जीव के साथ रहते हैं जबकि वीर्य में जल की अधिकता रहती है। यह सब पञ्चीकरणम के कारण होता है जिसे छान्दोग्य में त्रिवृत्यकरणम कहते हैं।

यह भी कहा गया है कि शरीर छोड़ते समय जीव के साथ मुख्यप्राण तथा इन्द्रियां भी साथ रहती हैं। गीता 15 | 7 'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानी कर्षति' एवं 15 | 8 'शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युक्तामतीश्वरः। गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्' से भी यही कहती है।

उपनिषद में यह भी कहा है कि शरीर छोड़ने पर वाणी रूपी इन्द्रिय अग्नि में समाहित हो जाती है, मुख्यप्राण वायु में, तथा आंग्र सूर्य में मिल जाती है। संशय होता है कि जब इन्द्रियां इस तरह से अभिमानी देवता में समाहित हो जाती हैं तब जीव के साथ कैसे जायेंगी। सूत्रकार ने बताया है कि केवल शाब्दिक अर्थ नहीं लेकर पूरा प्रसंग समझने की आवश्यकता है। जैसे उसी उपनिषद में आगे उल्लेख है कि केश वृक्ष एवं लता में मिल जाते हैं परंतु वास्तविकता में मृत शरीर पर केश तो वर्तमान रहता है।

पूर्वपक्षी विरोध करते हैं कि स्वर्ग में पहला हवन श्रद्धा का होता है तब कैसे तरल वीर्य के साथ सूक्ष्म भूत संक्रमित करते हैं। सूत्रकार ने बताया कि यह पूर्व में सिद्ध हो चुका है कि श्रद्धा तरल पदार्थ है।

पूर्वपक्षी पुनः कहते हैं कि संदर्भित उपनिषद में जीव का उल्लेख नहीं है इसलिये सूक्ष्मभूत का जीव के साथ होना अप्रासंगिक है। सूत्रकार ने आगे के प्रसंग में यज्ञ से स्वर्ग जानेवाले इष्टाधिकारी का उल्लेख बताकर यह स्पष्ट किया है कि यह जीव का पर्याय है। स्वर्ग में इष्टाधिकारी को जो सुन्दर शरीर मिलता है उसे सोमराज कहा जाता है जो प्रथम अग्नि 'स्वर्ग' में श्रद्धा की आहुति से मिलता है। स्वर्ग से प्रत्यावर्तन में यही श्रद्धा वीर्य के रूप में मां के गर्भ में प्रवेश करता है। अतः सूक्ष्मभूत का साथ होने में कोई सन्देह नहीं है।

पूर्वपक्षी का दूसरा विरोध है कि जीव देवता के भोज्य पदार्थ हैं तब तो सोमराज कोई अन्य है वह जीव नहीं हो सकता। सूत्रकार ने भोज्य का विल्लकुल शाब्दिक अर्थ ने लेकर एक वृहत प्रसंग में मनोरंजन का साधन लिया है। जीव भी देव के रूप में हो जाता है तथा देवों का सहायक हो जाता है। अतः जीव सूक्ष्मभूत के साथ स्वर्ग जाता है।

70 | कृतात्यय अधिकरण 4 सूत्र 3 | 1 | 8 से 3 | 1 | 11 तक अधि 3 | 1 | 2

पहले पाद के दूसरे अधिकरण में 4 सूत्र हैं। यहां का विषयवस्तु है 'जीव स्वर्ग से लौटता है तब क्या उसके पुण्य पाप का हिसाब किताब पूरा होकर शून्य पर आ जाता है?' पूर्वपक्षी उपनिषद के उद्धरण से यह बताते हैं कि स्वर्ग से लौटना पुण्य का शून्य हो जाना है। अतः जीव कर्म शून्य की स्थिति में स्वर्ग से लौटता है।

सूत्र 3 | 1 | 8 'कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च' का तात्पर्य है कि स्वर्ग से जीव अन्य मार्ग से लौटता है तथा इसके साथ कर्म का शेष रहता है। जिन्होंने पुण्य किया था वे प्रोन्नति पाकर ऊंचे दीर्घा के मानव समुदाय यानी श्रेष्ठ जाति में जन्म लेते हैं जिसे रमणीया चरण कहते हैं। जो पापकर्म लिप्त थे वे अधम कुल या पशु की श्रेणी में आते हैं और इसे कपूय चरण कहते हैं। चरण का शाब्दिक अर्थ कर्म से है। स्वर्ग जाते समय का मार्ग धूमादि कहा जाता है यानी यह पितृ मार्ग है। इस मार्ग की गति है : धूम, रात्रि, अपरापक्षम यानी कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक, आकाश, चंद्रमा एवं स्वर्ग। प्रत्यावर्तन के समय का मार्ग है : चन्द्र, आकाश, वायु, धूम, अभ्रम, मेघ। अन्तर है पितृलोक एवं वायुलोक का। स्वर्ग जाते समय पितृलोक से जाता है तो आते समय वायुलोक से पृथ्वी पर लौटता है। मार्ग के ये सभी नाम एक लोक विशेष तथा उसके अधिष्ठान देवता का है। अपनी सीमा में वे जीव को संरक्षण देकर दूसरी सीमा तक ले जाते हैं।

सूत्रकार के उपर्युक्त वचन का विरोध करते हुए पूर्वपक्षी कहते हैं कि चरण का अर्थ शुभकृत्य है जो आचार है तथा उसका पर्याय शील और वृत्तम है। तैत्तिरीय उपनिषद में दोषमुक्त शुभ कृत्यों के संपादन का उल्लेख है।

इस संदर्भ में बादरायण मुनि के दो शिष्य **कार्षणाजिनि एवं बादरि** का उल्लेख आता है। कार्षणाजिनि कहते हैं कि शुभ कृत्य ही श्रेष्ठ कुल में पुनर्जन्म कराता है न कि उसका अनुशय। पुण्य पाप का भोग्य शेष अनुशय कहा जाता है।

इस सम्बंध हर दिन किये जाने वाले कृत्य का एक विहंगम अवलोकन श्रेयष्कर होगा। यह दो तरह का है : नित्य कर्मानुष्ठान तथा नैमित्तिक कर्मानुष्ठान।

नित्यकर्मानुष्ठान में : 1। स्नान के लिये संकल्प। आचमन एवं प्राणायाम के बाद यह संकल्प होता है। 2। स्नान के बाद धोती धारण करना है। विवाहित को धोती के नीचे कच्छा आवश्यक है क्योंकि कच्छा के बिना वैदिक कृत्य संध्यावंदन आदि वर्जित है। अविवाहित के लिये कच्छा की छूट है। 3। जिसका पंचसंस्कार हो गया है वे 12 उर्ध्वपुण्ड्र धारण करें नहीं तो ललाट का एक ही पर्याप्त है। 4। देवर्षि तर्पण। 5। कम से कम 10 बार गायत्री जप के साथ प्रातः संध्यावंदन। 6। पंचसंस्कार वाले के लिये अष्टाक्षर मंत्र का जाप। 7। आधार शक्ति तर्पण। 8। देवर्षि कन्दर्षि तर्पण। 9। ब्रह्म यज्ञ। 10। कम से कम 10 बार गायत्री जप के साथ मध्याह्निकम। 11। शालग्राम मूर्ति का तिरुवर्द्धन के बाद **विश्वदेव एवं पंचमः** यज्ञ। 12। संध्या में कम से कम 10 बार गायत्री के साथ विश्वदेव।

वैदिक कर्म में दिन में तीन बार सन्ध्यावंदन आवश्यक है। बिना सन्ध्यावंदन के कोई ब्राह्मण या श्रीवैष्णव को वैदिक कर्म करने की अनुमति नहीं है।

नैमित्तिक कर्मानुष्ठान : यह विशेष उद्देश्य से विशेष अवसर पर संपादित किया जाता है। 1। श्रावण पूर्णिमा को उपकर्म। 2। उपकर्म के दूसरे दिन गायत्री जप। 3। श्रीजयन्ति, श्रीरामनवमी, श्रीनृसिंह जयन्ति, तथा तिरुक्कार्तिकै के दिन विशेष पूजा। 4। माता पिता का संसार छोड़ने के बाद उनकी पुण्य स्मृति में तर्पण : अमावस्या, सूर्य का राशि संक्रमण, महालया, कुंभ माह यानी मासी माघ माह में अष्टक एवं अन्वष्टक, सूर्य एवं चंद्र ग्रहण।

उपर्युक्त कृत्य को आचार कहते हैं एवं बिना आचार के वेद व्यक्ति को शुद्ध नहीं करता। कार्षणाजिनि मुनि का मत है कि रमणीय चरण में उपर्युक्त नित्य एवं नैमित्तिक कृत्य ही आचार कहे गये हैं। यज्ञ को पुण्य कर्म कहते हैं तथा उसका संपादन उपर्युक्त आचार से होता है। कपूय चरण आचार का उल्लंघन है। पाप से दुःख मिलता है तथा पुण्य से सुख मिलता है।

पूर्वपक्षी का मत है कि जीव को लाभ नहीं देने वाला आचार निरर्थक है। कार्षणाजिनि मुनि इसका निराकरण करते हुए कहते हैं कि आचार से ही पुण्य कर्म की योग्यता मिलती है।

बादरिमुनि कहते हैं कि रमणीय चरण एवं कपूय चरण पुण्य तथा पाप कृत्य हैं। जीव का पृथ्वी पर प्रत्यावर्तन पुण्य पाप के शेष के कारण होता है। संध्या वंदन अत्यंत आवश्यक है तथा इसमें कोई छूट नहीं है।

71। अनिष्टादिकार्यधिकरण 10 सूत्र 3।1।12 से 3।1।21 तक अधि 3।1।3

पहले पाद के तीसरे अधिकरण में 10 सूत्र हैं। जगत में तीन तरह के व्यक्ति हैं : 1। **इष्टाधिकारी** जो पुण्य कार्य करते हैं। पुण्य कृत्य यज्ञ, एवं नित्य तथा नैमित्तिक कर्मानुष्ठान को कहते हैं। भगवद रामानुज शरणागति गद्य में

पांच तरह का पाप कर्म बताये हैं : क। 'अकृत्य करण' यानी निषेध को करना। ख। 'कृत्य अकरण' यानी विधि तथा धर्म संगत कार्य को न करना। ग। 'भगवद अपचार' यानी भगवान श्रीमन्नारायण को सम्मान नहीं देना। घ। 'भागवत अपचार' यानी भगवान के भक्तों को सम्मान नहीं देना। ङ। 'असह्य अपचार' यानी पापपूर्ण कर्म। इष्टाधिकारी वही हैं जो उपर्युक्त सम्मत कृत्य करते हैं। ये लोग धूमादि गति से स्वर्ग प्राप्त करते हैं। 2। अनिष्टाधिकारी यानी वे जो भगवद रामानुज द्वारा बताये उपर्युक्त पांच पाप कर्म में लिप्त रहते हैं। वे कष्ट मार्ग से नरक के अधिकारी होते हैं। 3। मोक्षाधिकारी अर्थात् जो सांसारिक तथा स्वर्ग के सुख को तुच्छ समझते हुए श्रीमन्नारायण के दिव्यचरणों का आश्रय लेते हैं वे देवयान यानी अर्चिरादि गति से दिव्यलोक वैकुण्ठ जाते हैं।

इस अधिकरण का यह विषय वस्तु है कि क्या नरक जाने वाला भी चंद्रलोक होकर जाता है। पूर्वपक्षी कौषीतकि उपनिषद के संदर्भ से बताते हैं कि नरक जाने वाला भी चंद्रलोक जाकर वहां संभाषण करता है। इस वाक्य से यह प्रतीत होता है कि तीनों मार्ग के जीव चंद्रलोक होकर जाते हैं। यह एक बहुत ही सामान्य वाक्य है। इस अधिकरण के 10 सूत्र में से प्रथम पांच सूत्र पूर्वपक्षी के हैं तथा बाद के पांच सूत्र सिद्धान्त के हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि अनिष्टाधिकारी भी चंद्रलोक जाते हैं।

सूत्र 3।1।12 'अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम्' अर्थात् जब संसार से लोग पयान करते हैं तो ऐसा कौषीतकि उपनिषद में सुनते हैं कि वे चंद्र लोक से होकर जाते हैं। यहां अनिष्टाधिकारी भी पहुंचता है। दूसरे सूत्र 3।1।13 से सूत्रकार कहते हैं कि अनिष्टाधिकारी यमलोक से यातना भोगने के पश्चात् इष्टाधिकारी की तरह चंद्रलोक के रास्ते जाता है। सूत्र 3।1।14 में विष्णु पुराण का संदर्भ देकर कहा गया है कि इस संसार को छोड़ने वाले सभी यम के अधीन हैं। सूत्र 3।1।15 में पाप कर्मरत व्यक्ति को सात तरह के नरक में जाने का उल्लेख है। हालांकि विष्णुपुराण में अट्ठाईस तरह के नरक का वर्णन है। सूत्र 3।1।16 में उल्लेख है कि सभी नरक यम के अधीन हैं एवं पापी को यमसदन के रास्ते यम के न्याय से ही नरक में जाना पड़ता है।

बाद के पांच सूत्र में सूत्रकार विपक्ष के इस मत का खंडन करते हैं कि पापी यम यातना भोगने के पश्चात् चंद्रलोक आता है तथा इसके अतिरिक्त अन्य विशेष ज्ञान भी यहां का विषय वस्तु है।

सूत्र 3।1।17 'विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात्' में यह बताया गया है कि मोक्षाधिकारी एवं इष्टाधिकारी ही केवल चंद्रलोक जाते हैं। यहां 'तु' शब्द से पूर्वपक्ष को निरस्त किया गया है। ब्रह्मसूत्र की भाषा व्याकरण में जहां कहीं भी 'तु' शब्द आता है वह पूर्वपक्ष के मत को नकारने का सूचक है। सूत्र का 'विद्या' शब्द ब्रह्मविद्या के लिये प्रयोग में लाया गया है जो भक्तियोग का पर्याय है। शरणागत एवं प्रपत्ति वाले के लिये भी न्यासविद्या शब्द का प्रयोग होता है। 'कर्म' शब्द यहां इष्टाधिकारी के लिये आया है। छान्दोग्य में राजा प्रवाहण बताते हैं कि देवयान वाले चंद्रलोक जाकर चंद्रदेव से संभाषण करते हैं। इसीतरह से धूमयान वाले चंद्रलोक में आकर चंद्रदेव से संभाषण करने के पश्चात् स्वर्ग में जाते हैं। देवयान का मार्ग अग्निलोक से प्रारंभ होकर चंद्रलोक से होकर जाता है तथा धूमयान वाले धूमलोक से प्रारंभ कर चंद्रलोक से होकर जाते हैं। अर्थात् चंद्रलोक दोनों रास्ते के

लिये मिलन स्थल है। यहां के बाद दोनों मार्ग अलग हो जाते हैं। एक वैकुण्ठ जाता है तो दूसरा स्वर्ग को जाता है।

एक और बात ध्यान देने का है कि वैकुण्ठ, स्वर्ग, तथा चंद्रलोक भूलोक के ऊपर है एवं नरकलोक भूलोक के नीचे है। अतः अनिष्टाधिकारी का चंद्रलोक होकर जाना युक्तिसंगत नहीं है।

पूर्वपक्षी का प्रश्न है कि जब पाप कर्मी चंद्रलोक नहीं जाते तो कैसे वे मां के गर्भ में प्रवेश कर पुनर्जन्म लेते हैं। सूत्र 3 | 1 | 18 'न तृतीये तथोपलब्धे' से यह स्पष्ट है कि मोक्षाधिकारी तथा इष्टाधिकारी को छोड़कर तीसरे को यह अवसर उपलब्ध नहीं है। पिता के वीर्य से गर्भ के द्वारा पुनर्जन्म को पंचम आहुति कहते हैं। पूर्वोक्त राजा के प्रश्न में इसका उल्लेख है कि जीव कैसे पंचमआहुति से माता के गर्भ में शरीर प्राप्त करता है।

अनिष्टाधिकारी जीव नरक से लौटने पर माता के गर्भ में पंचम आहुति से नहीं जाता बल्कि वह सीधे कीड़ा मकोड़ा में जन्म लेकर जल्दी जल्दी जन्मता एवं मरता है। इनका मानव जन्म तब होता है जब ये कभी पूर्व के अनेकों जन्म से किसी में पुण्य कार्य किये हों जो केवल श्रीमन्नारायण की कृपा से ही यह संभव होता है। राजा ने आगे बताया कि इसीलिये स्वर्ग भरता नहीं है क्योंकि पापकर्मी सीधे कीड़ा आदि बनते हैं तथा अन्य पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर प्रत्यावर्तित हो जाते हैं। श्वेतकेतु के पिता का दूसरा नाम गौतम भी है।

सूत्र 3 | 1 | 19 'स्मर्यतेऽपि च लोके' कहता है कि विशेष पुण्य करने वाले पंचमाहुति से जन्म न लेकर द्रौपदी की तरह सीधे यज्ञ की अग्नि से प्रकट होते हैं। आगे के सूत्र से सूत्रकार ने बताया है कि इस जगत में तीन तरह के जीव का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य विभेद से चार तरह के जीव का भी उल्लेख है। 1। जीवजं या जरायुजं वे हैं जो पुरुष एवं नारी के संयोग से पंचमाहुति से जन्म लेने वाले हैं। जैसे : मानव, पशु आदि। 2। अण्डजं वे हैं जो पंचमाहुति के बाद अंडा से जन्म लेते हैं। जैसे पक्षी सांप आदि। 3। स्वेदज् वे कीड़े मकोड़े हैं जो बिना पंचाहुति के जन्म लेते हैं। जैसे भात को हवा या सूर्य प्रकाश से अलग कर देने पर उसमें कीड़े प्रकट हो जाते हैं। 4। उदभिज्ज बिना पंचाहुति के जन्म लेते हैं। इस श्रेणी में वृक्षादि हैं जो बीज को भूमि में डालने से उत्पन्न होते हैं।

अतः पाप कर्म वाले चंद्रलोक नहीं जाते।

72 | तत्स्वाभाव्यापत्त्यधिकरण 1 सूत्र 3 | 1 | 22 अधि 3 | 1 | 4

पहले पाद का यह चौथा अधिकरण 1 सूत्र का है। इसमें यह प्रतिपादित है कि इष्टाधिकारी जीव पुण्य पाप के शेष रहने पर पृथ्वी पर चंद्रलोक के रास्ते लौटते हैं। उल्लेख है कि लौटते समय ये चंद्र, आकाश, वायु, धूम, अभ्रम, तथा मेघ के रास्ते वर्षा के माध्यम से पृथ्वी पर आते हैं। जल से भरे बादल को अभ्रम कहते हैं तथा मेघ वह बादल है जो जल बरसाता है। यहां संशय है कि क्या जीव इन मार्गों के केवल संसर्ग से होकर आता है या वहां ठहर कर स्वर्ग के सोमभाव या पृथ्वी के मानवभाव की तरह कुछ आनंद भी लेता है। सूत्र 3 | 1 | 22 'तत्स्वाभाव्यात्तिरूपपत्तेः' बताता है कि जीव उन स्थानों के सदृश हो जाता है न कि वहां स्वर्ग के सोमभाव या संसार के मनुष्यभाव की तरह कोई आनन्द लेता है।

73 | नातिचिराधिकरण 1 सूत्र 3|1|23 अधि 3|1|5

पहले पाद के पाचवें अधिकरण में 1 सूत्र है। संशय होता है कि जीव लौटने वाला मार्ग के स्थान आकाश आदि में कितनी अवधि तक रहता है। सूत्र 3|1|23 'नातिचिरेण विशेषात्' से स्पष्ट है कि शीघ्र वह उक्त स्थानों को छोड़ते पृथ्वी पर अन्न के रूप में चला आता है। उपनिषद का उल्लेख है कि अन्न से पुरुष के वीर्य में प्रवेश वाली प्रक्रिया दुरुह है।

74 | अन्याधिष्ठित अधिकरण 4 सूत्र 3|1|24 से 3|1|26 तक अधि 3|1|6

पहले पाद का अंतिम या छठे अधिकरण में 4 सूत्र हैं। इसमें विवेचन का विषय वस्तु है कि जीव अन्न के शरीर में संसर्ग मात्र रहता है या आनंद के लिये स्थित होता है। उपनिषद के उल्लेख से यह भान होता है कि जीव अन्न के शरीर में जन्म लेता है। 'जन्म' शब्द से संशय हो जाता है कि क्या जीव यहां मात्र संसर्ग में न रहकर एक शरीर की तरह आनन्द या दुःख से ग्रस्त होता है। सूत्र 3|1|24 'अन्याधिष्ठते पूर्ववदभिलापात्' से यह स्पष्ट होता है कि अन्न के शरीर में दुःख भोगने के लिये कोई अन्य जीव वर्तमान रहता है। स्वर्ग से लौटने वाला जीव इसके संसर्गमात्र में आता है और एक माध्यम के रूप में इसका उपयोग करता है। पंचाहुति से जन्म लेने के लिये पुण्य पाप के शेष अनुशय के कारण पृथ्वी पर लौटने वाला जीव धान के पौधे में मार्ग के अन्य स्थान आकाश अभ्रम आदि की तरह संसर्ग से क्षणिक काल के लिये रहता है। ऊच्च कुल में जन्म लेने के लिये लौटने वाला जीव अन्न का पौधा नहीं बनता मात्र उसके संसर्ग में रहता है।

पूर्वपक्षी विरोध करते हैं। पापी जीव जो यज्ञ में देव को प्रसन्न करने के लिये पशु की हत्या करता है वही अन्न का पौधा बनकर आता है। यद्यपि यज्ञ में पशु की बलि की बात वेद में है परंतु जीव हत्या पाप है। अतः स्वर्ग का आनन्द भोगने के बाद पाप कर्म के कारण धान के पौधे के शरीर में दुःख भोगता है। सूत्र 3|1|25 'अशुद्धमिति चेत् नशब्दात्' का 'अशुद्धमिति चेत्' को पूर्वपक्षी कहते हैं कि जीव हत्या पाप है। 'नशब्दात्' से सूत्रकार कहते हैं कि पशु की बलि पाप कार्य नहीं है क्योंकि बलि का पशु यज्ञ में समर्पण के पश्चात् स्वर्ग जाता है।

पिता के भोजन के अन्न में प्रवेश कर जीव माता के गर्भ में स्थापित होता है तथा पुनः संसार में शरीर प्राप्त करता है।

तालिका 12 : तीसरे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (27 सूत्र, 6 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण के कमांक ²⁸
69 तदन्तरप्रतिपति अधिकरण	3 1 1 से 3 1 7 तक	7	3 1 1
70 कृतात्यय अधिकरण	3 1 8 से 3 1 11 तक	2	3 1 2
71 अनिष्टादिकार्यधिकरण	3 1 12 से 3 1 21 तक	10	3 1 3
72 तत्स्वाभाव्यापत्यधिकरण 1	3 1 22	1	3 1 4

²⁸ 3|1|1 यानी अध्याय 3 पाद 1 अधिकरण 1

सूत्र			
73 नातिचिराधिकरण	3 1 23	1	3 1 5
74 अन्याधिष्ठित अधिकरण	3 1 24 से 3 1 26 तक	4	3 1 6

तीसरे अध्याय का दूसरा पाद

(साधना अध्याय, उभयलिङ्ग पाद, 40 सूत्र, 8 अधिकरण)

साधना अध्याय के इस उभयलिङ्ग पाद में श्रीमन्नारायण के दो महत्वपूर्ण पक्ष का ज्ञान सन्निहित है। पहला पक्ष है कि आप निर्मल हैं जो हेयप्रत्यनीकत्वम कहा जाता है। दूसरा पक्ष आपका कल्याणगुण कोषत्वम है जिसे 'अख्यकल्याण गुण महोदधि' कहते हैं। इन्हीं गुणपक्षों के कारण श्रीमन्नारायण अन्य देवाताओं चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि से श्रेष्ठ हैं। दूसरे देव देवतान्तर हैं तो श्रीमन्नारायण परदेवता हैं। आपको छोड़कर अन्य सभी देव चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, आदि पुण्य एवं पाप के भागी होते हैं एवं अमंगल आदि दोष से युक्त हैं। दिव्यप्रबंधम में तिरुमल्लिसै आळवार शपथ पूर्वक कहते हैं कि उक्त अमंगल देवगन 'एच्चिळ देवार्गळ' एवं 'तिरुइल्ला देवार्गळ' हैं। उक्त तमिल शब्द 'एच्चिळ' का अर्थ है जो वमन से निकला हो। श्रीमन्नारायण प्रलयकाल में समस्त जगत जिसमें देवलोक आदि सम्मिलित हैं को निगल जाते हैं। सृष्टि के समय पुनः सबको मुंह से वमन कर बाहर निकाल देते हैं तथा इसमें देवगन चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, आदि भी हैं। इसीलिये चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, आदि को वमन से सृजित यानी 'एच्चिळ' देवता कहते हैं। श्रीमन्नारायण के साथ 'तिरु' यानी लक्ष्मी सदा वास करती हैं जबकि अन्य देवगन लक्ष्मी विहीन हैं इसलिये अन्य देवगन 'तिरु इल्ला' यानी जहां लक्ष्मी न हों कहे जाते हैं। तमिल शब्द 'इल्ल' का अर्थ है 'नहीं'। ये सभी तमिल शब्द हैं।

अतः यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि जो मोक्ष के आकांक्षी हैं वे देवतान्तरों की उपासना न करें क्योंकि इनके द्वारा प्रदत्त फल सीमित होता है। श्रीमन्नारायण ही मोक्ष देकर दिव्यलोक वैकुण्ठ में सदा के लिये अनन्त आनन्द प्रदान करते हैं तथा जीव को लक्ष्मीसमेतनारायण का कैकर्य करने का अवसर प्राप्त होता है। वैकुण्ठ में स्थित होकर श्रीमन्नारायण की इस तरह की सेवा के अवसर को 'सर्वदेश सर्वकाल उचित सर्वविध कैकर्य' कहा जाता है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि संसारी जीव चार अवस्थाओं जाग्रत, सुषुप्त, स्वप्न, तथा मूर्छा के दोष से ग्रस्त रहते हैं। श्रीमन्नारायण इन चारों अवस्थाओं में जीव की रक्षा करते हैं। इस अध्याय के प्रथम पाद यानी वैराग्य पाद में जाग्रत अवस्था के दोष का विवेचन किया गया। इस दूसरे पाद में बाकी तीन अवस्थाओं के दोष को बताया गया है।

75 | सन्ध्याधिकरण 6 सूत्र 3|2|1 से 3|2|6 तक अधि 3|2|1

दूसरे पाद के पहले अधिकरण में 6 सूत्र हैं जिसका विषय वस्तु 'स्वप्नावस्था' है। यह अवस्था जाग्रत तथा गाढ़ी निद्रा के बीच की अवस्था है। इसका विवेचन याज्ञवल्क्य मुनि ने वृहदारण्य उपनिषद में किया है। मुनिप्रवर ने कहा है कि स्वप्न में न तो रथ रहता है न घोड़े रहते हैं और न मार्ग रहता है। परंतु स्वप्न में उनका सृजन हो जाता है। उसी तरह से स्वप्न में हर्ष एवं प्रसन्नता वर्तमान नहीं रहते परंतु उनका सृजन हो जाता है। याज्ञवल्क्य मुनि आगे कहते हैं कि न तो सरोवर रहता है और न कमल रहते हैं परंतु उनका सृजन हो जाता है। वह इनका सृजन करता है। यहां संशय है कि 'वह' कौन है जीव या परमात्मा। इसी तरह का उल्लेख कठोपनिषद में है कि स्वप्न में सबकुछ सृजित कर दिया जाता है। यहां भी सृजन कौन करता है, जीव या परमात्मा, का संशय है।

पूर्वपक्षी कहते हैं कि आनन्द के लिये स्वप्न में जीव ही वस्तुओं का सृजन करता है जिसका तात्पर्य इस अधिकरण के पहले दो सूत्र में समाहित है : सूत्र 3।2।1 'संध्येसृष्टिराह हि' तथा सूत्र 3।2।2 'निर्मातारं चैके पुत्रदयश्च' । पहला सूत्र का अर्थ है कि संध्या यानी स्वप्न में जीव ही वस्तुओं का सृजन करता है। दूसरे सूत्र में इसकी सम्पुष्टि हो जाती है कि कठोपनिषद के अनुसार जीव ही स्वप्न में पुत्रादि का भी सृजन कर लेता है। यहां भी यही संशय होता है कि सृजनकर्ता जीव है या परमात्मा। बाद के चार सूत्र सिद्धान्त सूत्र हैं तथा इनसे यह सिद्ध किया गया है कि जीव के पुण्य पाप के शेष के आधार पर परमात्मा ही स्वप्न में वस्तुओं का सृजन करते हैं। सूत्र 3।2।3 'मायामात्रं तु कात्स्न्यनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्' से पूर्वपक्षी को नकार दिया गया है। 'मायामात्रं' का तात्पर्य है कि स्वप्न के वस्तु चमत्कारी होते हैं। 'कात्स्न्यनानभिव्यक्त' का अर्थ है कि यद्यपि जीव सत्यसंकल्प है फिर भी वह वस्तुओं के सृजन में सक्षम नहीं है क्योंकि संसार में रहते हुए उसकी चमत्कारिक शक्ति का उदय नहीं होता। अतः यह परमात्मा का खेल है एवं कठोपनिषद भी परमात्मा को ही बताता है। अब संशय है कि जब सत्य संकल्प शक्ति से जीव संपन्न है तब संसार के जीवन काल में उसे इसका लाभ क्यों नहीं मिलता। समाधान सूत्र बताता है कि परमात्मा की इच्छा से यह गुण बद्ध जीव में शिथिल रहता है क्योंकि जीव पुण्य पाप से ग्रस्त रहता है। कर्मवश जीव संसार में रहता है परंतु कर्म का फल परमात्मा की कृपा से मिलता है। जब जीव भक्ति या प्रपत्ति से परमात्मा में समर्पित हो जाता है तो जीव को परमात्मा मोक्ष यानी परमआनन्द का पात्र बनाते हैं।

इस संदर्भ में भगवद रामानुज तैत्तिरीय उपनिषद से उद्धरण देते हैं। जीव जब नश्वर शरीर में प्रवेश करता है उसी समय उसका सत्य संकल्प शिथिल हो जाता है। प्रलय काल में वह परमाणु के आकार का हो जाता है। सूत्र 3।2।5 'देहयोगद्वा सोऽपि' इसी की अभिव्यक्ति है। सूत्र 3।2।6 से यह ज्ञात होता है कि जीव अच्छे एवं बुरे स्वप्न देखता है। अच्छा स्वप्न शुभ सूचक है तथा बुरा स्वप्न अशुभ सूचक है। अच्छे एवं बुरे सपने के वस्तुओं का सृजन परमात्मा करते हैं जो जीव के पुण्य एवं पाप कर्म के अनुशय पर आधारित है। जीव के पुण्य एवं पाप के पहले हिस्से का फल जाग्रत अवस्था में मिलता है। कर्म दूसरे हिस्से का फल स्वप्न में मिलता है। कर्म के तीसरे हिस्से का फल स्वर्ग में मिलता है। पुण्य के विशेष हिस्से से स्वर्ग तथा पाप के विशेष हिस्से से नरक मिलता है। बाकी पुण्य एवं पाप के हिस्से से जीव पुनः जन्म लेता है तथा नये शरीर में नये सिरे से पुण्य एवं पाप अर्जित करता है। इस तरह से पुर्नजन्म की आवृत्ति तबतक चलती रहती है जबतक वह मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता।

76 | तदभावाधिकरण 2 सूत्र 3।2।7 से 3।2।8 तक अधि 3।2।2

दूसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। तीन उपनिषद के उद्धरण से यहां जीव की गाढ़ी निद्रा का विवेचन किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद का आठवां अध्याय कहता है कि जीव की गाढ़ी निद्रा हृदय की मुख्य नाड़ी में होती है। बृहदारण्य का चौथा अध्याय कहता है कि निद्रा हृदय के पुरीतत में होता है जो हृदय में लाल मांस का भाग है। इसी पुरीतत में हित नाम की 72000 नाड़ियां आकर मिलती हैं। छान्दोग्य उपनिषद का छठा अध्याय में उल्लेख है कि जीव सत नाम से सम्बोधित परमात्मा के साथ जाकर सोता है। संशय होता है कि जीव की निद्रा

सुविधानुसार नाड़ी, पुरीतत, या परमात्मा में से किसी एक में होती है या सब में होती है। किसी एक में निद्रा होने को विकल्प कहते हैं तथा सबों में निद्रा होने को समुच्चय कहते हैं। पूर्वपक्षी केवल विकल्प का समर्थन करते हैं। उनका मत है कि तीनों एक दूसरे से स्वतंत्र हैं इसीलिये निद्रा सबों में न होकर किसी एक में होती है। सूत्र 3।2।7 'तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च' में 'तदभाव' गाढ़ी निद्रा में स्वप्न की अनुपस्थिति बताता है। 'नाडीषु आत्मनी च' के अनुसार निद्रा नाड़ी, पुरीतत, तथा परमात्मा में होता है। यहां 'च' पुरीतत का द्योतक है। क्योंकि 'तत्श्रुते' से यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त तीनों श्रुतियों का उद्धरण इसका समर्थन करता है। भगवद रामानुज ने इसे 'प्रासाद खट्वा पर्यङ्क' के समान कहा है। प्रासाद का अर्थ महल, खट्वा शयन करने वाली खटिया, तथा पर्यङ्क का अर्थ विछावन है। यहां नाड़ी महल है, तथा पुरीतत खटिया है, एवं विछावन परमात्मा हैं। अर्थात् जीव नाड़ी की महल में पुरीतत की खटिया पर विछे परमात्मा के विछावन पर गाढ़ी नींद सोता है। अतः विपक्ष के 'विकल्प' का खंडन करके 'समुच्चय' का समर्थन किया गया है। सूत्र 3।2।8 'अतः प्रबोधोऽस्मात्' से यह स्पष्ट होता है कि परमात्मा में सोने के बाद जीव को परमात्मा ही जगाते हैं।

77। कर्मानुस्मृति शब्दविधि अधिकरण 1 सूत्र 3।2।9 अधि 3।2।3

दूसरे पाद का एक सूत्र वाला यह तीसरा अधिकरण है। यहां संशय प्रकट होता है कि जो व्यक्ति पिछली रात परमात्मा में सोया था क्या वही दूसरे दिन प्रातः जागता है या कोई दूसरा व्यक्ति। हालांकि यह मूढवत प्रश्न है परंतु पूर्वपक्षी का मत विचारने योग्य है। इनका कहना है कि जीव एवं परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है। जब निद्रा में जीव परमात्मा में सोता है तब तो उसे मोक्ष मिल गया। दूसरे दिन जो व्यक्ति जागता है वह निश्चित ही अन्य व्यक्ति है। सूत्र 3।2।9 'स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः' में 'स एव' पिछली रात सोने वाले व्यक्ति को बताता है। अर्थात् वही व्यक्ति जागता है। इसके समर्थन में चार कारण का उल्लेख है जो इस सूत्र में एक एक कर उल्लिखित हैं। 1। 'कर्म' यानी पुण्य पाप कर्म के शेष का फल वही व्यक्ति भोगेगा जो पूर्व में शयन करने गया था। भगवद रामानुज कहते हैं 'तत्त्वज्ञानात् प्राक् तेनैव भोक्तव्यम्'। अर्थात् वही व्यक्ति प्रातः पुण्य पाप के शेष फल को भोगता है जो पिछली संध्या शयन में गया था। यह कम तब तक चलता है जबतक वह व्यक्ति भक्तियोग से ब्रह्म को जान नहीं लेता यानी मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता। प्रपत्ति लेने से परमात्मा उसके सारे कर्मों को शिथिल कर देते हैं एवं उसको सारे पाप से निवृत्त करा देते हैं। अनजाने अपराध को परमात्मा स्वयमेव क्षमा कर देते हैं। 2। 'अनुस्मृति' यानी पिछला स्मरण करना। जो शयन करने गया था वह जागने पर पहले की बात को स्मरण कर लेता है। 3। 'शब्द' यानी उपनिषद के वाक्य इसी का समर्थन करते हैं कि सोने वाला व्यक्ति ही जागने वाला है। छान्दोग्य उपनिषद में उल्लेख है कि बाघ, सिंह, सियार, सूकर, कीड़े मकोड़े, मकड़ी, मच्छर उसी स्वरूप में जागते हैं जिसमें सोये थे। अतः जो सोया था वही जीव जागता है। 4। 'विधिभ्यः' यानी निदेश। जब शयन में व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है तब शास्त्र के सारे भक्तियोग एवं प्रपत्ति के निदेश व्यर्थ हैं। शयन करने वाला व्यक्ति मुक्त नहीं हो जाता अतः मोक्ष का तर्क अनर्गल है।

78 | मुग्धाधिकरण 1 सूत्र 3 | 2 | 10 अधि 3 | 2 | 4

दूसरे पाद के एक सूत्र वाले चौथे अधिकरण में मूर्खावस्था का विवेचन है। संशय होता है कि मूर्खा गाढ़ी निद्रा का एक विभेद है या कोई अन्य अवस्था है। पूर्वपक्षी इसे सुषुप्ति यानी गाढ़ी निद्रा का एक पर्याय ही कहते हैं। सूत्र

3 | 2 | 10 'मुग्धेऽर्धसंपत्तिः परिशेषात्' में 'मुग्धे' मूर्खा वाला व्यक्ति है। 'अर्ध संपत्ति' आधी मृत्यु है।

'परिशेषात्' इन्द्रियों की संवेदनहीनता यानी जागरण की अनुपस्थिति। मानसिक क्रियाशीलता का न होना स्वप्न की अनुपस्थिति है। व्यक्ति को जगाया नहीं जा सकता इसलिये सुषुप्ति नहीं है। श्वास की गति बन्द नहीं हुई है इसलिये मृत्यु नहीं है। श्वास रहने के कारण इसे अर्द्धमृत्यु कहते हैं। अतः मूर्खा आधी मृत्यु है।

अतः संसार से रागहीन होकर वैराग्य को दृढ़ करने के उद्देश्य से इन चारो अधिकरणों में स्वप्न, सुषुप्ति, तथा मूर्खा का विवेचन किया गया है। वैराग्य से ही परमआनन्द मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्वप्न की वस्तु का सृजन, परमात्मा में ही सुषुप्ति में आश्रय, तथा मूर्खा में जीवित रखना ये तीन परमात्मा के कल्याण गुण हैं। पूर्व के पाद में, यानी अध्याय तीन के पहले पाद जो वैराग्य पाद कहा जाता है, जाग्रत अवस्था के दोष का विवेचन किया गया। इस तरह से चारो अवस्थाओं के दोष से अवगत होकर जीव संसार से राग मोह छोड़कर वैराग्य को दृढ़ करता है तथा मोक्ष प्राप्ति के योग्य होता है। भक्तियोग में प्रवेश के लिये वैराग्य आवश्यक है। मोक्ष के पूर्व दूसरी आवश्यकता है श्रीमन्नारायण के चरणारविन्द में अतिशय प्रेम।

अब संशय यह उत्पन्न होता है कि प्रपत्ति या शरणागति पाने वाले व्यक्ति के लिये पूर्ण वैराग्य आवश्यक है क्या। जब भक्तियोग करने में जीव अपने को असमर्थ पाता है तब प्रपत्ति का सहारा लेता है। इसे 'उपायान्तर शून्यत्व' कहते हैं। श्रीमन्नारायण के दिव्यचरणारविन्द की प्राप्ति की तुलना में दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इसको प्राप्यन्तर शून्यत्व कहते हैं। भक्तियोग के आठ अवयव हैं तथा प्रपत्ति के पांच अवयव हैं।

मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न के पूर्व जीव यह भली भांति समझ लेता है कि वह अतिश्रेष्ठ वस्तु की प्राप्ति करने के लिये आतुर है। यह अतिश्रेष्ठ वस्तु श्रीमन्नारायण ही हैं। अन्य देवता चतुर्मुख ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तो हम जीवों की तरह कर्मवस्य होकर पुण्य पाप के भागी होते हैं। अनेकों ब्रह्माण्ड के नायक एकमात्र स्वयं श्रीमन्नारायण हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के चतुर्मुख ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि पृथक पृथक हैं तथा एक ब्रह्माण्ड में सत्यलोक से लेकर पाताल तक 14 लोक हैं।

79 | उभयलिङ्ग अधिकरण 15 सूत्र 3 | 2 | 11 से 3 | 2 | 25 अधि 3 | 2 | 5

दूसरे पाद के पांचवें अधिकरण में 15 सूत्र हैं। भगवान के कल्याण गुण को दो भाग में रखे जाने के कारण इस पाद का नाम उभय लिङ्ग हुआ। उभय यानी दो और लिङ्ग यानी विभेद। कल्याण गुण के दो विभेद हैं:

1 | हेयप्रत्यनिकत्व यानी निर्मल। **2 |** कल्याणगुण कारत्व यानी अनंत कल्याणगुण कोष।

पूर्वपक्षी का मत है कि परमात्मा जब सबके भीतर अर्न्तयामी हैं तब तो जीव के सुख दुःख से वे बच नहीं सकते तथा उसके भागीदार या भोक्ता बनते हैं। अपहृत

अध्याय 1 पाद 3 के पाचवें अधिकरण यानी दहरा अधिकरण में परमात्मा को अपहृतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल कहा गया है। अर्न्तयामी बनने के कारण वे जीव के शरीर से काम करते हैं। अतः जीव के सुख दुःख के

अवश्य भागी होंगे। जब कोई व्यक्ति जाने अनजाने कीचड़ में गिर जाता है तो उसका शरीर गंदा हो जाता है एवं उसे साफ करने की आवश्यकता होती है। उसीतरह से परमात्मा का अर्न्तयामी स्वरूप उन्हें जीव की गन्दगी से लिप्त कर देता है। अतः यह उभयलिङ्ग परमात्मा को लागू नहीं होता।

सूत्र 3 | 2 | 11 'न स्थानतोऽपि परस्योभलिङ्ग सर्वत्र हि' का तात्पर्य है कि स्थान के दोष से मुक्त रहते हुए परमात्मा उभयलिङ्ग हैं।

श्रीमन्नारायण परमात्मा अपहतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल हैं। इस प्रसंग में विभिन्न उपनिषद के संदर्भ ध्यातव्य हैं। क। छान्दोग्य उपनिषद के आठवें अध्याय के अनुसार आप अपहतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल, विजर यानी बुद्धापा मुक्त, विमृत्यु यानी मृत्यु रहित, विशोक यानी शोक रहित, विजिघत्सा यानी भूखरहित, अपिपासा यानी प्यास रहित, सत्यकाम यानी सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, सत्यसंकल्प यानी सभी संकल्प को पूरा करने वाले हैं। उक्त 8 विशिषताओं में प्रथम 6 हेयप्रत्यनिकत्व यानी निर्मल के द्योत्तक हैं तथा अंतिम 2 कल्याणगुण कारत्व यानी अनंत कल्याणगुण कोष का ज्ञान कराते हैं। ख। विष्णु पुराण में उल्लेख है कि श्रीमन्नारायण अनंत गुण विभूषित हैं एवं अपनी अनन्त शक्ति से आपने जगत की रचना की। आप सभी कल्याण गुण के खजाना हैं। आप जीव की तरह दुःख सुख के भागी नहीं हैं। आपका दिव्यधाम वैकुण्ठ जैसे सभी दोष से मुक्त है वैसे ही आप भी सब दोष से मुक्त हैं।

इस अधिकरण के अन्य 14 सूत्रों का सारांश है : 1। पूर्वपक्षी ने उक्त छान्दोग्य के 8वें अध्याय से चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा इन्द्र को ब्रह्मविद्या प्रदान करने का संदर्भ देकर जीव को भी उपर्युक्त 'अपहतपाप्मा' आदि आठ गुणों से विभूषित बताया है परंतु जीव शरीर प्राप्त करने पर सुखदुःख का भोक्ता बन जाता है। यही बात परमात्मा के साथ भी लागू होता है। बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य मुनि के प्रसंग से सूत्रकार ने इस मत का खंडन किया है जिसमें मुनि ने परमात्मा को 21 वस्तुओं में अन्तर्यामी बनकर अमृत की तरह रहने की बात बतायी है। यहां अमृत का तात्पर्य है कि परमात्मा जीव के शरीर के दोष से मुक्त रहते हुए जीव पर नियंत्रण रखता है। बद्ध जीव के उक्त आठ गुण तबतक शिथिल रहते हैं जबतक वह बद्ध से मुक्त जीव नहीं बन जाता।

पूर्वपक्षी का अगला पक्ष है कि परमात्मा सब अपनी इच्छा से करते हैं परंतु गंदे या पापकर्मा के संसर्ग में रहकर वे अपने को उस गंदगी से मुक्त कैसे रख सकते हैं। भगवद रामानुज ने विष्णु पुराण से अनेकों दृष्टांत देकर यह सिद्ध किया है कि परमात्मा निर्मल हैं। किसी वस्तु में कोई दुर्गुण नहीं है बल्कि उसके उपयोग करने वाली की स्थिति पर गुण अवगुण निर्भर करता है। जैसे कोई व्यक्ति मीठा पदार्थ पसंद करता है जबकि अन्य इसे पसंद नहीं करते। एक का पुण्य पाप उसको उसी तरह से प्रेरित करता है जबकि दूसरे का पुण्य पाप उसे दूसरे तरह से प्रेरित करता है। एक समय में मीठा पदार्थ किसी को रुचिकर लगता है दूसरे समय में वह उसका तिरस्कार करता है। यह सब उसके सतत बदलते कर्म के कारण है। कर्म के दोष से परमात्मा सर्वथा मुक्त है इसलिये आप ही उभयलिङ्ग हैं। 2। मुण्डक एवं श्वेताश्वतर उपनिषद में एक दृष्टान्त का उल्लेख है। एक पेड़ के एक ही डाल पर दो पक्षी बैठे हैं। दोनों के कार्यकलाप भिन्न भिन्न हैं। शरीर रूपी वृक्ष की हृदय रूपी डाल पर आत्मा एवं परमात्मा दो पक्षी बैठे हैं। एक पुण्य पाप का फल खाता है दूसरा भूख से मुक्त शांत बैठा है। अतः परमात्मा

उभयलिङ्ग हैं। 3। जीव परमात्मा का शरीर है अतः जीव की आत्मा परमात्मा हुए। आप जीव के शरीर में जीव की आत्मा के साथ प्रवेश करते हैं एवं जीव के नाम रूप का निर्धारण करते हैं। अपने पुण्य पाप के अनुसार जीव चार तरह का शरीर प्राप्त करता है : देव, मनुष्य, तिर्यक यानी पशु पक्षी, एवं स्थावर यानी जड़ पदार्थ। संशय होता है कि परमात्मा जीवके अर्न्त्यामी हैं तो वे शास्त्र के विधिनिषेध से मुक्त नहीं रह सकते। विधि यानी करने योग्य कृत्य, एवं निषेध यानी जो कृत्य वर्जित है। इसका निराकरण है कि चूंकि परमात्मा रूप विहीन हैं तथा जीव के नाम रूप निर्धारण के नियामक हैं अतः वे विधिनिषेध से मुक्त रहकर उभयलिङ्ग हैं।

4। पूर्वपक्षी का मत है कि परमात्मा निर्विशेष हैं यानी गुण रहित हैं। उपनिषद कहता है कि 'सत्यम ज्ञानम अनन्तम ब्रह्म'। विपक्षी कहते हैं कि सत्यम का अर्थ असत्य नहीं। ज्ञानम का अर्थ है अज्ञानी नहीं। अनन्तम का अर्थ है सीमित नहीं। ब्रह्म स्वयं ही सत्यम ज्ञानम अनन्तम स्वरूप में है। विपक्षी अन्य उपनिषद के उद्धरण से ब्रह्म को 'नेति नेति' यानी 'यह नहीं यह नहीं' कहते हैं। तब ब्रह्म का सत्यकाम, सत्यसंकल्प, अर्न्त्यामी वगैरह होना ग्राह्य नहीं है। अतः परमात्मा उभयलिङ्ग नहीं हो सकते। विपक्षी के इस मत का खंडन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म का सत्यम उज्ज्वल स्वरूप न बताकर यह बताता है कि जड़ एवं बद्ध जीव की तरह आपका स्वरूप बदलते नहीं रहता। ज्ञानम का अर्थ धर्मभूत ज्ञान है जो ब्रह्म के उदाहरण में अपरिमेय है। अतः मुक्त जीव से सर्वथा भिन्न हैं जिसका मुक्तावस्था में भी धर्मभूत ज्ञान संसार की बद्धस्थिति की तरह सीमित ही रहता है। अनन्तम का तात्पर्य है कि समय, स्थान, एवं वस्तु की सीमा से परे हैं यानी इनसे बंधे हुए नहीं हैं। अतः आप नित्यसूरी से भी पृथक हैं। स्थान की सीमा से परे का अर्थ है कि आप सर्वत्र हैं। वस्तु की सीमा से परे हैं का तात्पर्य है कि आप अर्न्त्यामी होकर चेतन अचेतन सब में स्थित हैं। सभी वस्तु आपके शरीर हैं। यही चीज आपकी सर्वज्ञता पर भी लागू है। अतः आप उभयलिङ्ग हैं। 'नेति नेति' का प्रयोग यहां प्रासंगिक नहीं है। 5। गीता एवं पुराण में परमात्मा को अनेको जगह उभयलिङ्ग कहा गया है। गीता 10।3 'यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्'। गीता 10।42 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'। गीता 9।10 'मयाधक्षेण प्रकृतिः सूयते च सचराचरम्'। गीता 15।17 'उत्तमः पुरुषत्वन्मयः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्य व्यय ईश्वरः'। 6। आकाश एवं सूर्य का उदाहरण देकर सूत्रकार ने यह सिद्ध किया है कि जैसे आकाश सबको आच्छादित करते हुए किसी से लिप्त नहीं होता तथा दोषमुक्त रहता है उसीतरह ब्रह्म सबके भीतर अन्तर्यामी रहकर निर्मल रहता है। सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के सब स्तर में दिखता है या अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण दिखता है उसी तरह ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। 7। पूर्वपक्षी का मत है कि उपर्युक्त उदाहरण का प्रतिबिम्ब तो वास्तविक न होकर काल्पनिक है परंतु परमात्मा तो वास्तविक रूप में है अतः यह उदाहरण अप्रासंगिक है। सूत्रकार ने विपक्ष के मत को यह बताते हुए खंडन कर दिया है कि उदाहरण का उद्देश्य है कि जल या दर्पण का कोई भी आकार हो, छोटा से छोटा या बड़ा से बड़ा, उसमें प्रतिबिम्ब बनता है, उसीतरह परमात्मा प्रत्येक वस्तु में निर्मल बनकर स्थित रहता है। 8। बृहदारण्यक के चौथे अध्याय के तीसरे भाग में ब्रह्म को मूर्त एवं अमूर्त बताया गया है। मूर्त स्वरूप जल, पृथ्वी, तथा अग्नि के संयोग से बनता है जिसका उदाहरण सूर्य है। अमूर्त स्वरूप वायु एवं आकाश से बनता है जिसका उदाहरण सूर्य के केन्द्र में ज्योतिमय तड़ित की तरह ब्रह्म का

स्वरूप है जिसपर ध्यान करने से ध्यान करनेवाला भी ज्योतिमय हो जाता है। ब्रह्म स्वरूप लाल रंग के कमल का होता है और आप पीली धोती तथा पीला पीताम्बर धारण किये रहते हैं। आप तड़ित की तरह ज्योतिमय रहते हैं। इस उदाहरण का उद्देश्य मूर्त तथा अमूर्त को समझाना है परंतु उदाहरण के वस्तु की सीमा से ब्रह्म का स्वरूप सीमित नहीं होता। वह तो अनन्त आकार का है अति छोटा से छोटा एवं अति वृहत् से वृहत्। आप जड़ प्रकृति तथा चेतन जीव से बिल्कुल परे हैं। उपनिषद् सब कहने पर भी 'नेति नेति' कहता है। अद्वैत सिद्धान्त की तरह पूर्वपक्षी 'नेति नेति' का कुछ और ही अर्थ लगाते हैं। इनका मत है कि सब कहने के बाद नेति नेति का स्पष्ट तात्पर्य है कि ब्रह्म परिभाषित होने वाले गुण की सीमा में नहीं है अतः वह निर्विशेष यानी निर्गुण है। सूत्र 3 | 2 | 21 'प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः' से यह स्पष्ट है कि उपनिषद् का वाक्य सब कुछ को नकारते हुए यह कहता है कि ब्रह्म के गुण एवं स्वभाव की सीमा नहीं है तथा किसी वस्तु से वे परिभाषित नहीं हो सकते हैं। 9। प्रत्यक्ष या अनुमान पर आधारित उदाहरण से ब्रह्म साधारण आंखों से नहीं देखे जा सकते। उनकी अनुभूति शास्त्र से हो सकती है। वे तो केवल ध्यान की वस्तु हैं जिनका साक्षात्कार केवल भक्ति योग से अनुभव किया जा सकता है। वामदेव मुनि ने भक्ति से परमात्मा का भौतिक स्वरूप में साक्षात्कार किया है।

80 | अहिकुण्डल अधिकरण 4 सूत्र 3 | 2 | 26 से 3 | 2 | 29 तक अधि 3 | 2 | 6

दूसरे पाद के छठे अधिकरण में 4 सूत्र हैं जिसके पहले 2 सूत्र पूर्वपक्ष की शंङ्का का है तथा अंतिम 2 सूत्र सिद्धान्त का है। इस अधिकरण में जड़ एवं ब्रह्म के सच्चे सम्बंध का विवेचन है। जड़ और चेतन दोनों ब्रह्म के शरीर हैं। ब्रह्म सूक्ष्म परमाणु की तरह अन्तर्यामी होकर दोनों में निवास करते हैं। यद्यपि जीव चेतन है परंतु परमाणु की तरह सूक्ष्म है चाहे वह देव, मनुष्य, तिर्यक, या स्थावर शरीर में हो। सभी वस्तु ब्रह्म हैं तथा सभी वस्तु आत्मा हैं ऐसा उपनिषद् के उल्लेख में मिलता है। यहां आत्मा का तात्पर्य परमात्मा है। अभेद श्रुति कहती है कि ब्रह्म ही चेतन तथा जड़ हैं इनमें कोई भेद नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् ऐसा कहता है कि जीव के साथ परमात्मा ही उसके शरीर में प्रवेश करते हैं तथा उसकी पृथक् पहचान के लिये नाम रूप का निर्धारण करते हैं। जीव परमात्मा का शरीर है। इससे यह स्पष्ट है कि परमात्मा जीव से भिन्न हैं तथा जीव अपने जड़ शरीर से भिन्न है। इसी पृष्ठभूमि में पहला सूत्र 3 | 2 | 26 'उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्' का उल्लेख है। सृष्टि के पूर्व परमात्मा एक इकाई हैं जो सृष्टि के पश्चात् जड़ एवं चेतन दो इकाई में दृश्यमान होते हैं। इसे सृष्टि के पूर्व 'एक' कहते हैं तथा सृष्टि के पश्चात् 'नाना' कहते हैं। अतः ब्रह्म ही जड़ के विभिन्न स्वरूप में दृश्यमान होते हैं। दूसरे सूत्र 3 | 2 | 27 से ब्रह्म का सम्बंध स्पष्ट होता है कि जैसे दीपक एवं उसका प्रकाश भिन्न है उसी तरह परमात्मा एवं उनका दृश्यमान जड़ शरीर भिन्न है। पूर्वपक्षी का मत है कि पूर्व में उक्त बात के अनुसार कि 'ब्रह्म ही सबकुछ है' से यहां विरोधाभास प्रकट होता है। सूत्र 3 | 2 | 28 'पूर्ववद्वा' से यह स्पष्ट है कि दूसरे अध्याय के तीसरे पाद के अंशाधिकरण यहीं लागू होता है। 'पूर्व' यानी पहले का और 'वा' यानी पूर्व के दो सूत्रों का निरस्तीकरण। सूत्र 3 | 2 | 29 'प्रतिषेधाच्च' का तात्पर्य है कि परमात्मा में जीव के जड़ शरीर का जरावस्था प्राप्त करना तथा अन्य जड़ पदार्थ का क्षय होने वाली प्रक्रिया लागू नहीं होती। परमात्मा निर्मल हैं और अपने जड़

पदार्थ रूपी शरीर की आत्मा हैं। इस शरीर एवं आत्मा के सम्बंध को अंशअंशी भाव या **प्राकारप्राकारी** भाव भी कहते हैं। यहां अंश या **प्रकार विशेषण है तथा अंशी या प्राकारी** विशिष्य है। यह स्पष्ट है कि परमात्मा ही जगत के उपादान एवं निमित्त कारण हैं।

81 | पराधिकरण 7 सूत्र 3 | 2 | 30 से 3 | 2 | 36 तक अधि 3 | 2 | 7

दूसरे पाद के सातवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं। श्रीमन्नारायण ही सिद्धोपाय यानी सद्यः आश्रय हैं। यहां तत्काल शरणागत स्वीकार होता है। प्रपत्ति या शरणागत साधोपाय है तथा श्रीमन्नारायण सिद्धोपाय हैं। दिव्यलोक वैकुण्ठ के आप ही प्राप्य वस्तु हैं। आप प्राप्य एवं प्रापक दोनों हैं। प्राप्य को उपेय कहते हैं तथा प्रापक को उपाय कहते हैं। बिना साधोपाय यानी भक्ति के सिद्धोपाय यानी परमात्मा का प्राप्त हो जाने का तर्क सही नहीं है। अतः निर्हेतुक कृपा भी निरस्त हो जाता है। इस अधिकरण के सात सूत्र में से 1 सूत्र पूर्वपक्ष का है तथा बाकी सिद्धान्त सूत्र हैं। पहला सूत्र 3 | 2 | 30 'परमतः सेतून्मानसंबन्ध भेदव्यपदेशेभ्यः' में चार कारण के साथ किसी अन्य को श्रीमन्नारायण से श्रेष्ठ होने को नकार दिया गया है। 1। सेतु यानी पुल। भवसागर को पार करने के लिये परमात्मा ही सेतु हैं। एक किनारे से दूसरे किनारे तक बिना नदी के जल को स्पर्श किये पार करने का साधन ही सेतु है। नदी के दूसरे किनारे का लक्ष्य एवं साधन रूप सेतु दोनों पृथक हैं। जब परमात्मा सेतु हैं यानी प्रापक हैं तो सेतु पार करने के बाद का प्राप्य लक्ष्य परमात्मा से पृथक एवं श्रेष्ठ कोई दूसरी वस्तु है। 2। उन्मान का अर्थ है सीमित आकार। छान्दोग्य में परमात्मा के चार चरण तथा सोलह अवयव बताये गये हैं। जब परमात्मा का आकार अन्तहीन अनन्त है तो वह छान्दोग्य से परिभाषित सीमित आकार वाले परमात्मा से श्रेष्ठ है।

3। सम्बन्ध यानी जोड़ना। 'प्राप्य से जोड़ने वाला प्रापक के बीच आपस में सम्बन्ध है' का तात्पर्य है कि प्राप्य एवं प्रापक दो पृथक वस्तु है। 4। भेद का अर्थ है पृथकता। मुण्डक उपनिषद में यह उल्लेख है कि जीव जो मोक्ष प्राप्त करता है वह परमात्मा से श्रेष्ठ है। तैत्तिरीय में यह उल्लेख है कि जो परमात्मा से पृथक एवं श्रेष्ठ है वह सबसे बड़ा से भी बड़ा है। श्वेताश्वतर में एक प्रसंग है कि सर्वव्याप्त श्रीमन्नारायण से भी श्रेष्ठ जो हैं वे 'निर्मल' हैं। इस सूत्र का यह तात्पर्य प्रतीत होता है कि श्रीमन्नारायण से भी कोई अन्य श्रेष्ठ वस्तु या इकाई है।

परवर्ती छः सूत्र से सूत्रकार ने यह सिद्ध किया है कि प्रथम सूत्र मात्र पूर्वपक्षियों का संशय है। इसमें कोई तथ्य नहीं है एवं श्रीमन्नारायण से श्रेष्ठ कोई अन्य कहीं नहीं विराजमान है, न तो वैकुण्ठ में न अन्यत्र कहीं। पूर्वपक्ष के उपर्युक्त मत का खंडन करते हुए सूत्र 3 | 2 | 31 'सामान्यात्तु' का तात्पर्य है कि सेतु का यह अर्थ नहीं है संसार पार परमात्मा से पृथक एवं श्रेष्ठ किसी अन्य को प्राप्त करना है। समस्त जड़ एवं चेतन पदार्थ को बिना एक दूसरे से मिश्रित करते हुए परमात्मा अपने शरीर की तरह रखते हैं। इस प्रसंग में सेतु शब्द 'शिनोती' का अर्थ रखता है। 'शिनोती' का अर्थ जोड़ना भी है। 'पार करने' वाला अर्थ के बदले यहां अर्थ है 'प्राप्त करना'। जैसे परमात्मा अपने शरीर के अवयव जड़ एवं चेतन को मिश्रित नहीं करते उसीतरह चेतन जीव अपने जड़ शरीर में अपनी पृथकता को बनाये रखते हुए चेतन के स्वभाव में विराजमान रहता है।

- चेतन स्वभाव की विशेषतायें हैंः अणुत्व यानी परमाणु की तरह सूक्ष्म स्थिति, प्रत्यक्त्व यानी बिना किसी बाहरी सहायता के अपनी आत्मा को समझना तथा अपने स्वरूप एवं गुण में लीन रहना, धर्मभूत ज्ञान का

धारक होकर वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना, शुभ एवं अशुभ कर्मों का कर्ता, परमात्मा के अधीन रहना, श्रीमन्नारायण के चरणकमल में आचार्य की कृपा से मोक्ष हेतु शरणागत होना। उक्त गुणों का जड़ पदार्थ में अभाव है।

- परमात्मा को सीमित आकार का होने का उपनिषद में उल्लेख उन पर ध्यान करने की सुविधा के दृष्टिकोण से किया गया है।
- संशय उठता है कि असीम परमात्मा सीमित आकार के कैसे हो जायेंगे। समाधान में कहा गया है कि सीमित स्थान के अनुरूप परमात्मा अपना आकार भी सीमित कर लेते हैं। जैसे खिड़की से देखने पर आकाश सीमित आकार का दिखता है। इसी विशेषता को 'उपाधि' कहते हैं।
- उपनिषद में उल्लिखित 'अमृत' प्राप्ति का लक्ष्य है जो कि सेतु कहे जाने वाले परमात्मा से भिन्न कोई पृथक् श्रेष्ठ वस्तु है। सूत्र 3 | 2 | 34 'उपपत्तेश्च' का तात्पर्य है कि लक्ष्य को 'प्राप्य' कहना उचित है जिसे 'सेतु' भी कहा गया। युगलसरकार यानी श्रीमन्नारायण एवं लक्ष्मी में 'सिद्धोपायत्वम्' तथा 'उपेयत्वम्' समाहित है। लक्ष्मी के श्रीचरणों में की गयी प्रपत्ति को 'पुरुष्कार' कहते हैं। 'पुरुष्कार' का अर्थ है 'अनुशंसा'। मां लक्ष्मी की अनुशंसा पर ही श्रीमन्नारायण भक्त जीव की प्रपत्ति स्वीकार करते हैं। श्रीमन्नारायण दंडाधर हैं इसलिये मोक्ष नहीं देते बल्कि पाप कर्म के लिये दंड देते हैं। माता लक्ष्मी के पुरुष्कार पर ही वे मोक्ष देते हैं। अतः श्रीमन्नारायण के तीन गुण हैं : दंडाधारत्व उपायत्व उपेयत्व। माता लक्ष्मी के भी तीन गुण हैं : पुरुष्कारत्व, उपायत्व, उपेयत्व। इसको 'आकारत्रय' भी कहते हैं। इसीलिये माता लक्ष्मी की वंदना है: 'आकारत्रय सम्पन्नम् अरविन्द निवासिनीम् अशेष जगत ईशत्रय वन्दे वरदवल्लभाम्'। पराशरमुनि ने विष्णुपुराण में कहा है 'यथासर्वगतो विष्णु तथैव इयम् द्विजोत्तमा'। अतः माता लक्ष्मी भी विभु एवं सर्वत्र विद्यमान हैं। मातालक्ष्मी के बारे में यह धारण उचित नहीं है कि वे 'परमाणु' के आकारवाले जीव के समान हैं।
- श्वेताश्वतर उपनिषद के उल्लेख से पूर्वपक्षी ने कहा कि श्रीमन्नारायण से श्रेष्ठ कोई अन्य भी है। सूत्र 3 | 2 | 35 'तथाऽन्यप्रतिषेधात्' का तात्पर्य है कि श्रीमन्नारायण से श्रेष्ठ कोई नहीं है।
- सूत्र 3 | 2 | 36 'अनेन सर्वगतत्व मायामशब्दादिभ्यः' से यह सिद्ध किया गया है कि पर्याप्त उपनिषद उद्धरण से यह ज्ञात है कि श्रीमन्नारायण सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वअर्न्तयामी हैं।

82 | फलाधिकरण 4 सूत्र 3 | 2 | 37 से 3 | 2 | 40 तक अधि 3 | 2 | 8

दूसरे पाद के अंतिम तथा आठवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। इस अधिकरण से यह ज्ञात होता है कि जीव के कर्म जनित फल तथा मोक्ष के एक मात्र दाता श्रीमन्नारायण हैं। इस जगत में तीन तरह के जीव का उल्लेख है। 1। **ऐश्वर्यार्थी** : पुत्र धन राज्य एवं स्वर्ग के सुख भोगने की कामना वाले। सांसारिक सुख एवं स्वर्ग के सुख प्राप्ति के वेद में कई विधियां वर्णित हैं। क। पुत्र के लिये पुत्रकामेष्टियज्ञ। ख। धनार्जन के लिये **वायव्येष्टि**। ग।

राजपद के लिये राजसूय यज्ञ। घ। सुवृष्टि के लिये करीरीष्टि। ङ। स्वर्ग सुख के लिये ज्योतिष्टोम। च। इन्द्र या त्रिलोकाधिपति बनने के लिये एक सौ अश्वमेध यज्ञ। 2। कैवल्यार्थी : आत्मवत सुख के लिये अपनी आत्मा पर ध्यानस्थ रहना। यह परमात्मा की कृपा से होता है। 3। मोक्षार्थी : दिव्यलोक वैकुण्ठ पहुंचकर दिव्यपर्यंक आरूढ़ होना तथा दिव्य दंपति श्रीमन्नारायण एवं माता लक्ष्मी की अनवतर कैंक्यरत रह कर चरम सुख प्राप्त करना।

उपर्युक्त फल प्रदान करने वाले कौन हैं यही इस अधिकरण का विषयवस्तु है। चार सूत्र में से पहले दो सूत्र सिद्धान्त के हैं। पूर्वपक्षी के रूप में कर्मकाण्ड एवं पूर्वमीमांसा के रचयिता जैमिनिमहर्षि का संशय तीसरे सूत्र में है। चौथे सूत्र में संशय निराकरण है।

ज्ञान के स्रोत के रूप में चौदह शाखाओं में से एक शाखा मीमांसा शास्त्र है। इस शाखा के तीन विभाग हैं। यह शाखा वेद का तात्पर्य समझने का साधन है। 1। पहला विभाग कर्मकाण्ड कहा जाता है जिसमें श्रीमन्नारायण को प्रसन्न करके फल पाने के लिये पूजा की विधि का वर्णन है। वेदव्यास यानी बादरायण मुनि ने अपने शिष्य जैमिनिमहर्षि को कर्मकाण्ड के सूत्र रचने को कहा। फलस्वरूप जैमिनिने 12 अध्याय में 60 पाद तथा 907 अधिकरणों वाला कर्मकाण्ड सूत्र या पूर्वमीमांसा सूत्र की रचना की। 2। दूसरा विभाग देवताकाण्ड है जिसमें विभिन्न स्वर्गिक देवताओं प्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा, पशुपति रुद्र या शिव, शचिपति इन्द्र, सूर्य, सोम यानी चन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण आदि देवताओं के स्वरूप एवं स्वभाव का वर्णन है। बादरायण मुनि ने अपने शिष्य कात्सकृष्ण को सूत्र रचने की आज्ञा दी जो चार अध्याय में रखे गये हैं। कुछ लोग मानते हैं कि इन सूत्रों को जैमिनिने रचा था। श्री वेदांत देशिक स्वामी ने अधिकरण सारावली में लिखा है कि अगर जैमिनिने देवताकाण्ड लिखा तो वृत्ति कात्सकृष्ण की है और अगर देवताकाण्ड कात्सकृष्ण की है तो जैमिनिवृत्ति के रचयिता हैं।

3। तीसरा विभाग उपनिषदों का है जो ब्रह्मकाण्ड कहा जाता है। यह वेद का शिखर है या या इसे वेद का अंत भाग भी कहते हैं। इसके विभिन्न नाम हैं : श्रुतिशिर, वेदान्त, या त्रयान्त निगमांत। बादरायण मुनि ने स्वयं 545 सूत्रों तथा 156 अधिकरणों वाला चार अध्याय का ब्रह्म सूत्र की रचना की। बोधायन मुनि ने ब्रह्मसूत्र पर विशद वृत्ति लिखी है। सूत्रों के अर्थ को सविस्तार समझाने वाली रचना को वृत्ति कहते हैं।

सूत्र 3। 2। 37 'फलमत उपपत्तेः' में 'फलम' परिणाम, 'अथ' श्रीमन्नारायण से, 'उपपत्तेः' निकलता है।

श्रीमन्नारायण सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान हैं तथा आप ही सब यज्ञ, दान, होम, उपासना का परिणाम देने वाले हैं।

दूसरे सूत्र 3। 2। 38 'श्रुतत्वाच्च' सम्बन्धित सभी उपनिषद का उद्धरण प्रस्तुत करता है।

तीसरे सूत्र 3। 2। 39 'संप्रति पूर्वपक्षमाह धर्म जैमिनिरत एव' में जैमिनिकहते हैं कि उपासना नहीं बल्कि कर्म ही सब यज्ञों का फल देने वाला है। 'अपूर्व' यज्ञ का फल देते हैं। ध्यातव्य है कि विभिन्न पुण्य कृत्य को यज्ञ दान होम कहा गया है। यज्ञ में पशु की बलि दी जाती है तथा सोमलता का रस पिया जाता है। यज्ञ में बलि दी जाने वाली तीन तरह की अग्नि दक्ष अग्नि आहवनीय अग्नि गार्हपत्य अग्नि में किये गये उच्चारण 'हि यज्' 'हि यजमाहे' 'अस्तु वोनपात' 'आश्रवाय वौषत'। जरूरतमंद को दिये जाने वाली वस्तु या कृत्य को दान कहते हैं। बिना पशु का अग्नि में दी जाने वाली बलि को होम कहते हैं।

इस अधिकरण के अंतिम सूत्र 3।2।40 'पूर्व तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्' से सूत्रकार जैमिनिके मत को नकारते हुए कहते हैं कि यज्ञ रूपी कर्म का फल श्रीमन्नारायण देते हैं। जो भक्तियोग एवं उपासना के अतिरिक्त प्रपत्ति करता है उसे आप ही मोक्ष देते हैं।

उपनिषद् एकस्वर में कहते हैं कि भक्ति ही मोक्ष देती है। बड़ो को सम्मान देना ही भक्ति है। एकाग्रचित्त होकर श्रीमन्नारायण पर मन को एकाग्र करना ही भक्तियोग है।

भक्तियोग के दो सहायक हैं कर्मयोग एवं ज्ञानयोग। इसका विशद विवरण गीता में मिलता है। कर्म से मन शुद्ध होता है। जब मन अचल होकर परमात्मा पर स्थिर हो जाता है तो उसे समाधि कहते हैं।

श्रीमत् रहस्यत्रय सार के नौवें अध्याय में श्री देशिकान ने कर्म एवं ज्ञान योग का विशद विवरण दिया है।

श्रीवेदान्त देशिक स्वामी को ही सम्मान से श्रीदेशिकान कहते हैं। जीव जब अपने स्वरूप एवं परमात्मा के स्वरूप को ठीक से समझ लेता है तब वह कर्मपरायण होता है। कर्म बिना फल की आशा किये सम्पादित किया जाता है। **कर्मयोग के विभिन्न भेद हैं।** 1। देवार्चन रूप में सच्चाई से अर्जित धन का उपयोग श्रीमन्नारायण की पूजा में होता है। 2। ज्योतिषोत्तमा एवं बाजपेय यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती है। 3। अपने इन्द्रियों को शब्द स्पर्श रूप रस एवं गंध के आनन्द से हटाकर परमात्मा में लगाते हैं। 4। प्राणायाम से श्वास को नियंत्रित करते हैं। 5। जरूरतमंद को भिक्षा देते हैं। 6। नित्य उपासना में अग्निहोत्र एवं पंचम यज्ञ करते हैं। 7। तपस्या करते हैं। भगवद् रामानुज गीता भाष्य में **कृच्छ्र** यज्ञ एवं चांद्रयाण व्रत को ही तपस्या कहते हैं। कष्ट से उपवास आदि के साथ व्रत करना ही कृच्छ्र है। संकल्प के साथ किये गये कृत्य को व्रत कहते हैं। चान्द्रायण व्रत में मुंह के ग्रास को नियमित रूप से नियंत्रित करते हुए भोजन किया जाता है। शुक्ल पक्ष की पहली तिथि से पूर्णिमा तक प्रत्येक दिन एक ग्रास भोजन बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पूरा भोजन किया जाता है। कृष्ण पक्ष की पहली तिथि से क्रमशः ग्रास घटाते हुए अमावस्या को उपवास किया जाता है। 8। पवित्र जल में स्नान। 9। वेद का पाठ करना। 10। वेद का तात्पर्य समझना। उपर्युक्त वर्णित कठिन कृत्यों में से किसी एक का भी अभ्यास करना कर्मयोग है। कर्मयोग करने से मन पवित्र होता है तथा यह आत्मा के स्वरूप को समझने में सहायक होता है। नित्य नैमित्तिक संध्योपसना के कृत्य कर्म योग के कृत्य में नहीं आते हैं।

ज्ञानयोग : कर्मयोग से मन को शुद्ध करने के पश्चात् यानी मन पर विजय प्राप्त करके जीव अपने को शरीर से अलग समझता है तथा अपने को परमात्मा पर ही आश्रित मानता है। बिना किसी व्यवधान के नित्य अपने स्वरूप पर ध्यान करता है। कर्मयोग एवं ज्ञानयोग से जब व्यक्ति अपने स्वरूप को समझते हुए इन्द्रिय सुख को त्याग देता है तब वह भक्तियोग में प्रवृत्त होता है जिससे दिव्य वैकुण्ठ में परमात्मा को प्राप्त कर परमसुख का भागी होता है। श्री देशिकान एक सुन्दर दृष्टान्त देते हैं। कोई एक आभूषण एक तिजोरी में बन्द है। आभूषण देखने के पहले तिजोरी को ठीक से समझकर खोलना होगा। जीवात्मा तिजोरी है एवं परमात्मा आभूषण हैं। अतः स्वयं का आत्मावलोकन के पश्चात् ही अर्न्त्यामी परमात्मा के दर्शन की आकांक्षा होती है। परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ हैं तथा जीव उनका शरीर है। अतः भक्तियोग के लिये आत्मावलोकन एक आवश्यक प्रक्रिया है।

श्रीभाष्य के प्रारंभ में लघुसिद्धान्त में भगवद रामानुज ने कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के सात अवयवों का निरूपण किया है जिसे साधनासप्तक कहते हैं। भक्तियोग को ध्रुवस्मृति या ध्रुवानुस्मृति कहते हैं। सर्वान्तर्यामी श्रीमन्नारायण पर ध्यान केन्द्रित करने को स्मृति या अनुस्मृति कहते हैं। ध्रुव मन की अविचल स्थिति का प्रतीक है जिसमें ध्यान के अन्तराल में अन्य किसी विचार का प्रवेश नहीं होता है। इस तरह का मन साधना सप्तक से ही संभव है। **1। विवेक** : तीन तरह के दोष से मुक्त अन्न खाने पर मन शुद्ध रहता है। तीन तरह के दोष हैं : जाति दोष, आश्रय दोष, तथा निमित्त दोष। प्याज, लहसुन, गोवी, सहजन आदि वर्जित भोजन जाति दोष वाले होते हैं। संसर्ग से उत्पन्न दोष को आश्रय दोष कहते हैं। जैसे : बाल का संसर्ग, पीतल के वर्तन में नारियल पानी, तांबे के वर्तन में शहद, तथा लोहे के वर्तन में दूध एवं घी। विशेष परिस्थिति में जब अन्न दूषित हो जाता है तब उसे नैमित्तिक दोष कहते हैं। जैसे : निम्न जाति से स्पर्श होना, ब्राह्मण का बेचा हुआ दूध, कुत्ता चूहा मुर्गा विल्ली कौआ आदि से स्पर्श होना, आदमी का सूंघना पैर धोने के बाद बचा हुआ जल आदि। छान्दोग्य में यह कहा है कि शुद्ध अन्न से मन शुद्ध होता है, जो कि ईश्वर पर ध्यान को स्थिर करने में सहायक होता है। **2। विमोक** : अन्य इच्छाओं के अतिरिक्त विशेषकर यौन सुख से मुक्त मन से ही विमोक की प्राप्ति होती है। विमोक की स्थिति प्राप्त होने के पश्चात् ही ध्यान सुदृढ़ होता है। शब्द स्पर्श रस रूप एवं गंध के आनन्द से मुक्त मन को ही विमोक कहते हैं। **3। अभ्यास** : पुनरावृत्ति से अभ्यास बनता है। सम्यक स्थान तथा उचित समय पर श्रीमन्नारायण के मंगल स्वरूप पर चित्त लगाने से ध्यान सुदृढ़ होता है। **4। क्रिया** : नित्य अनुष्ठान पंचमयाग आदि को यथासंभव करना। पंचमयाग में देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, तथा ब्रह्म यज्ञ है। जो नित्य पंचयज्ञ जिसे पंचमहायज्ञ भी कहा जाता है करते हैं वे ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। श्रीमन्नारायण के स्वरूप, स्वभाव, गुण आदि में अभिरुचि रखने वाले को ब्रह्मविद कहते हैं। **5। कल्याण** : सत्य, आर्जव, दया, दान, अहिंसा, एवं अनभिध्यः सदगुणों से विभूषित होना। प्राणियों के प्रति सदभाव को सत्य कहते हैं। वाणी, वचन, कर्म की एकरूपता को आर्जव कहते हैं। जो हम सोचते हैं वही बोलते हैं तथा जो बोलते हैं वही करते हैं। बिना स्वयं को लाभान्वित होने की आशा को मन में रखे हुए प्राणियों के दुःख दूर करने की निष्ठा को दया कहते हैं। किसी को मन वचन कर्म से दुःख न पहुंचाने की क्रिया को अहिंसा कहते हैं। दान का अर्थ है लोभ लालच का त्यागकरके दूसरे की सहायता करना। दूसरे की संपत्ति एवं धन को प्राप्त करने के लोभ की प्रवृत्ति से मुक्त रहना ही अनभिध्य है। किसी दूसरे को क्षति न पहुंचाना भी अनभिध्य का एक और अर्थ है। **गीता अध्याय 13** तथा गौतम धर्म सूत्र में भी ऐसा ही अर्थ लिया गया है। **6। अनवसाद** : मानसिक शोक को अवसाद कहते हैं। इसका विपरीत अनवसाद है यानी मानसिक शोक से मुक्त रहना। जो व्यक्ति भक्तियोग में निष्ठ होते हैं उन्हें मानसिक शोक से मुक्त रहना होगा। **7। अनुद्धर्ष** : उद्धर्ष का अर्थ है अतिशय प्रसन्नता। अनुद्धर्ष का अर्थ हुआ अतिशय हर्ष से मुक्त रहना।

उपर्युक्त साधनसप्तक कर्म एवं ज्ञान योग के सहयोगी हैं जो भक्तियोग का मार्ग प्रसस्त करते हैं।

भक्तियोग : रहस्यत्रय सार के उपाय विभाग अधिकार वाले भाग में श्रीदेशिकान ने भक्तियोग को सुन्दर तरह से समझाया है। भक्तों के आश्रय, सर्वश्रेष्ठ, तथा किसी के वश में रहने वाले श्रीमन्नारायण से अतिशय प्रेम होना

तथा तेल की अविच्छिन्न धारा की तरह उन पर विचार करते हुए ध्यान लगा रहना ही भक्तियोग है। यह कार्य नित्य चलते रहता है जबतक कि जीव दिव्यलोक वैकुण्ठ नहीं पहुंच जाता। नश्वर शरीर के परित्याग करने के समय यह ध्यान आवश्यक है। इसे अंतिमस्मृति कहते हैं। अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार आत्मावलोकन करते हुए कर्मयोग का अनवरत अभ्यास किया जाता है। चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र हैं तथा चार आश्रम ब्रह्मचर्य, ग्राहस्थ, वानप्रस्थ, तथा संन्यास हैं। भक्तियोग में वेद पाठ स्त्रियों एवं शूद्र को वर्जित है। इसे त्रिवर्णिकाधिकार कहते हैं। मोक्ष के साधन के रूप में किया गया भक्तियोग को पराभक्ति कहते हैं। श्रीमन्नारायण को प्राप्त करने के लिये उत्कट इच्छा का जाग्रत होना ही पराभक्ति है। जब ध्यान के समय इस तरह का स्थिति प्राप्त होती है तो उसे पराज्ञान कहते हैं। पराज्ञान से श्रीमन्नारायण को प्राप्त करने की इच्छा सदैव जाग्रत रहती है और इसे परमाभक्ति कहते हैं। तीनों अवस्था यानी पराभक्ति, पराज्ञान, तथा परमाभक्ति प्राप्त कर लेने पर श्रीमन्नारायण प्रसन्न होकर मोक्ष प्रदान करते हैं यानी अपने दिव्यलोक में स्थान देकर सदैव आनन्द लेने का अवसर प्रदान कर देते हैं।

अविचल ध्यान को समाधि कहते हैं तथा इसकी सात सहायक स्तर की स्थितियां हैं। सब मिली हुई स्थिति को **अष्टांग योग** कहते हैं। इस तरह से भक्तियोग के आठ अवयव हुए।

1। यम : इन्द्रियों के नियंत्रण को यम कहते हैं। इसके पांच सहायक स्तर हैं। **क।** ब्रह्मचर्य यानी अपनी भार्या के अतिरिक्त अन्य से सम्बंध न रखना। **ख।** अहिंसा यानी किसी की हानि न मन में सोचना, न बोलना, न करना। **ग।** अस्तेय यानी दूसरे का धन न चुराना। चुराने का एक अर्थ यह भी है कि दूसरे के धन को अपना समझना। इसका एक अन्य अर्थ भी है कि अपनी आत्मा को श्रीमन्नारायण के अधीन रहते हुए स्वतंत्र समझना। ऐसा करने से व्यक्ति आत्मापहारी समझा जाता है। यह जगत का सबसे बड़ा अपराध है। **घ।** अपरिग्रह यानी अपने लाभ के लिये दूसरे का उपहार स्वीकृत करना। **ङ।** सत्य : दूसरों से सच परंतु प्रिय बात बोलना।

2। नियम : सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखते हुए सांसारिक सुख सुविधा से दूर रहना। इसके पांच सहायक अवयव हैं। **क।** संतोष यानी जो भी उपलब्ध है उससे अपना काम चलाना। **ख।** शौच यानी मन की आंतरिक तथा शरीर की बाह्य पवित्रता। उपर्युक्त साधना सप्तक के अनुसार भोजन की पवित्रता भी अत्यंत आवश्यक है। भगवान के अर्चाविग्रह को समर्पित भोजन ही प्रसाद के रूप में ग्राह्य होना है। **ग।** तपस यानी उपवास। एकादशी, रामनवमी, नरसिंह जयन्ती, श्रीजयंति के दिन व्रत तथा उपवास रखना। अधिक भोजन या अल्प भोजन न करना क्योंकि ध्यान में ये बाधक होते हैं। **घ।** स्वाध्याय यानी वेद का पाठ करना तथा ज्ञान प्राप्त करना। श्रीमन्नारायण का नाम जप करना। **ङ।** प्रणिधान यानी ब्रह्म पवण्यम जो कि श्रीमन्नारायण पर ही ध्यान को स्थिर करना है।

3। आसन : बैठने की मुद्रा एवं प्रक्रिया शुद्ध स्थान पर की जाती है। स्थान को गाय के गोवर से लीपकर उस पर कुश की चटाई बिछाकर उस पर मृगचर्म फैला दिया जाता है। मृगचर्म को कपड़ा से ढककर उसपर काष्ठ का बना हुआ किसी भी एक आकार (चक्र, कमल, कछुआ, मयूर, कुक्कुट, वीर, स्वस्तिक, भद्र, सिंहासन, मुक्तासन गोमुख) के आसन पर पर ध्यानकर्ता आसीन होते हैं।

4। प्राणायाम : श्वास नियंत्रण की प्रक्रिया। इस प्रक्रिया की तीन अवस्था है। पहली अवस्था में कनिष्ठा से बायीं नाक को बन्द कर दायीं नाक से प्राणवायु बाहर निकाल दी जाय जिसे रेचक कहते हैं। स्मरण रहे कि इसमें आंखें बन्द रहती हैं। दूसरी अवस्था को पूरक कहते हैं जिसमें अंगुठे से दायीं नाक को बन्दकर बायीं नाक से बाहर से प्राणवायु भीतर पूरी तरह भर ली जाय। तीसरी अवस्था कुंभक की है जिसमें तीनों उंगली से दोनों नाक को बन्द कर श्वास की क्रिया बन्द रहती है। कुंभक का उत्तम काल 36 सेकंड है। 24 सेकंड मध्यम है तथा 12 सेकंड कम से कम है। 'अ' मात्रा के उच्चारण में जो समय लगता है वह एक सेकंड माना जाता है। कुंभक काल में कम से कम 25 बार अष्टाक्षर या द्वय मंत्र का जप किया जाय। इस प्राणायम से शरीर स्वस्थ रहता है।

5। प्रत्याहार : इन्द्रियों के विषयभोग के आनन्द की तुच्छता को समझते हुए मन को सुख भोगने वाली इन्द्रियों से अलग करना ही प्रत्याहार है।

6। धारणा : सांसारिक विषय वस्तु से मन हटाकर दिव्यमंगल विग्रह पर प्रेम से ध्यान को टिकाना ही धारणा है। मन को श्रीचरणों से अलग नहीं होने देना दृढ़ धारणा से ही संभव है।

7। ध्यान : उपनिषद में ब्रह्मविद्या के प्रसंग में उल्लिखित श्रीमन्नारायण के मंगलमय कल्याण गुणों का स्मरण करते हुए तेल धारा की तरह मन को भगवान पर टिकाये रखना ही ध्यान है। मन की चिंतन स्थिति को भगवान पर ही स्थिर करना है। चिंतन काल में भगवान के सिवा किसी अन्य वस्तु के स्मरण से मुक्त हो जाना है। भगवान के स्वरूप एवं आयुधों पर मन को टिकाना है। भगवान का सुदर्शन चक्र मानव के मन का प्रतीक है। 24 अवयव वाले सृष्टि के सात्विक अहंकार के अंश का प्रतीक शंख है। शारंग धनुष अहंकार का प्रतीक है। बाण दस इन्द्रियों के प्रतीक हैं। खड्ग ज्ञान तथा चैतन्य का प्रतीक है। भगवान के आभूषण हैं : किरीट, मकुट, चूड़वतांश यानी सिर का माला, मकराकृत कुंडल, ग्रीवकहार, केयूर यानी बांह का आभूषण, कटक यानी कंगन, श्रीवत्स यानी वक्षस्थल का प्रतीक चिह्न, कौस्तुभ यानी भगवान के वक्षस्थल का आभूषण जो जीवात्मा का प्रतीक है, मुक्ता यानी मोती की माला, पीतांबर, कांचीगुण यानी कमरधनी, तथा नुपूर यानी पांव का पाजेव।

8। समाधि : अनवरत ध्यान को समाधि कहते हैं। मन पूर्णतया भगवान के स्वरूप एवं गुणों पर टिक जाता है।

अष्टांग योग के वर्णन के बाद ब्रह्मविद्या का विवरण प्रस्तुत है।

ब्रह्मविद्या के बत्तीस विभेद हैं :

विद्या का अर्थ है ज्ञान। 'विद् ज्ञाने' इसका मूल है। सामान्य ज्ञान तथा ध्यान का ज्ञान इसके दो विभाग हैं। ब्रह्म स्वयं श्रीमन्नारायण हैं। ब्रह्मविद्या का अर्थ हुआ श्रीमन्नारायण का ध्यान करने का ज्ञान जिसके अभ्यास से मोक्ष का परमसुख प्राप्त हो। ब्रह्मविद्या एवं भक्तियोग दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। इसके अतिरिक्त न्यास विद्या से प्रपत्ति करते हैं जो मोक्ष प्राप्त करने में सहायक होता है। ज्ञानयोग एवं कर्मयोग भक्तियोग के दो सहायक हैं। प्रपत्ति यानी श्रीमन्नारायण के चरणारविंद में शरणागति। इससे कर्म का शीघ्र क्षय होता है तथा भक्तियोग का मार्ग सुगम तथा प्रशस्त बनता है। भक्तियोग या ब्रह्मविद्या के अभ्यास की दो प्रमुख स्थितियां हैं।

स्थिति 1 : क। कर्मयोग तथा साधना सप्तक का अभ्यास। ख। आत्मसाक्षात्कार एवं आत्मावलोकन। ग। अंग प्रपत्ति। घ। भक्तियोग यानी अष्टांग योग के अभ्यास के साथ ब्रह्मविद्या का अनुशीलन।

स्थिति 2 : क। कर्मयोग तथा साधना सप्तक का अभ्यास। ख। ज्ञानयोग। ग। आत्मसाक्षात्कार एवं आत्मावलोकन। घ। अंग प्रपत्ति। ङ। भक्तियोग यानी अष्टांग योग के अभ्यास के साथ ब्रह्मविद्या का अनुशीलन।

अष्टांगयोग के अभ्यास के साथ तीन प्रमुख ध्यान का महत्व है। **क**। माता लक्ष्मी समेत श्रीमन्नारायण के दिव्यमंगल विग्रह का ध्यान। अपने को सर्वअन्तर्यामी श्रीमन्नारायण का शरीर मानते हुए अपनी आत्मा के रूप में प्रभु का ध्यान। ब्रह्मविद्या के अभ्यास के साथ साथ भगवान के कल्याण गुण का ध्यान। भगवान के विशेष छः 'स्वरूप निरूपक धर्म' का ध्यान। यहां धर्म गुण का पर्याय है। **ख**। प्रत्यकत्व अर्थात् अपने को भगवान का सेवक मानते हुए अपने को जानने वाला तथा आनंद लेने वाला समझकर अपनी आत्मा की अनुभूति का ध्यान। **ग**। मोक्ष के साधन के रूप में लिये गये ब्रह्मविद्या पर विचार पूर्वक ध्यान।

ब्रह्मविद्या के अभ्यास से मोक्षफल प्राप्ति की क्रमशः स्थिति : क। अंतिम स्मृति। ख। नश्वर शरीर का त्याग तथा सूक्ष्म शरीर से गमन। ग। अर्चिरादि मार्ग से विरजा नदी के तट पर आगमन तथा सूक्ष्म शरीर का त्याग। घ। विरजा नदी पार करके दिव्य वैकुण्ठ धाम की सीमा में प्रवेश। ङ। ब्रह्मालंकार से विभूषित होकर श्रीमन्नारायण के सिंहासन दिव्य पर्यंक तक पहुंचना। च। दिव्य पर्यंक पर आरूढ़ होना तथा श्रीमन्नारायण को अपनी स्थिति बताना। छ। आठ गुणों यानी गुणाष्टक का प्रस्फुटन। ज। दिव्य युगल सरकार की सेवा में दीक्षित होना।

ब्रह्मविद्या :

- 1। सद्विद्या** : छान्दोग्य के छठे अध्याय में उद्दालक ऋषि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश देने का उल्लेख है। भगवान के 'स्वरूप निरूपक धर्म' का विवेचन यानी विशेष छः गुणों का वर्णन किया गया। **क। सत्यत्व** : इस गुण के कारण भगवान बद्ध जीव से तथा जीव के नश्वर शरीर से पृथक सिद्ध होते हैं। अन्तःप्रकृति यानी 'स्वरूप' तथा सामान्य प्रकृति यानी 'स्वभाव' में कभी भी किसी तरह का बदलाव न होना ही सत्यत्व है। **ख। ज्ञानत्व** : सर्वज्ञता भगवान की विशेषता है जो मुक्त जीव को भी प्राप्त नहीं है। **ग। अनंतत्व** : समय स्थान एवं वस्तु की असीमिता तथा कभी कोई बदलाव नहीं भगवान का अनंतत्व है। यह गुण नित्यसूरी को भी प्राप्त नहीं है। **घ। आनन्दत्व** : असीम आनंद। **ङ। अमलत्व** : निर्मल दोष रहित। **च। श्रियपतित्व** : माता लक्ष्मी के पति। भगवान के स्वरूप का संकेत देनेवाले उक्त सभी छः गुणों का प्रत्येक ब्रह्मविद्या में, न्यासविद्या को लेकर, ध्यान किया जाता है। केवल सद्विद्या में ध्यान किये जाने वाले भगवान के कल्याण गुण हैं। **क। जगदउपादानत्वम्**। **ख। जगन्निमित्तत्वम्**। **ग। सर्वज्ञत्व**। **घ। सर्वशक्तियोग**। **ङ। सत्यसंकल्पत्वम्**। **च। सर्वान्तर्यामी**। **छ। सर्वधारत्वम्**। **ज। सर्व**

नियंतृत्वम् । **सद्विद्या का मोक्ष फल** : छान्दोग्य के छठे अध्याय में उल्लेख है कि सद्विद्या के अनुसार ध्यान करने वाले प्रारब्ध कर्म के भोग के बाद मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

- 2। **आनन्दमयविद्या** : इसका उल्लेख तैत्तिरीय उपनिषद के आनन्दवली विभाग में है । उपर्युक्त सद्विद्या के छः स्वरूप निरूपक धर्म के अनुसार आनन्दमय श्रीमन्नारायण का ध्यान किया जाता है । इस विद्या के अनुसार भगवान के विशेष गुण पर ध्यान किया जाता है । विशेषगुण हैं : क । पांचभूत आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी के रचयिता । ख । अन्नमय प्राणमय मनोमय तथा विज्ञानमय के अन्तर्यामी । ग । अपनी इच्छा से जगत के रचयिता । घ । जड़ चेतन भगवान के शरीर हैं तथा भगवान सब में अन्तर्यामी हैं । ङ । भगवान सब जीवों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं तथा भगवान के करुणा के बिना किसी की स्थिति नहीं रह सकती । च । भगवान से सूर्य, चंद्र, वायु, इन्द्र, अग्नि, यम, एवं अन्य देवगण भी भय खाते हैं । आनन्दमय विद्या का मोक्ष फल : आनन्दवल्ली में उल्लेख है कि आनन्दमयविद्या की पूर्णता पर वैराग्य का अभ्यास करने वाले को असीम आनन्द की प्राप्ति होती है । कलियुग में भक्तियोग का अभ्यास कठिन है । श्रीनाथ मुनि एक योगनिष्ठ आचार्य थे और आपने मथुराकवि आळवार द्वारा विरचित 'कण्णिनुण शिरूताम्बु' का 12000 हजार बार पाठ करके नम्माळवार के कृपाभाजन बने और दिव्यप्रबंधम के सभी 4000 पाशुर प्राप्त किये । कलि में ब्रह्मविद्या यानी भक्तियोग के अभ्यास की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त 32 तरह की ब्रह्मविद्या से बचे हुए का नाम, सम्बन्धित उपनिषद, अधिकरण तथा मोक्षफल का उल्लेख मात्र ही उचित है ।

तालिका 13 : ब्रह्मविद्या के बत्तीस भेद

क्रम	ब्रह्मविद्या	उपनिषद	उपदेश	मोक्षफल	अधिकरण
1	सद्विद्या	छान्दोग्य छठा अध्याय	उद्दालक द्वारा श्वेतकेतु को		5 इक्षत्यधिकरण 1 1
2	आनन्दमय	तैत्तिरीय आनन्दवल्ली			6 आनन्दमय 1 1
3	अन्तरादित्य	छान्दोग्य, पहला अध्याय, छठा खंड, छठा मंत्र		उद्गीथ विद्या का अंश होने से मोक्षफल नहीं ।	7 अन्तः 1 1
4	आकाश	छान्दोग्य, पहला अध्याय, नौवां खंड		तथैव	8 आकाश 1 1
5	प्राण	छान्दोग्य 1 11 5		तथैव	9 प्राण 1 1

क्रम	ब्रह्मविद्या	उपनिषद	उपदेश	मोक्षफल	अधिकरण
6	गायत्री ज्योतिर्	छान्दोग्य 3 12		स्वर्ग यानी मोक्ष	10 ज्योतिर् 1 1
7	प्रतर्दन	कौषितकी अध्याय 3		पहले इन्द्र का स्वर्ग तत्पश्चात् वैकुण्ठ	11 इन्द्रप्राण 1 1
8	सांडिल्य	छान्दोग्य 3 14 अग्निरहस्य बृहदारण्यक 7 6 1			12 सर्वत्रप्रसिद्धि 1 2
9	नचिकेता	कठोपनिषद	यम द्वारा नचिकेता को		14 अन्तर 1 2
10	उपकोसल	छान्दोग्य 4 10 से 4 15	सत्यकाम द्वारा उपकोसल को		14 अन्तर 1 2
11	अन्तर्यामी	बृहदारण्यक अध्याय 5, एवं 7 वां ब्राह्मण सुबालोपनिषद			15 अन्तर्यामी 1 2
12	अक्षर परा	मुण्डक			16 अदृश्यत्वादि 1 2
13	वैश्वानर	छान्दोग्य 5 11 24	अश्वपति राजा द्वारा छः मुनियों को		17 वैश्वानर 1 2
14	भूमा	छान्दोग्य, अध्याय 7	सनत्कुमार द्वारा नारद मुनि को		19 भूमा 1 3
15	गार्गी अक्षर	बृहदारण्यक 5 8 8			20 अक्षर 1 3
16	त्रिमात्राप्रणव	प्रश्नोपनिषद 5 5			21 ईक्षतिकर्म 1 3
17	दहरा	छान्दोग्य, अध्याय 8			22 दहरा 1 3
18	अंगुष्ठ प्रमित	कठोपनिषद			23 प्रमित 1 3

क्रम	ब्रह्मविद्या	उपनिषद	उपदेश	मोक्षफल	अधिकरण
19	ज्योतिषम ज्योतिर्	बृहदारण्यक 6 4 16			25 मध्व 1 3
20	मधु	छान्दोग्य 3 1			25 मध्व 1 3
21	संवर्ग	छान्दोग्य 4 3	रैवक मुनि द्वारा राजा जनश्रुति को		26 अपशूद्र 1 3
22	अक्स	छान्दोग्य, अध्याय 8			27 अर्थान्तरत्वादि व्यपदेश 1 3
23	बालकी	कौषीतकी एवं बृहदारण्यक			32 जगद्वाचित्व 1 4
24	मैत्रेयी	बृहदारण्यक 4 4			33 वाक्यान्वयात् 1 4
25	पंचाग्नि	छान्दोग्य 5 3	राजा प्रवाहण द्वारा अरुणि मुनि को		69 तदन्तर प्रतिपति 3 1
26	पुरुष	तैत्तिरीय			91 पुरुषविद्या 3 3 9
27	अक्षिष्ट सत्य ब्रह्म	बृहदारण्यक 5 7			
28	इसावस्य	इसावस्य			
29	उपस्त कहोल	बृहदारण्यक 5 4 एवं 5 5	याज्ञयबल्क्य द्वारा उशष्ट एवं कहोल को		97 अन्तरत्वाधिकरण 3 3 15
30	पर्यक	कौषीतकी अध्याय 1			
31	व्याहृति	बृहदारण्यक 7 5 1			
32	न्यास	तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर			

32 न्यासविद्या : यह प्रपत्ति या शरणागति है। उपर्युक्त सभी ब्रह्मविद्याओं में न्यासविद्या सर्वोत्तम है। श्रीदेशिकान ने रहस्यत्रयसार में कहा है कि भक्तियोग न्यास विद्या का 1/107 वां भाग भी नहीं होगा। तैत्तरीय उपनिषद में उल्लेख है कि न्यास सभी तप से श्रेष्ठ है। श्वेताश्वतर उपनिषद कहता है कि मैं श्रीमन्नारायण के चरणारविन्द में शरण लेता हूँ जिन्होंने चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि की तथा उन्हें वेद पढ़ाया और जिनकी कृपा से चतुरानन ब्रह्मा को ज्ञान हुआ। यहां शरण लेने का अर्थ है कि स्वयं की आत्मा की रक्षा का दायित्व परमात्मा के हाथों में सौंप देना। इसे भार समर्पण कहते हैं। रक्षा का अर्थ है कि श्रीमन्नारायण मोक्ष प्रदान करते हुए जीव को माता लक्ष्मी समेत दिव्य दम्पति की सेवा का ज्ञान कराये। गीता में भगवान ने अर्जुन को अपने चरणों में समर्पण के लिये प्रेरित किया जिससे कि मोक्ष मार्ग का अवरोध करनेवाले उसके कर्म का क्षय हो जाय। इसे भगवद्गीता का चरमश्लोक कहते हैं। इससे हमसबों को लाभ मिला है। आचार्य के माध्यम से हम प्रपत्ति द्वारा परम आनन्ददायी मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

भरतमुनि ने प्रपत्ति की परिभाषा यून दी है कि जब किसी वस्तु को प्राप्त करना किसी व्यक्ति की क्षमता से बाहर हो जाता है तब वह व्यक्ति परमात्मा से प्रार्थना करके उस वस्तु को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है। जैसे भक्तियोग के आठ सहयोगी अवयव हैं उसीतरह प्रपत्ति के पांच अवयव हैं जिसे पंचांग योग कहते हैं। अकिंचन्य एवं अनन्य घटिकत्व से ही प्रपत्ति की अर्हता बनती है। अकिंचन का अर्थ है कि किसी कारण से व्यक्ति भक्तियोग करने में असमर्थ है। अनन्य घटिकत्व का अर्थ है कि लक्ष्मी समेत श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं है। जाति, रंग, धर्म, एवं लिंग के भेद को लांघकर सभी प्रपत्ति के अधिकारी हैं। पशु वृक्ष तथा अन्य जड़ पदार्थ भी प्रपत्ति कर सकते हैं। रहस्यत्रयसार के प्रपत्तियोग्याधिकरण में श्रीदेशिकान स्वामी प्रपत्ति करने लायक बनने के लिये चार बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित करते हैं। 1। शारीरिक क्षमता की कमी कर्मयोग में बाधक होती है जो भक्तियोग का सहायक है। 2। ज्ञान की कमी या ध्यान को स्थिर करने में अक्षम। 3। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में जन्म न होकर अन्य जाति में तथा नारी जाति में जन्म होने के कारण वेद पाठ तथा भक्तियोग में प्रतिबंध। 4। जिस जन्म में भक्तियोग का अभ्यास किया जाता है उस जन्म में मोक्ष मिलना निश्चित नहीं है परंतु प्रपत्ति में मोक्ष इसी जन्म में निश्चित।

प्रपत्ति के लिये योग्य 15 तरह की श्रेणी वाले व्यक्ति होते हैं। 1। श्रीदेशिकान द्वारा उपर्युक्त बताये गये चार श्रेणी वाले में से किसी एक श्रेणी वाले चार श्रेणी के लोग। 2। श्रीदेशिकान द्वारा उपर्युक्त बताये गये चार श्रेणी वाले में से किसी दो श्रेणी वाले छः श्रेणी के लोग। 3। श्रीदेशिकान द्वारा उपर्युक्त बताये गये चार श्रेणी वाले में से किसी तीन श्रेणी वाले चार श्रेणी के लोग। 4। श्रीदेशिकान द्वारा उपर्युक्त बताये गये चार श्रेणी वाले में से चारों श्रेणी वाले एक श्रेणी के लोग।

प्रपत्ति एक ही बार की जाती है तथा इसकी अवधि 30 मिनट से अधिक की नहीं है और मोक्ष सुनिश्चित है। यहां शंका उत्पन्न होती है कि भक्तियोग जहां बार बार अभ्यास की आवृत्ति पर आधारित है तथा

अनवरत कई जन्म की जाती है परंतु प्रपत्ति इतनी अल्प अवधि में कैसे वही मोक्ष फल की प्राप्ति सुनिश्चित कर देती है। श्रीदेशिकान ने पांच तरह की शंका का समाधान किया है जिसे शंका पंचकम कहते हैं।

शंका 1 :

संकीर्ण विचार वाले देवगन शिव, इन्द्र, चतुर्मुख ब्रह्मा, अयप्पा, मरिअम्मन आदि प्रार्थी की प्रार्थना पर सद्यः फल देते हैं जबकि श्रीमन्नारायण दंडधर होने के नाते पाप एवं पुण्य के हिसाब पर फल देर से देते हैं। ऐसी स्थिति में हजारों पाप करने वाले को एक ही बार प्रपत्ति करने पर श्रीमन्नारायण सद्यः मोक्ष कैसे दे सकेंगे ?।

शंका 1 का निवारण : श्रीमन्नारायण से कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। व्यक्ति के पाप को क्षमादान आप पुरूष्कार करने वाले व्यक्ति की अनुशंसा पर करते हैं। प्रपत्ति के मामले में पापी का पाप क्षमा करने की संस्तुति या पुरूष्कार माता लक्ष्मी की होती है।

शंका 2 :

अनेकों पाप करने वाले को अल्प अवधि की प्रपत्ति में श्रीमन्नारायण असीम आनंद का मोक्ष कैसे दे सकेंगे ?।

शंका 2 का निवारण : श्रीमन्नारायण तथा जीव के बीच 'शेषी शेष' का सम्बन्ध है। सेवक जीव शेष है तथा स्वामी परमात्मा शेषी हैं। प्रपत्ति करने वाले जीव को असीम आनन्द का मोक्ष वैकुण्ठ में सेवा का अवसर प्रदान करता है।

शंका 3 :

फिर भी यह संशय रह जाता है कि प्रपत्ति जैसे इतने छोटे कृत्य के लिये श्रीमन्नारायण मोक्ष कैसे दे सकेंगे ?।

शंका 3 का निवारण : वात्सल्य एवं दया श्रीमन्नारायण के कल्याण गुण हैं। दोष को अनदेखी कर गाय वात्सल्य प्रेम के कारण अपने बछड़े को चाटती है। परमात्मा भी इसी तरह प्रपत्ति करने पर वात्सल्य भाव की वर्षा करते हैं। दुःख में पड़े जीव को दुःख से छुटकारा दिलाने का भाव करुणा से ओत प्रोत रहता है।

शंका 4 :

श्रीमन्नारायण बिना विलंब किये कैसे मोक्ष दे सकेंगे ?।

शंका 4 का निवारण : दृढ़ संकल्प श्रीमन्नारायण का कल्याण गुण है जो किसी के चाहने पर टल नहीं सकता। इसे सत्यसंकल्प कहते हैं। प्रपत्ति करते ही बिना देर किये आप मोक्ष दे देते हैं। जो प्रपत्ति करते हैं वे प्रपन्न कहे जाते हैं। प्रपन्न दो तरह के होते हैं : दृप्त तथा आर्त। दृप्त जन्म के अंत में मोक्ष की कामना करते हैं जबकि आर्त दुःख की आतुरता में सद्यः मोक्ष चाहते हैं।

शंका 5 :

प्रपन्न जीव में बिना किसी भेद भाव के श्रीमन्नारायण अविलंब कैसे मोक्ष दे सकेंगे ? ।

शंका 5 का निवारण : प्रपत्ति स्वीकार करने में श्रीमन्नारायण का विशेष प्रयोजन रहता है । प्रपन्न आपका पूर्णतया आश्रित हो जाता है । सच्चे प्रपन्न भक्त की रक्षा ही आपका उद्देश्य है । अतः प्रपन्नों के बीच भेद भाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

प्रपत्ति के पांच सहयोगी अवयवः

- 1। अनुकूल्यस्य संकल्प : शास्त्र विहित कर्मों को करने वाले भगवान के अनुकूल यानी पसंद वाले हो जाते हैं । नित्यानुसंधान जैसा कृत्य करण आवश्यक है ।
- 2। प्रतिकूलस्य वर्जनम : अकृत्य अकरण यानी निषेध कर्मों को न करना । परमात्मा का आदेश शास्त्रों में समाहित है अतः उसके विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करना होगा । अपने का अपना स्वामी समझना भी प्रतिकूलस्य वर्जनम में आता है । अतः जड़ चेतन को हानि पहुंचाने से दूर रहना चाहिये ।
- 3। रक्षिष्यति इति विश्वास : परमात्मा में अटूट विश्वास से प्रपत्ति संभव है ।
- 4। गोपतृत्व वारणम : जो हम इच्छा करते हैं वह परमात्मा से निवेदन करना । अपनी आत्मा की रक्षा के लिये परमात्मा से निवेदन करना ।
- 5। कार्पण्य : जब भक्तियोग करने में सक्षम नहीं हैं तब विनम्रता पूर्वक परमात्मा को ही एकमात्र उपाय एवं उपेय मानना । इसे उपायान्तर कहते हैं । प्रपत्ति के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रहने की स्थिति को अकिंचन्य कहते हैं तथा यह उपायान्तर शून्यत्व भी कहा जाता है । मोक्ष में दिव्य दंपति माता लक्ष्मी समेत श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त किसी अन्य को प्राप्त करने का लक्ष्य नहीं रखना प्राप्यन्तर शून्यत्व है । इसे अनन्यगतिकत्वम भी कहते हैं ।

उपर्युक्त अवयवों को समझने के पश्चात् ही मानसिक क्रिया से संपादित की जाने वाली शरणागति प्रपत्ति कही जाती है । समर्पण के तीन भेद हैं : स्वरूप समर्पण, भार समर्पण, एवं फल समर्पण । परमात्मा से ही जीव को आन्तरिक स्वभाव प्राप्त होता है । इसे परमात्मा को लौटा देना ही 'स्वरूप समर्पण' है । प्रपत्ति करने वाले जीव की आत्मा को संरक्षण भार परमात्मा को देना ही 'भार समर्पण' है । दिव्यलोक वैकुण्ठ पहुंच कर अपनी सेवा से दिव्य दम्पति को प्रसन्न करना ही 'फल समर्पण' है । मोक्ष फल से वास्तविक आनन्द तो परमात्मा को मिलता है । परमात्मा के आनंद से ही मुक्तात्मा को शाश्वत आनंद मिलता है । अतः मोक्ष का फल दिव्य दम्पति को समर्पित करना ही 'फल समर्पण हुआ ।

इसके कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं : 1। श्रीमन्नारायण सद्योपाय हैं । अतः आप ही अपने चरणों में प्रपत्ति करने वाले को मोक्ष स्वीकृत करते हैं । 2। उपनिषद से प्रतिपादित भक्तियोग करने में जब जीवात्मा सक्षम नहीं होता तब वह भक्तियोग की जगह परमात्मा को रखकर अपना भार उनपर समर्पित करते हुए प्रपत्ति करता है । इसे 'उपायान्तर स्थान निवेश' यानी परमात्मा को भक्तियोग का स्थान लेने के लिये निवेदन करना कहते हैं । 3। प्रपत्ति करते समय मंगलमय गुणों का स्मरण किया जाता है । श्रीमन्नारायण का

ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम माता लक्ष्मी के चरणों में पुरुष्कार प्रपत्ति करते हैं। माता लक्ष्मी के गुण हैं : क। स्वरूप निरूपक धर्म : सत्यत्व, ज्ञानत्व, अनन्तत्व, आनंदत्व, अमलत्व, एवं विष्णुपत्नीत्व। ख। **उपायत्व उपायुक्त गुण** : इसके बिना न तो माता लक्ष्मी और न परमात्मा ही **सद्योपाय** हो सकते हैं। इनकी संख्या बारह है। 1। वात्सल्य यानी दोष को अनदेखी कर देना। 2। स्वामीत्व। 3। सौशील्य यानी भक्तों से खुलकर मिलना। 4। सौलभ्य यानी सर्वदा सुलभ रूप से उपलब्ध रहना। 5। सर्वज्ञत्व यानी सब कुछ जानना। 6। सत्य संकल्पत्व यानी अटल इच्छा शक्ति। 7। परमकारुणिकत्व यानी बदले में बिना कुछ भी आशा किये भक्त का दुःख दूर करने के लिये असीम दया भाव रखना। 8। कृतज्ञत्व यानी उपकार को याद रखना। 9। स्थिरत्व यानी भक्त के संरक्षण का अटल संकल्प। 10। परिपूर्णत्व यानी सभी इच्छाओं से परिपूर्ण। 11। सर्वशक्तित्व यानी सर्वसमर्थ। 12। परमोदारत्व यानी भक्त को सबकुछ देने के लिये आतुर।

उपर्युक्त माता लक्ष्मी के गुण श्रीमन्नारायण के भी कल्याण गुण हैं, केवल विष्णुपत्नीत्व के स्थान पर श्रियपत्नित्व हो जाता है। प्रभु के चरणों में प्रपत्ति करते समय इन सभी कल्याण गुणों को स्मरण रखना है। शिव, इन्द्र, अयप्पन, गणेश, मुरुगन आदि देवान्तरों के प्रति सदैव भक्ति दिखाने पर श्रीमन्नारायण प्रपत्ति को निरस्त कर देते हैं। पाप कर्म करने, ब्रह्मविद् तथा श्रीमन्नारायण के परम भागवतों का अपचार करने से भी प्रपत्ति निरस्त हो जाती है।

तालिका 14 : तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (40 सूत्र, 8 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ²⁹
75। सन्ध्याधिकरण	3।2।1 से 3।2।6 तक	6	3।2।1
76। तदभावाधिकरण	3।2।7 से 3।2।8 तक	2	3।2।2
77। कर्मानुस्मृति शब्दविधि अधिकरण	3।2।9	1	3।2।3
78। मुग्धाधिकरण	3।2।10	1	3।2।4
79। उभयलिङ्ग अधिकरण	3।2।11 से 3।2।25 तक	15	3।2।5
80। अहिकुण्डल अधिकरण	3।2।26 से 3।2।29 तक	4	3।2।6
81। पराधिकरण	3।2।30 से 3।2।36 तक	7	3।2।7
82। फलाधिकरण	3।2।37 से 3।2।40 तक	4	3।2।8

²⁹ 3।2।1 यानी अध्याय 3 पाद 2 अधिकरण 1

तीसरे अध्याय का तीसरा पाद

(साधना अध्याय, गुणोपसंहार पाद, 64 सूत्र, 26 अधिकरण)

सभी अध्याय के सभी पादों की तुलना में तीसरे अध्याय के तीसरे पाद में सबसे ज्यादा सूत्र तथा अधिकरण हैं। पूर्व के पाद के भक्तियोग एवं न्यासयोग की पृष्ठभूमि में इस पाद में ब्रह्मविद्या के साथ प्राणविद्या तथा उदगीथविद्या का विवेचन किया गया है। प्राणविद्या मुख्य प्राण यानी श्वास पर ध्यान करने की विधि बताता है और उदगीथविद्या में प्रणव साधन की अनेकों विधियों का वर्णन है। उपनिषद के अतिरिक्त ये दोनों विद्या अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं इसलिये उपनिषद के तात्पर्यसार के रूप में रचे गये ब्रह्मसूत्र में भी इनका विवरण दिया गया है। पाद के नाम में 'उपसंहार' का तात्पर्य है निष्कर्ष या गुणों को संग्रह करना। कुछ ब्रह्मविद्या एक से ज्यादा उपनिषद में उल्लिखित हैं। अतः विभिन्न उपनिषदों में वर्णित परमात्मा के गुणों के संग्रह पर ध्यान की आवश्यकता है।

83 | सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरण 5 सूत्र 3|3|1 से 3|3|5 तक (अधि 3|3|1)

इस अधिकरण में 5 सूत्र हैं तथा इसका विषय वस्तु है कि क्या विभिन्न उपनिषदों में वर्णित वैश्वानर एक हैं या भिन्न भिन्न हैं। पूर्वपक्षी इन्हें भिन्न कहते हैं क्योंकि विभिन्न उपनिषद में इनके प्रसंग भिन्न है। सूत्र 3|3|1 'सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्' का तात्पर्य है कि यह विद्या एक ही भिन्न नहीं है। 'चोदना अविशेषात्' में 'चोदना' का अर्थ है नाम, फल, प्रेरणा, तथा ध्यान की वस्तु के गुण, और 'अविशेषात्' का अर्थ है समानता। प्रत्येक विद्या में प्रेरणा तथा आदेश निहित रहता है कि भक्तियोग को कैसे संपादित करें। सबों में विषय वस्तु श्रीमन्नारायण एक हैं और किसी समान विशेष गुण का विवेचन सबों में पस्तुत है तो नाम भी सबों में एक ही रहेगा। जब नाम एक ही है तो उनके गुणों के उपसंहार यानी संग्रह का प्रश्न उठता है। एक ही विद्या भिन्न भिन्न उपनिषद में एक ही विषय को पृथक समय में पृथक स्थान पर पृथक विद्यार्थी दल को पढ़ाने जैसा है। इसी तरह छान्दोग्य, तैत्तिरीय, एवं बृहदारण्यक में उल्लिखित 'दहराविद्या' का है। एक ही विद्या विभिन्न उपनिषदों का विषय वस्तु बन गया है।

84 | अन्यथात्वाधिकरण 4 सूत्र 3|3|6 से 3|3|9 तक (अधि 3|3|2)

तीसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 4 सूत्र हैं तथा इसका विषय वस्तु 'उदगीथविद्या' है। इसका उल्लेख छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक दोनों उपनिषद में है। संशय होता है कि दोनों जगह एक ही विद्या को विवेचन का विषय बनाया गया है या भिन्न भिन्न को। छान्दोग्य में उदगीथ के एक अवयव पर ध्यान का उल्लेख है जबकि बृहदारण्यक में संपूर्ण पर यानी मुख्य प्राण पर ध्यान करने का विवेचन है। अतः दोनों जगह ये समान न होकर पृथक हैं।

85 | सर्वाभिदाधिकरण 1 सूत्र 3|3|10 (अधि 3|3|3)

तीसरे पाद के तीसरे अधिकरण में 1 सूत्र है तथा 'प्राणविद्या' इसका विषय वस्तु है। इसका उल्लेख छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तथा कौषीतकी में पाया जाता है। छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक में समान विषय वस्तु है जबकि कौषीतकी का विषय वस्तु थोड़ा भिन्न है। अतः संशय है कि क्या ये समान हैं ? पूर्वपक्षी कहते हैं कि

कौपीतकी के मुख्यप्राण के गुण अन्य दोनों उपनिषद से भिन्न है। सिद्धान्त सूत्र कहता है कि कौपीतकी में मुख्यप्राण वायु के गुण तथा छान्दोग्य एवं बृहदारण्य में मुख्यप्राण वायु के गुण में विरोधाभास नहीं है। सूत्र 3 | 3 | 10 'सर्वाभेदादन्यत्रेमे' यानी 'सर्व अभेदात् अन्यत्र इमं' अर्थात् यह अभेद के कारण है और गुण में कोई अन्तर नहीं है। कौपीतकी छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक के गुण का संग्रह करके ध्यान करना है। उपनिषद में एक कथा का प्रसंग है। प्राणवायु बुद्धि तथा इन्द्रियों में कौन श्रेष्ठ है पर आपस में विवाद हो गया। सब के अभिमानी देवों ने चतुर्मुख ब्रह्मा से निर्णय करने को कहा। चतुर्मुख ब्रह्मा के कहने पर उनलोगों ने एक एक कर शरीर का त्याग किया। पहले वाणी निकली। आदमी गूंगा बना रहा परंतु अन्य इन्द्रियां काम करती रहीं। वाणी शरीर में पुनः लौट आयी। अब आंख बाहर निकल गयी। आदमी अंधा बनारहा परंतु अन्य कार्य चलते रहे। आंख पुनः शरीर में वापस लौट आयी। इस तरह से अन्य इन्द्रियों ने भी अपनी महत्ता को आजमाया। अब बुद्धि बाहर निकली परंतु आदमी का बालक एवं बूढ़े की तरह चित्त की एकाग्रता गंवा कर कार्य करता रहा। बुद्धि वापस आ गयी। अब अंतिम बारी मुख्यप्राण की थी। इसके निकलते सारी इन्द्रियां स्वयंमेव बाहर निकल गयीं। शरीर शव बन गया। मुख्यप्राण के लौटते ही सारी इन्द्रियां भी लौट कर कार्यरत हो गयीं। शरीर अपनी सामान्य स्थिति में वापस आ गया। वाणी ने मुख्यप्राण को 'वशिष्ट' यानी सर्वश्रेष्ठ कहा। आंख ने इसे 'प्रतिष्ठा' कही। कान ने इसे 'संपत्त' कहा। बुद्धि ने इसे 'आयतन' कही। ध्यान करने वाले गुण हैं : 1। ज्येष्ठत्वम् यानी वरीयतम्। 2। श्रेष्ठत्वम् यानी सर्वोत्तम्। 3। वशिष्टत्वम् यानी सर्वश्रेष्ठ वक्ता। 4। प्रतिष्ठतम् यानी बुद्धि में संतुलन। 5। सम्पत्त्वम् यानी विद्वत्ता। 6। आयतनत्वम् यानी सभी सुख भोगनेवाला शरीर। इस कथा को प्राणसंवाद कहते हैं। चूंकि प्राणविद्या एवं उदगीथ विद्या को ब्रह्मविद्या की श्रेणी में नहीं रखा गया है अतः इनके मोक्षफल नहीं हैं।

86 | आनंदाद्यधिकरण 7 सूत्र 3 | 3 | 11 से 3 | 3 | 17 तक (अधि 3 | 3 | 4)

तीसरे पाद के चौथे अधिकरण में 7 सूत्र हैं। सभी ब्रह्मविद्या में 'स्वरूप निरूपक धर्म' पर ध्यान करने को कहा गया है। यह परमात्मा का कल्याण गुण है। पूर्वपक्षी कहते हैं कि जब यह किसी एक ब्रह्मविद्या से नहीं जुड़ा है तब इसपर ध्यान की आवश्यकता नहीं है। इसको निरस्त करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि श्रीमन्नारायण उपास्य हैं यानी ध्यान के विषय वस्तु हैं और ये कल्याण गुण आपके स्वरूप का निर्धारण करते हैं तो इनके ध्यान से श्रीमन्नारायण का ध्यान होता है। इसलिये सभी ब्रह्म विद्या में इसे ध्यान करने को कहा गया है। ये छः गुण हैं : सत्यत्व, ज्ञानत्व, अनन्तत्व, आनन्दत्व, अमलत्व, एवं श्रियःपतित्व।

87 | कार्याख्यानाधिकरण 1 सूत्र 3 | 3 | 18 (अधि 3 | 3 | 5)

तीसरे पाद के पाचवें अधिकरण में 1 सूत्र है। प्राणविद्या का विवेचन करने वाले सर्वाभेदाधिकरण का यह अगला भाग है। मुख्यप्राण को जब सभी इन्द्रियों ने नेता स्वीकार कर लिया तो उसने इन्द्रियों से अपने वस्त्र के बारे में पूछा। इन्द्रियों ने जल को उसका वस्त्र बताया। इसीलिये भोजन से पूर्व में तथा अंत में जल से आचमन करते हैं। प्राणविद्या ब्रह्मविद्या की श्रेणी में नहीं आता।

88 | समानाधिकरण 1 सूत्र 3 | 3 | 19 (अधि 3 | 3 | 6)

तीसरे पाद के छठे अधिकरण में 1 सूत्र है। वाजसनेयक के अग्निरहस्य में इसे शाण्डिल्य विद्या कहते हैं। इसका उल्लेख बृहदारण्यक में भी है। दोनों के कल्याण गुण में कुछ विभेद है। संशय है कि दोनों शाण्डिल्य विद्या एक हैं या भिन्न हैं। पूर्वपक्षी इसे भिन्न कहते हैं परंतु सूत्रकार ने इसे 3।3।19 'समान एवं चाभेदात्' से एक प्रमाणित किया है।

89। सम्बन्धाधिकरण 3 सूत्र 3।3।20 से 3।3।22 तक (अधि 3।3।7)

तीसरे पाद के सातवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। बृहदारण्यक में श्रीमन्नारायण की उपासना के क्रम में सूर्यमंडल के केन्द्र में भगवान की दायीं आंख में ध्यान करने को कहा है। परमात्मा को व्याहृतिशरीरक कहा है। व्याहृति से भू, भुवः, स्वः, महर, जन, तप, एवं सत्य नाम से सभी लोक को आपका शरीर बताया है। आपको एकमात्र सत् कहा है। संशय है कि सूर्यमंडल का ध्यान एवं दायीं आंख के ध्यान समान हैं या भिन्न भिन्न हैं। सूत्र 3।3।20 'सम्बन्धादेवमन्यत्रापि' से पूर्वपक्षी समान बताते हैं परंतु सिद्धान्त सूत्र 3।3।21 'न वा विशेषात्' से इसे भिन्न बताते हैं क्योंकि दोनों में रूप का अन्तर है।

90। संभृत्यधिकरण 1 सूत्र 3।3।23 (अधि 3।3।8)

तीसरे पाद के आठवें अधिकरण में 1 सूत्र है। राणायणी एवं खिल श्रुति में उपासना का उल्लेख है। खिल श्रुति उसे कहते हैं जिसका पहले एवं बाद का भाग लुप्त हो गया है आज के दिन उपलब्ध नहीं है। परमात्मा सर्वश्रेष्ठ हैं तथा आप अपने शौर्य में भी सर्वोत्तम हैं। आप संपूर्ण स्वर्गलोक यानी द्युलोक को आच्छादित किये हुए हैं। संशय है कि इस गुण का ध्यान होगा कि नहीं। चूंकि ये गुण किसी एक ब्रह्मविद्या से नहीं जुड़े हैं अतः पूर्व पक्षी का मत है कि इनका ध्यान होगा। सिद्धान्त सूत्र 3।3।23 'संभृतिदयुव्याप्यपि च अतः' से कहा गया है कि ये गुण अल्पस्थान विद्या यानी भगवान के अन्तर्यामी होने से सम्बन्ध रखता है अतः ध्यान की वस्तु नहीं है। परमात्मा अन्तर्यामी होकर साधक के छोट हृदय में रहते हैं परंतु गुण बताता है कि आप स्वर्गलोक को आच्छादित किये हैं अतः सामंजस्य न होने से ध्यान नहीं होगा। अल्पस्थान विद्या शाण्डिल्य विद्या एवं दहरा विद्या आदि हैं अतः उक्त 'द्यु व्याप्ति' का ध्यान नहीं होगा।

91। पुरुषविद्याधिकरण 1 सूत्र 3।3।24 (अधि 3।3।9)

तीसरे पाद के नौवें अधिकरण में 1 सूत्र है। इसका विषय वाक्य छान्दोग्य एवं तैत्तिरीय में है। तैत्तिरीय के अनुसार पुरुषविद्या न्यास विद्या का सहायक है तथा इसे मोक्ष फल प्राप्त है। छान्दोग्य में इसका उल्लेख साधक को दीर्घायु बनाने के लिये किया गया है। पूर्वपक्षी दोनों उपनिषद में एक नाम रहने से दोनों को एक बताते हैं। सूत्र 3।3।24 'पुरुषविद्यायामपि चेतरेषामनाम्नानात्' से दोनों को भिन्न कहा गया है क्योंकि उनके फल भिन्न हैं।

92। वेधाद्यधिकरण 1 सूत्र 3।3।25 (अधि 3।3।10)

तीसरे पाद के दसवें अधिकरण में 1 सूत्र है। पुराकाल से वेद पाठ के प्रारंभ में शांति पाठ करने की परम्परा है। ये शांति पाठ उस शाखा में दिये गये ब्रह्म विद्या से मिलते जुलते हैं। प्रत्येक शाखा का शांति पाठ भिन्न भिन्न है। संशय है कि शांति पाठ उस शाखा के ब्रह्म विद्या का सहायक अंग है या नहीं। पूर्वपक्षी कहते हैं कि शांति

पाठ ब्रह्मविद्या का सहायक है। कुछ शांति पाठ अन्य कार्य में भी उपयोग में लाये जाते हैं। कुछ मंत्र 'शं नो मित्रः शं वरुणः' तथा 'सह नाववतु' आदि के अन्य उपयोग नहीं है इसलिये ये विद्या के अंग हैं। सूत्र 3।3।25 'वेधाद्यर्थभेदात्' से सूत्रकार पूर्वपक्षी को नकारते हुए शान्ति पाठ को विद्या का अंग नहीं मानते।

93 | हानि अधिकरण 1 सूत्र 3।3।26 (अधि 3।3।11)

तीसरे पाद के ग्यारहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। भक्तियोगनिष्ठ प्रपन्न के पुण्य पाप कर्म की गति तथा शरीर छोड़ने पर मोक्ष प्राप्ति इस अधिकरण का विषयवस्तु है। इसका उल्लेख अनेकों उपनिषद में है। 1। छान्दोग्य कहता है कि प्रपन्न अपने कर्म को उसी तरह छोड़ कर शरीर से बाहर निकलता है जैसे घोड़ा अपने बाल को गिरा देता है तथा चन्द्रमा राहु से मुक्त होता है। तत्पश्चात् वह अकृतम यानी परमात्मा के नित्यविभूति वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। वैकुण्ठ में न तो कोई सृष्टि होती है और न कोई संहार। इसीलिये इसे अकृतम तथा नित्यविभूति कहते हैं। एक ब्रह्मांड के सभी जगत को परमात्मा का लीला विभूति कहते हैं जहां सृष्टि तथा संहार का क्रम क्रीड़ा की तरह चलते रहता है। इसीलिये परमात्मा को उभयविभूति नाथ कहते हैं। विभूति का तात्पर्य संपदा ऐश्वर्य से है। 2। मुण्डक में बताया है कि विद्वान् प्रपन्न शरीर छोड़ने के बाद कर्मों का त्याग करके भगवान् जैसा बनकर वैकुण्ठ में रहता है। 3। वेद की सत्यायनी शाखा कहती है कि विद्वान् प्रपन्न के कर्म पुत्रों को मिलता है। पुण्य मित्रवत को तथा पाप शत्रुवत को बंट जाता है। 4। कौपीतकी में उल्लेख है कि विद्वान् प्रपन्न का पुण्य उसके मित्रवत सम्बन्धियों को तथा पाप शत्रुवत व्यक्तियों को बंट जाता है।

कर्मों को छोड़ना ही 'हानि' हुई तथा उसका स्थानान्तरण 'उपयन' कहा गया। पूर्व के तालिका 13 में बताये गये ब्रह्मविद्या के अभ्यास के समय उक्त हानि तथा उपयन पर विचार किया जाता है। न्यास को छोड़कर अन्य सभी ब्रह्मविद्या में विचार का क्रम चलता है तथा यह भक्तियोग का सहायक अंग है। कुछ उपनिषद में कर्म की हानि का उल्लेख है जबकि कुछ अन्य में केवल हानि का उल्लेख है परंतु कुछ में हानि एवं उपयन दोनों का उल्लेख है। संशय यह होता है कि साधक किस पर विचार करेगा हानि पर या उपयन पर या दोनों पर। केवल हानि या उपयन को विकल्प कहते हैं जबकि दोनों को समुच्चय कहते हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि उपनिषद के अनुसार विकल्प या समुच्चय कुछ भी हो सकता है। सूत्रकार विपक्ष का खंडन करते हुए 3।3।26 से समुच्चय को सिद्ध करते हैं।

94 | साम्पराय अधिकरण 5 सूत्र 3।3।27 से 3।3।31 तक (अधि 3।3।12)

तीसरे पाद के बारहवें अधिकरण में 5 सूत्र है। भक्तियोगनिष्ठ प्रपन्न अपने कर्म का त्याग कब करता है शरीर छोड़ते समय या विरजा नदी पहुंच कर। विरजा नदी प्रकृति मंडल एवं दिव्यधाम वैकुण्ठ की सीमा पर है। कौपीतकी में विरजा तट पर कर्म छोड़ने का उल्लेख है जबकि अन्य उपनिषद शरीर छोड़ते समय बताते हैं। सूत्र 3।3।27 'साम्पराये तर्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये' में 'साम्पराये' का अर्थ है शरीर छोड़ने के समय। अतः निष्कर्ष निकला कि विद्वान् प्रपन्न देहान्त के समय कर्म को त्याग देता है क्योंकि उसके बाद भोगने के लिये उसे कुछ बाकी नहीं रह जाता। इसके बाद सूक्ष्म शरीर से अर्चिरादि मार्ग के द्वारा अपने भक्तियोग या प्रपत्ति के कारण वह वैकुण्ठ जाता है। सूक्ष्म शरीर तो मार्ग के अभिमानी देव जैसे चन्द्र से बातचीत के लिये है।

95 | अनियमाधिकरण 1 सूत्र 3|3|32 (अधि 3|3|13)

तीसरे पाद के तेरहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। जो भक्तियोग या प्रपत्ति करते हैं वे अर्चिरादि से वैकुण्ठ जाते हैं या अर्चिरादि से वैकुण्ठ जानेवाले केवल उपकोसल विद्या या पंचाग्नि विद्या वाले ही हैं। क्योंकि उपकोसल एवं पंचाग्नि के प्रसंग में ही अर्चिरादि का उल्लेख मिलता है। सूत्रकार यह सिद्ध करते हैं कि सभी प्रपन्न अर्चिरादि से ही मोक्षधाम वैकुण्ठ जाते हैं अन्य कोई मार्ग है ही नहीं। अर्चिरादि से जानेवाले का पुनर्जन्म नहीं होता। सूत्र 3|3|32 'अनियमः सर्वेषामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम्' का यह तात्पर्य है कि कोई विशेष पृथक् नियम मात्र उपकोसल तथा पंचाग्नि के लिये नहीं है।

96 | अक्षरार्थधिकरण 2 सूत्र 3|3|33 से 3|3|34 (अधि 3|3|14)

तीसरे पाद के चौदहवें अधिकरण में 2 सूत्र हैं। यहां परमात्मा के 'अमल' कल्याण गुण पर ध्यान करने को बताया गया है। इसका तात्पर्य निर्मल से है जिसे हेयप्रत्यनीकत्व कहते हैं। हेय यानी मल या दोष। इस गुण का सार बृहदारण्यक में है जहां याज्ञवल्क्य गार्गी के प्रश्नों का समाधान करते हैं। अक्षर कहे जाने वाले परमात्मा को जो समझ लेने वाले ब्राह्मण हैं वे दिव्यात्मा स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं। परमात्मा के सहज गुण हैं : क। अस्थूल यानी जो बृहत न हो। ख। अणु यानी जो सूक्ष्म न हो। ग। अह्रस्वं जो छोटा न हो। घ। अदीर्घ यानी जो लम्बा न हो। ङ। अलोहितं यानी रक्तिम न हो। च। अस्नेहं यानी जो चिकना न हो। छ। अछायं यानी जो छायाहीन हो। ज। अतम यानी जो अंधकार न हो। झ। अवायु यानी जो हवा न हो। ञ। अनाकाशं यानी जो शून्य स्थान न हो। ट। असंगम यानी जो सम्बन्धहीन हो। ठ। अरसम यानी जो स्वादहीन हो। ड। अगंधम यानी जो गंधहीन हो। त। अचक्षुम यानी नेत्रहीन हो। थ। अश्रोत्रम यानी बिना कान का हो। द। अवाक् यानी जो वाणीहीन हो। ध। अमनः यानी जो मनहीन हो। न। अतेजकम यानी प्रकाशहीन हो। प। अप्राणम यानी प्राणहीन हो। फ। अमुख्रम यानी मुखहीन हो। ब। अनर्त्तम यानी जो भीतर न हो। भ। अबाह्यम यानी जो बाहर न हो। म। तत् अकिंचनस्नाति यानी कुछ भी न खाता हो। य। न तत्स्नाता कश्चन् यानी न तो कोई उसे खा सकता। उपर्युक्त का सार है कि दिव्यात्मा परमात्मा में कोई मल नहीं है। सूत्र 3|3|33 'अक्षरधियां त्वरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम्' का 'अक्षर धियं' का तात्पर्य है कि उपर्युक्त सब विद्या में ध्यान करने के लिये हैं।

97 | अन्तरत्वाधिकरण 3 सूत्र 3|3|35 से 3|3|37 (अधि 3|3|15)

तीसरे पाद के पन्द्रहवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। बृहदारण्यक में उपस्त ऋषि ने याज्ञवल्क्य मुनि से प्रश्न किया कि साक्षात् अनुभूति वाले तथा सबके अन्तर्यामी ब्रह्म कौन हैं। इसीतरह का प्रश्न कहोल ऋषि का भी है। दोनों ने एकतरह का प्रश्न किया परंतु याज्ञवल्क्य मुनि ने दो तरह से समाधान किया जो उपस्तविद्या तथा कहोल विद्या के नाम से जाने गये। संशय है कि दोनों विद्या एक हैं या भिन्न हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि समाधान भिन्न है इसलिये ये भिन्न विद्या हैं। सूत्रकार ने विपक्षी को नकारते हुए सिद्ध किया है कि दोनों समाधान एक ही परमात्मा से सम्बन्ध रखता है इसलिये भिन्न नहीं है।

98 | कामाद्यधिकरण ३ सूत्र ३|३|३८ से ३|३|४० तक (अधि ३|३|१६)

तीसरे पाद के सोलहवें अधिकरण में ३ सूत्र हैं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक में दहरविद्या का उल्लेख है। संशय है कि दोनों का विषय एक ही विद्या है या अलग अलग है। पूर्वापक्षी का मत है कि ये भिन्न हैं क्योंकि छान्दोग्य में परमात्मा को आकाश कहा गया है तथा उनके आठ कल्याण गुण का उल्लेख है जबकि बृहदारण्यक में परमात्मा को आकाश पर शयन करने वाला बताया गया है तथा आपके वशित्व कल्याण गुण का उल्लेख है। सूत्रकार ने विपक्ष को नकारते हुए दोनों को एक बताया तथा छान्दोग्य के आठ गुण को बृहदारण्यक के वशित्व के साथ जोड़कर ध्यान करने को कहा।

99 | तन्निर्धारणानियमाधिकरण १ सूत्र ३|३|४१ (अधि ३|३|१७)

तीसरे पाद के सतरहवें अधिकरण में १ सूत्र है। प्रणव पर ध्यान करने वाले उद्गीथविद्या का यहां विवरण प्रस्तुत है। इसका अभ्यास यज्ञ का सहायक मानकर अवरोध निवारण हेतु उच्च कोटि के फल प्राप्ति के लिये किया जाता है। संशय है कि उद्गीथका अभ्यास आवश्यक है या वैकल्पिक है। पूर्वमीमांसा में दो सिद्धान्त हैं। पहला है 'गोदोहनेन पशुकामस्य प्रणयेत' अर्थात् कोई व्यक्ति अगर गाय प्राप्त करना चाहता है तो दूध दूहने वाले पात्र से जल डालकर चावल या गेहूं के चूर्ण का पुरोडाश यानी अवलेह बनाये तथा अग्नि में अर्पित करे। जल डालकर पुरोडाश बनाने को प्रणयन कहते हैं। पहला सिद्धान्त वैकल्पिक कार्य के लिये है। दूसरा सिद्धान्त 'पर्ण मयी जुहु' है अर्थात् जिस तरह से यज्ञाग्नि में घी की आहुति के लिये काठ के बने लंबे कलछी यानी जुहु की आवश्यकता है उसीतरह संकल्पित कार्य आवश्यक है। अधिकरण का निष्कर्ष है कि उद्गीथका अभ्यास 'गोदोहन' न्याय से वैकल्पिक है न कि आवश्यक।

100 | प्रदानाधिकरण १ सूत्र ३|३|४२ (अधि ३|३|१८)

तीसरे पाद के अठारहवें अधिकरण में १ सूत्र है। दहर विद्या में उल्लेख है कि स्वरूप निरूपण धर्म के अतिरिक्त आठ और कल्याण गुण पर ध्यान करते हैं ॥ १। अपहतपाप्मा यानी जो पाप रहित हों। २। विजर यानी बुद्धापारहित। ३। विमृत्यु यानी मृत्युहीन। ४। विशोक यानी दुःख रहित। ५। विजिघत्स यानी भूख रहित। ६। अपिपासा यानी प्यास रहित। ७। सत्यकाम यानी इच्छा से सबकुछ प्राप्त करना। ८। सत्यसंकल्प यानी दृढ़ इच्छाशक्ति। संशय है कि परमात्मा पर ध्यान करने के बाद इन आठ गुणों पर ध्यान करना है या परमात्मा को इन आठ गुणों के साथ जोड़ देना है। पूर्वापक्षी कहते हैं कि आठ गुण का ध्यान पर्याप्त है जबकि सूत्रकार इसे नकारते हुए कहते हैं कि परमात्मा को इन आठ गुणों से जोड़ देना है।

101 | लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण १ सूत्र ३|३|४३ (अधि ३|३|१९)

तीसरे पाद के उन्नीसवें अधिकरण में १ सूत्र है। लंबे संशय के बाद सूत्रकार कहते हैं कि ध्यान के सर्वश्रेष्ठ वस्तु कौन हैं। तैत्तिरीय उपनिषद के नारायण अनुवाक्य का प्रसंग उद्धृत किया गया है। दहरविद्या के ठीक बाद इस अनुवाक्य का उल्लेख है। पूर्वापक्षी नारायण अनुवाक्य को दहरविद्या का सहायक मानने का विरोध करते हैं। सूत्र ३|३|४३ 'लिङ्ग भूयस्त्वात् तद्वि बलीयः तदपि' में लिङ्ग का अर्थ है संकेत। नारायण अनुवाक्य में अक्षर शंभु इन्द्र चतुर्मुख ब्रह्मा आदि शब्द नारायण के लिये उपयोग में लाये गये हैं। तात्पर्य है कि अन्तर्यामी बनकर

श्रीमन्नारायण ही उक्त देवों में स्थित हैं। अक्षर एवं प्रज्योति आदि शब्द सीधे श्रीमन्नारायण का संकेत करते हैं। अतः सूत्रकार का निर्णय है कि सभी ब्रह्मविद्या में श्रीमन्नारायण ही ध्येय हैं।

102 | पूर्वविकल्पाधिकरण 7 सूत्र 3|3|44 से 3|3|50 तक (अधि 3|3|20)

तीसरे पाद के बीसवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं। सूत्रकार ने अग्निरहस्य से इसके महत्व को बताया है पर यह गुणोपसंहार पाद के प्रसंग से बाहर है।

103 | शरीरेभावाधिकरण 2 सूत्र 3|3|51 से 3|3|52 तक (अधि 3|3|21)

तीसरे पाद के इक्कीसवें अधिकरण में 2 सूत्र हैं। प्रत्येक ब्रह्मविद्या में तीन बातों का ज्ञान आवश्यक है। 1। उपास्य यानी श्रीमन्नारायण का स्वभाव। 2। उपासना यानी ब्रह्मविद्या की प्रकृति। 3। उपासक का स्वभाव। अनुमानिकाधिकरण यानी 1|4|1 अधिकरण का सूत्र 1|4|6 'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च'। 'त्रयाणामेव' यानी उपर्युक्त तीन बातें। जीव परमात्मा का शरीर है इसलिये परमात्मा ही जीव की आत्मा हैं। जीव का स्वभाव दो तरह का है। एक जब वह संसार में है एवं दूसरा जब वह दिव्य वैकुण्ठ में जाता है। जीव जब संसारी है तब वह ज्ञाता, कर्ता, तथा आनन्दभोक्ता है। श्रीमन्नारायण के आठ गुण इसके वैकुण्ठ में स्वभाव हैं जो दिव्य पर्यक पर आरूढ़ होते ही प्रस्फुटित हो जाते हैं ॥ 1। अपहतपाप्मा यानी जो पाप रहित हों। 2। विजर यानी बुद्धापारहित। 3। विमृत्यु यानी मृत्युहीन। 4। विशोक यानी दुःख रहित। 5। विजिघत्स यानी भूख रहित। 6। अपिपासा यानी प्यास रहित। 7। सत्यकाम यानी इच्छा से सबकुछ प्राप्त करना। 8। सत्यसंकल्प यानी दृढ़ इच्छाशक्ति।

यहां संशय यह उत्पन्न होता है कि जीव जो ध्यान करता है वह ज्ञाता, कर्ता, तथा आनन्दभोक्ता के रूप में करता है या दिव्यधाम वैकुण्ठ के आठ गुणों से युक्त साधक के रूप में। विपक्षी इसे संसारी जैसा मानते हैं। सूत्र 3|3|52 'व्यतिरेकस्तदभावभावित्वान्न तूपलब्धिवत्' में 'व्यतिरेक' का अर्थ है पृथक। अर्थात् जीव को आठ गुणों से युक्त होकर ही साधक माना जाना सिद्ध हुआ जो मोक्ष के समय प्रस्फुटित होते हैं।

104 | अङ्गावबद्धाधिकरण 2 सूत्र 3|3|53 से 3|3|54 तक (अधि 3|3|22)

तीसरे पाद के बाइसवें अधिकरण में 2 सूत्र हैं। यह उदगीथसे जुड़ा हुआ है। इसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्म विद्या से नहीं है।

105 | भूमज्यायस्त्वाधिकरण 1 सूत्र 3|3|55 (अधि 3|3|23)

तीसरे पाद के तेइसवें अधिकरण में 1 सूत्र है। इसका विषय वैश्वानर विद्या है। यहां दो तरह की उपासना प्रचलित है। 1। वैश्वानर पुरुष के प्रत्येक अवयव पर ध्यान करना यानी व्यस्त उपासना। 2। वैश्वानर पुरुष का समग्र उपासना यानी समस्त उपासना। पूर्वपक्षी व्यस्त के पक्ष में हैं जबकि सूत्रकार समस्त को लाभकारी सिद्ध करते हैं क्योंकि व्यस्त में मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होने का खतरा है।

106 | शब्दादिभेदाधिकरण 1 सूत्र 3|3|56 (अधि 3|3|24)

तीसरे पाद के चौबीसवें अधिकरण में 1 सूत्र है। यहां संशय है कि तालिका 13 में संग्रहित 32 ब्रह्मविद्या एक हैं या भिन्न हैं। पूर्वपक्षी कहते हैं कि सब एक ही हैं क्योंकि ध्येय वस्तु परमात्मा एक ही श्रीमन्नारायण हैं। सूत्रकार का मत है कि सब ब्रह्मविद्या भिन्न हैं चूंकि सबके ध्येय कल्याण गुण में विभेद है।

107 | विकल्पाधिकरण 1 सूत्र 3|3|57 (अधि 3|3|25)

तीसरे पाद के पच्चीसवें अधिकरण में 1 सूत्र है। यहां संशय होता है कि मोक्षार्थी को सब 32 विद्याओं द्वारा उपासना यानी ध्यान करना है या कोई एक पर्याप्त है। सूत्र 3|3|57 'विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात्' का तात्पर्य है कि साधक के लिये कोई एक से साधना पर्याप्त है क्योंकि मोक्षफल विशेष सब में एक ही है जो वैकुण्ठ के परमआनन्द की प्राप्ति है। सब 32 से साधना तो असंभव भी है अतः एक ही पर्याप्त है।

108 | यथाश्रयभावाधिकरण 7 सूत्र 3|3|58 से 3|3|64 तक (अधि 3|3|26)

तीसरे पाद के छब्बीसवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं। यह अधिकरण इस पाद के 17 वें तन्निर्धारणानियमाधिकरण की पुनरावृत्ति है जिसमें यह प्रतिपादित हुआ कि उद्गीथ 'गोदोहन' न्याय जैसा एक वैकल्पिक विधि है। पूर्वपक्षी ने प्रत्येक यज्ञ में उद्गीथ की आवश्यकता के पक्ष में कई नये तर्क प्रस्तुत किये। अतः इसकी पुनरावृत्ति इसी कारण से हुई। सूत्रकार ने पूर्व के निर्णय की स्थिति बनायी रखी तथा पूर्वपक्षी के प्रत्येक मत के उचित समाधान दिये।

तीसरे अध्याय को साधना अध्याय कहते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये साधना की जाती है जो भक्तियोग है और ब्रह्म विद्या भी कहा जाता है। इस पाद में यह बताया गया कि श्रीमन्नारायण पर अचल एवं निरंतर ध्यान ही भक्तियोग का सार है। 32 ब्रह्मा विद्या में से 31 भक्तियोग के द्योत्तक हैं जबकि अंतिम विद्या प्रपत्ति है जिसे न्यासविद्या भी कहते हैं। भक्तियोग को अष्टांग योग भी कहते हैं। प्रपत्ति के पांच महत्वपूर्ण सहयोगी हैं। 31 ब्रह्मविद्या में से एक को पंचाग्नि विद्या कहते हैं। पंचाग्नि में साधक अपने पर ध्यान करता है जिसमें अपने को परमात्मा का शरीर मानता है तथा परमात्मा को अपनी आत्मा मानता है। अन्य 30 में परमात्मा ही ध्यान के वस्तु हैं जिसमें जीव की आत्मा परमात्मा का शरीर माना जाता है।

प्रपत्ति में कोई ध्यान की प्रक्रिया नहीं है बल्कि श्रीमन्नारायण के दिव्यचरणों में शरणागति करते हुए व्यक्ति स्वरूप समर्पण, भार समर्पण, तथा फल समर्पण करता है।

जीव के प्रमुख स्वभाव हैं : 1। ज्ञाता है। 2। कर्ता है। 3। कर्म का भोक्ता है। 4। स्वयंप्रकाशित है। 5। स्वयं को बिना बाहरी सहायता के जानने में सक्षम है। 6। परमाणु की आकार का है। 7। शाश्वत है। 8। विभाजनशील नहीं है। 9। शरीर से भिन्न है। 10। इन्द्रियों से भिन्न है।

तालिका 15 : तीसरे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (64 सूत्र, 26 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ³⁰
83 सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरण	३ ३ १ से ३ ३ ५ तक	५	३ ३ १
84 अन्यथात्वाधिकरण	३ ३ ६ से ३ ३ ९ तक	४	३ ३ २
85 सर्वाभेदाधिकरण	३ ३ १०	१	३ ३ ३
86 आनंदाद्यधिकरण	३ ३ ११ से ३ ३ १७ तक	७	३ ३ ४
87 कार्याख्यानाधिकरण	३ ३ १८	१	३ ३ ५
88 समानाधिकरण	३ ३ १९	१	३ ३ ६
89 सम्बन्धाधिकरण	३ ३ २० से ३ ३ २२ तक	३	३ ३ ७
90 संभृत्यधिकरण	३ ३ २३	१	३ ३ ८
91 पुरुषविद्याधिकरण	३ ३ २४	१	३ ३ ९
92 वेधाद्यधिकरण	३ ३ २५	१	३ ३ १०
93 हानि अधिकरण	३ ३ २६	१	३ ३ ११
94 साम्पराय अधिकरण	३ ३ २७ से ३ ३ ३१ तक	५	३ ३ १२
95 अनियमाधिकरण	३ ३ ३२	१	३ ३ १३
96 अक्षरध्यधिकरण	३ ३ ३३ से ३ ३ ३४ तक	२	३ ३ १४
97 अन्तरत्वाधिकरण	३ ३ ३५ से ३ ३ ३७ तक	३	३ ३ १५
98 कामाद्यधिकरण	३ ३ ३८ से ३ ३ ४० तक	३	३ ३ १६
99 तन्निर्धारणानियमाधिकरण	३ ३ ४१	१	३ ३ १७
100 प्रदानाधिकरण	३ ३ ४२	१	३ ३ १८
101 लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण	३ ३ ४३	१	३ ३ १९
102 पूर्वविकल्पाधिकरण	३ ३ ४४ से ३ ३ ५० तक	७	३ ३ २०
103 शरीरेभावाधिकरण	३ ३ ५१ से ३ ३ ५२ तक	२	३ ३ २१
104 अङ्गावबन्धाधिकरण	३ ३ ५३ से ३ ३ ५४ तक	२	३ ३ २२
105 भूमज्यायस्त्वाधिकरण	३ ३ ५५	१	३ ३ २३
106 शब्दादिभेदाधिकरण	३ ३ ५६	१	३ ३ २४
107 विकल्पाधिकरण	३ ३ ५७	१	३ ३ २५
108 यथाश्रयभावाधिकरण	३ ३ ५८ से ३ ३ ६४ तक	७	३ ३ २६

³⁰ ३ | ३ | १ यानी अध्याय ३ पाद ३ अधिकरण १

तीसरे अध्याय का चौथा पाद

(साधना अध्याय, अंग पाद, 51 सूत्र, 15 अधिकरण)

तीसरे अध्याय के चौथे पाद में भक्तियोग के सहायक अवयवों का विवरण प्रस्तुत है। तीसरे अध्याय का तीसरा पाद सबसे ज्यादा सूत्रों वाला तथा सबसे ज्यादा अधिकरणों वाला पाद है। सूत्रों की संख्या में तीसरा अध्याय अपने में सबसे बड़ा अध्याय है। कुल 545 सूत्र में से तीसरे अध्याय में 182 सूत्र हैं तथा 156 अधिकरणों में से तीसरे अध्याय में 55 अधिकरण हैं।

109 | पुरुषार्थ अधिकरण 20 सूत्र 3|4|1 से 3|4|20 तक (अधि 3|4|1)

चौथे पाद के पहले अधिकरण में 20 सूत्र हैं। ब्रह्म सूत्र में कुल 545 सूत्र हैं तथा 156 अधिकरण हैं। सभी अधिकरणों में यह सबसे ज्यादा सूत्रों वाला अधिकरण है। किसी अन्य अधिकरण में 20 सूत्र नहीं हैं। पुरुषार्थ का अर्थ है चरम लक्ष्य यानी मोक्ष की प्राप्ति। बादरायण मुनि ब्रह्मसूत्र के रचयिता हैं और इस अधिकरण का प्रारंभ सूत्र 3|4|1 'पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः'। मोक्ष का चरमलक्ष्य भक्तियोग या प्रपत्ति से प्राप्त किया जा सकता है। बादरायण मुनि के शिष्य जैमिनिऋषि यहां पूर्वपक्षी हैं। एक मत है कि जैमिनिनास्तिक हैं जो परमात्मा की सत्ता में विश्वास नहीं करते हैं। ब्रह्म सूत्र में अनेकों स्थानों पर जैमिनिका संदर्भ मिलता है जिसमें वे भगवान में पूर्ण विश्वास करते हुए बादरायण मुनि के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। जैमिनिने यहां छः सूत्रों में ब्रह्मविद्या को कर्म का सहायक बताते हुए कर्म यानी यज्ञादि को ब्रह्मविद्या का सहायक नहीं बताया है। जैमिनिका पक्ष है : 1। राजा अश्वपति एवं राजा जनक ब्रह्मनिष्ठ होते हुए महान कर्मनिष्ठ थे। ब्रह्मविद्या का अभ्यास करने वाले ब्रह्मनिष्ठ हैं तथा कर्मयोग के अभ्यासी को कर्मनिष्ठ कहते हैं। 2। उद्गीथ विद्या में बताया गया है कि यज्ञ करते हुए जो उद्गीथविद्या का अभ्यास करता है वह श्रेष्ठ फल का अधिकारी होता है। अतः विद्या कर्म का सहायक है। 3। सामान्य तर्क से विद्या एवं कर्म साथ साथ चलते हैं अतः विद्या कर्म का सहायक है। 4। छान्दोग्य के अंतिम विभाग में विद्या वाले को कर्म करने की सलाह दी गयी है। 5। ईशावस्य में यह उल्लेख है कि कर्म करते हुए व्यक्ति को 100 वर्ष जीवित रहना चाहिए। अतः चरमलक्ष्य प्राप्ति के लिये कर्म ही प्रधान है।

बादरायण मुनि ने उपर्युक्त मत का खंडन करते हुए यह सिद्ध किया है कि विद्या ही सर्वस्व है बाकी सब इसके सहायक हैं। मोक्ष की प्राप्ति मात्र विद्या ही करा सकती है। 1। परमात्मा जीवात्मा से सर्वथा श्रेष्ठ हैं तथा जबतक जीवात्मा किसी ब्रह्मविद्या द्वारा परमात्मा पर ध्यान नहीं करता वह मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता। भगवद्गीता में बताये कर्मयोग द्वारा ही ब्रह्मविद्या का अनुशीलन किया जा सकता है। 2। ब्रह्मविद् के कर्म बहुउद्देश्यीय होते हैं तथा वह सर्वदा विद्या के सहायक ही नहीं होते। कावषेयाः ऋषियों का उपनिषद में उल्लेख है कि हम क्यों विद्या या कर्म का अभ्यास करते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि कर्म विद्या का आवश्यक सहायक नहीं है। 3। बिना फल की इच्छा के कर्म विद्या के सहायक होते हैं और निष्काम कर्म विद्या के लिये उपयोगी हैं जबकि सकाम कर्म विद्या के विपरीत हैं क्योंकि विद्या में मोक्ष की प्राप्ति ही एक मात्र कामना रहती है। 4। उपनिषद का उद्धरण कि उद्गीथ विद्या कर्म का सहायक है ब्रह्मविद्या के साथ लागू नहीं होता क्योंकि

उद्गीथ विद्या ब्रह्मविद्या की श्रेणी में नहीं है। 5। कर्म एवं विद्या को साथ चलने के उपनिषद वाक्य स्पष्टतया यह नहीं कहते कि विद्या कर्म का एक अंग है। कर्म द्वारा किये गये ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल स्वर्ग की प्राप्ति है न कि मोक्ष की। 6। अनेकों सन्यासी कर्म नहीं करते परंतु विद्या के अभ्यास से वे मोक्ष पाने में सफल होते हैं अतः कर्म विद्या का आवश्यक अंग नहीं कहा जा सकता।

110। स्तुतिमात्रा अधिकरण 2 सूत्र 3।4।21 से 3।4।22 तक (अधि 3।4।2)

चौथे पाद के दूसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। यह अधिकरण तथा इसके बाद का अधिकरण यानी दूसरा एवं तीसरा अधिकरण चौथे पाद के प्रसंग से बाहर हैं क्योंकि इस पाद का उद्देश्य ब्रह्मविद्या के सहायक मात्र का विवेचन करना है। पहले अधिकरण से इसका सम्बन्ध ब्रह्मनिष्ठ एवं उद्गीथ विद्या को समझाना है। चार आश्रम में रहने वाले व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ होकर मोक्ष पा सकते हैं। उद्गीथ में प्रणव की प्रशंसा में इसे सारों का सार कहा गया है। संशय होता है कि यह मात्र प्रणव की प्रशंसा है या प्रणव पर ही ध्यान आवश्यक है। उपनिषद सर्वदा अलौकिक रहस्यों को खोलते हैं। अतः सूत्रकार ने प्रणव को सारों का सार के रूप में ध्यान करने के पक्ष में हैं।

111। पारिप्लवाधिकरण 2 सूत्र 3।4।23 से 3।4।24 तक (अधि 3।4।3)

चौथे पाद के तीसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। यह अधिकरण भी पाद के प्रसंग का नहीं है। पारिप्लवम का अर्थ होता है चाटुकारिता या प्रशंसा के पुल बांधना। उपनिषद में सामान्यतया कथा के माध्यम से ज्ञान दी गयी है। प्रतर्दनविद्या इन्द्र का प्रतर्दन को उपेक्ष से मिला है। प्रतर्दन एक आदमी है जो स्वर्ग में जाकर इन्द्र से मिलता है। प्रतर्दन से सहायता प्राप्त कर इन्द्र उसे वर मांगने को कहते हैं। इसी तरह सद्विद्या में श्वेतकेतु की कथा है। संशय होता है कि ये कथायें मात्र कथा ही हैं या इससे विद्या का महत्व का ज्ञान होता है। वेद के मंत्र से नित्य उस व्यक्ति की प्रशंसा करने का बताया गया है जो अश्वमेध करता है। सूत्रकार का मत है कि प्रशंसा वाली कथायें ब्रह्मविद्या के महत्व के द्योत्तक हैं तथा साधक के लिये प्रेरणा के स्रोत के रूप में काम करते हैं।

112। अग्नीन्धनाद्यधिकरण 1 सूत्र 3।4।25 (अधि 3।4।4)

चौथे पाद के चौथे अधिकरण में 1 सूत्र है। यह अधिकरण पहले अधिकरण से सीधे जुड़ा हुआ है। पहले अधिकरण में यह बताया गया है कि काषाय वस्त्रधारी सन्यासी भी भक्तियोग का अधिकारी है। संशय होता है कि सन्यासी को अग्नि आदि कर्म नहीं करने हैं। भक्तियोग में कर्म का सहयोग रहता है अतः सन्यासी कैसे भक्तियोग का अधिकारी हो सकता है। उपनिषद कहता है कि सन्यासी भक्तियोग का अधिकारी है। जहां कहीं भी अग्नि से जुड़े कर्म के सहयोग की आवश्यकता है सन्यासी को इससे छूट दी गयी है। यह केवल गृहस्थों के लिये लागू होता है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने का है कि सन्यासी भी कर्म करते हैं। भगवदरामानुज दर्शन के अनुयायी सन्यासी यज्ञोपवीत, शिखा, त्रिदंड, उर्ध्वपुण्ड्र तिलक आदि धारण करते हुए कर्म करते हैं। नित्य तीन संध्या करना तथा अष्टाक्षर जप करना एवं शालग्राम की पूजा करना इनके आवश्यक कर्म हैं। जबकि अद्वैत मतावलम्बी सन्यासी यज्ञोपवीत, शिखा, त्रिदंड, त्रिपुण्ड्र तिलक आदि से मुक्त रहते हैं। वे भस्म लगाकर एकदंड धारण करते हैं तथा संध्या नहीं करते। अतः सन्यासी भी अपने कर्म के साथ साथ ब्रह्मविद्या के अभ्यास के अधिकारी हैं।

113 | स्वपिक्षाधिकरण 1 सूत्र 3|4|26 (अधि 3|4|5)

चौथे पाद के पांचवें अधिकरण में 1 सूत्र है। पूर्व के अधिकरण में सन्यासी को अग्निहोत्र की छूट देते हुए भक्तियोग करने की अनुमति है। संशय है कि क्या यही छूट गृहस्थ के लिये भी लागू है। बृहदारण्यक में उल्लेख है कि वेद पाठ तथा अग्निहोत्र आदि करते समय परमात्मा का स्मरण बनाये रखने पर ही भक्तियोग में ध्यान दृढ़ होता है। सूत्रकार ने भी उपर्युक्त बात की पुष्टि की है तथा एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है। जैसे घोड़ा यात्रा का एक साधन है हालांकि इसे छलांग लगाने तथा तेजी से भागने से रोकने के लिये लगाम की व्यवस्था के साथ ही सवारी की जाती है इसीतरह भक्तियोग में अग्निहोत्र आदि अन्य सहयोगी अवयव की अहम भूमिका है। भगवद श्रीरामानुज ने बताया है कि 'तत्वमसि' का वाक्यार्थ ज्ञान मोक्ष प्रदायी नहीं हो सकता है परंतु ध्यान करने की विधि तथा प्रपत्ति ज्ञान पर ही आधारित हैं और अंततः ये मोक्षदायी हो जाते हैं।

114 | शमदमाद्यधिकरण 1 सूत्र 3|4|27 (अधि 3|4|6)

चौथे पाद के छठे अधिकरण में 1 सूत्र है। शम का अर्थ है इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा दम का अर्थ है मन पर नियंत्रण। भक्तियोग में इन्द्रियों पर नियंत्रण इस अधिकरण का विषय वस्तु है। कर्म में लिप्त नहीं रहने के कारण सन्यासी को इन्द्रियों पर नियंत्रण आसान है जबकि गृहस्थ के लिये यज्ञादि में रत रहने के कारण इन्द्रियों पर नियंत्रण कठिन है। बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि जो मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण कर लेते हैं तथा शांत चित्त होकर सहिष्णु बने रहते हैं वे अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं। अतः शम एवं दम भक्तियोग के अंग हैं।

115 | सर्वान्नानुमत्यधिकरण 4 सूत्र 3|4|28 से 3|4|31 तक (अधि 3|4|7)

चौथे पाद के सातवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। अन्न का अर्थ है भोजन। भक्तियोग में आरूढ़ ब्रह्मनिष्ठ के लिये भोजन पर नियंत्रण ही यहां का विषय वस्तु है। छान्दोग्य में उल्लेख है कि भोजन शुद्ध एवं दोष मुक्त रहने सत्व गुण की वृद्धि होती है जो ध्रुवा स्मृति का कारक होता है। ध्रुवा स्मृति ही भक्तियोग है। भगवान कृष्ण ने गीता 17|8 से 17|10 में भोजन को सात्विक राजस एवं तामस बताया है। सात्विक भोजन आयुकारक स्वास्थ्यवर्द्धक रूचिकर तथा मन को प्रसन्न रखने वाला होता है। 'आयुः सत्वबलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः ।' दूध शर्करा आदि मीठा पदार्थ रस्याः में हैं। मक्खन तेल घी आदि चिकने पदार्थ स्निग्धाः हैं। बलवर्द्धक देर तक टिकने वाला भोजन स्थिराः है। हृद्याः हृदय को अच्छा लगने वाला है। भक्ष्य यानी निगलने के पहले चबाना पड़े। भोज्य यानी जो सीधे निगले जायें। लेह्य यानी जो चाटा जाय। चोष्य यानी जो चूसा जाय। गीता 15|14 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।' भगवान ही जठराग्नि बनकर भोजन को पचाते हैं।

गीता 17|9 'कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।' राजस भोजन बताते हैं। इसी तरह 17|10 में तामस भोजन का वर्णन है 'यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्'। ब्रह्मनिष्ठ के लिये सात्विक भोजन उचित है। भगवद रामानुज ने लघुसिद्धान्त में

भोजन को जातिदुष्टं, आश्रयदुष्टं, तथा निमित्तदुष्टं बताया है। श्री देशिकान ने भी भोजन की एक सूची बना दी है।

इस अधिकरण का विषयवस्तु है 'प्राणविद्यानिष्ठ के लिये कोई भी भोजन खाने की छूट है या कोई प्रतिबंध है'। पूर्वपक्षी छान्दोग्य का उद्धरण देकर प्राणविद्यानिष्ठ को सबकुछ खाने की छूट की बात करते हैं। छान्दोग्य की एक कथा है कि ब्रह्मविद्यानिष्ठ उपरि एक बार कुरुदेश में भीषण अकाल पड़ने से एक गांव में पहुंचे। भूख से तड़पते वे एक हाथी के महावत के पास गये जो काला पकाया हुआ चना खा रहा था तथा बचे हुए चने पर थूक रहा था। उससे वही चना मांगकर वे खाये परंतु महावत का पिया हुआ पानी उन्होंने पीने स मना कर दिया क्योंकि अन्न खाने से उनके प्राण बच गये थे अतः अब आपातकाल स्थिति नहीं थी। दूसरे दिन भी वही उच्छिष्ट अन्न जो उनकी पत्नी अपने पास बचाकर रखी थी खाये। इस तरह से आपात स्थिति को छोड़कर बाकी सामान्य स्थिति में कुछभी कहीं भी खाने की अनुमति शास्त्र में नहीं है।

116 | विहितत्वाधिकरण 4 सूत्र 3 | 4 | 32 से 3 | 4 | 35 तक (अधि 3 | 4 | 8)

चौथे पाद के आठवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। संशय है कि सामान्य आश्रमी को जो ब्रह्मविद्यानिष्ठ नहीं है संध्यावंदन तथा यज्ञादि करना आवश्यक है क्या। अगर आश्रमी इसे करता है तो नित्य अनित्य संयोग विरोध की बात उठती है। नित्य उसे कहते हैं जो जीवन पर्यन्त किया जाय। आश्रमी के लिये यह नित्य हो जाता है। जो मोक्षफल की कामना से करते हैं तब इसे अनित्य कहते हैं। जो मोक्षफल की कामना नहीं रखते उनके लिये यह कृत्य नहीं है। अतः एक ही कर्म आश्रमी के लिये नित्य है तो विद्यानिष्ठ के लिये अनित्य है। इसी को नित्य अनित्य संयोग विरोध यानी दोष कहते हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि भक्तियोगनिष्ठ नहीं रहने पर आश्रमी के लिये यह कृत्य नहीं है। सूत्र 3 | 4 | 32 'विहितत्वाच्चाश्रमकर्माणि' का अर्थ है कि आश्रमी जो ब्रह्मविद्यानिष्ठ हुआ हो या नहीं यह कर्म आवश्यक है। आश्रमी की चारो अवस्थाओं ब्रह्मचर्य ग्राहस्थ वानप्रस्थ तथा संन्यास के लिये कर्म का पृथक पृथक प्रावधान है। यही कर्म ब्रह्मविद्यानिष्ठ के लिये लागू हो जाते हैं। यहां 'विनियोग पृथकत्वम्' की बात है। विनियोग यानी व्यवहार में उपयोगी। पृथकत्वम् यानी अलग अलग। इसका अर्थ हुआ आश्रमी के लिये विहित कर्म ब्रह्मविद्यानिष्ठ के लिये भी लागू है। सूत्रकार कहते हैं कि अगर आश्रमी ब्रह्मविद्यानिष्ठ है तो आश्रमी के कृत्य पर्याप्त हैं अलग से कोई कृत्य की आवश्यकता नहीं है। नित्य नैमित्तिक कर्म ही पाप को मिटा कर मन को शुद्ध कर देंगे जो ध्यान में सहायक है।

117 | विधुराधिकरण 4 सूत्र 3 | 4 | 36 से 3 | 4 | 39 तक (अधि 3 | 4 | 9)

चौथे पाद के नौवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। विधुर का अर्थ है जिसकी पत्नी का देहान्त हो गया हो। पत्नी की अनुपस्थिति में गृहस्थ के लिये बताये गये कृत्य विधुर नहीं कर सकते। किसी भी स्थिति में विधुर को संध्यावंदन तथा नित्य नैमित्तिक कर्म तो करने ही हैं। तीन बार संध्यावंदन के अतिरिक्त स्नान तर्पण, ऋषि तर्पण तथा श्रीमन्नारायण की अर्चना सम्मिलित हैं। माता पिता के लिये वार्षिक तर्पण, तथा अमावस्या तर्पण, एकादशी उपवास, द्वादशी पारण, श्री जयन्ती, रामनवमी, नृसिंह जयन्ती आदि नैमित्तिक कर्म हैं। विधुर के लिये वैश्वानर तथा पंचम यज्ञोपासना वर्जित हैं। ब्रह्मचर्य के बाद ग्राहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करने वाले को तथा ग्राहस्थ के

बाद वानप्रस्थ नहीं बनने वाले को अनाश्रमी कहते हैं। विधुर भी इसीतरह अनाश्रमी हो जाते हैं। अनाश्रमी चूंकि बहुत कृत्यों से वर्जित हैं अतः संशय है कि क्या वे भक्तियोग के अधिकारी हैं। सूत्र 3 | 4 | 36 'अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः' का तात्पर्य है कि अनाश्रमी ब्रह्मविद्या का अभ्यास करके मोक्ष पा सकते हैं। फिर भी संशय उठता है कि अनाश्रमी पाप को धानेवाले कृत्य से वर्जित हैं तो उनका मन कैसे शुद्ध होगा जो कि उपासना की पूर्वशर्त है। सूत्रकार कहते हैं कि गायत्री तथा अष्टाक्षर जप से यह संभव है। सूत्रकार का यह भी मत है कि ज्यादा लम्बे समय तक अनाश्रमी न रहकर शीघ्र आश्रमी हो जाना चाहिये।

118 | तद्भूताधिकरण 4 सूत्र 3 | 4 | 40 से 3 | 4 | 43 तक (अधि 3 | 4 | 10)

चौथे पाद के दसवें अधिकरण में 4 सूत्र हैं। आश्रम भ्रष्ट श्रेणी में भी कुछ लोग रहते हैं। कोई अगर नैष्ठिक ब्रह्मचारी का ठान ले यानी जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहेगा परंतु कुछ काल के बाद विवाहित होकर गृहस्थ बन जाये तो वह आश्रम भ्रष्ट हुआ। इसी तरह से वानप्रस्थ या संन्यासी भी ग्राहस्थ जीवन में वापस आने पर आश्रम भ्रष्ट कहे जाते हैं। संशय है कि आश्रमभ्रष्ट ब्रह्मोपासना यानी भक्तियोग के अधिकारी हैं क्या। पूर्वपक्षी का सकारात्मक रूख है। 3 | 4 | 40 सूत्र से आश्रमभ्रष्ट पर निषेध लगाया गया है। ये 'आत्माहा' यानी प्रायश्चित्त विहीन भ्रष्ट होकर अपने को नष्ट करने वाले माने जाते हैं। इनके लिये प्रायश्चित्त का कोई प्रावधान भी नहीं है।

प्रश्न उठता है कि आश्रमभ्रष्ट गुरु की देखरेख में प्रपत्ति तो कर सकते हैं। यह विवाद का विषय है।

119 | स्वामी अधिकरण 2 सूत्र 3 | 4 | 44 से 3 | 4 | 45 तक (अधि 3 | 4 | 11)

चौथे पाद के ग्यारहवें अधिकरण में 2 सूत्र हैं। यह अधिकरण पाद के प्रसंग से बाहर का है। पूर्व के दो अधिकरणों में उपासना करने वालों की योग्यता का विश्लेषण हुआ है। यहां उदगीथ करने वाले की योग्यता का विश्लेषण है। कृत्य कर्म के सहायक के रूप में प्रणव साधना वाले शीघ्र फल प्राप्ति के लिये प्रणव साधना करते हैं जो उदगीथ विद्या वाले कहे जाते हैं।

प्रत्येक यज्ञ में एक यजमान होता है जो वैदिक मंत्रों में सिद्धहस्त ऋत्विकों की सहायता से कामना पूर्ति हेतु यज्ञ का आयोजन करता है। होता, अर्ध्वयु, उदगाथा, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, ब्रह्मा आदि ऋत्विकों के विभिन्न कार्य करने हेतु विभिन्न नाम हैं। इसीतरह उदगीथ विद्या उदगाथा से संपादित होता है। संशय है कि उदगीथ उपासना यजमान का होगा या उदगाथा का। बादरायण मुनि के शिष्य अत्रेय मुनि का मत है कि यजमान को ही उदगीथ उपासना करना है क्योंकि वही उसके फल का भोक्ता है। सूत्र 3 | 4 | 44 'स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः' में अत्रेय मुनि की ही बात है। यहां स्वामी का अर्थ यजमान है। सूत्रकार के दूसरे शिष्य ओडुलोमी कहते हैं कि उदगाथा को पारिश्रमकी दी जाती है इसलिये उदगाथा द्वारा की गयी उपासना का फल यजमान को प्राप्त होगा। सूत्रकार भी ओडुलोमी के मत से सहमत हैं जो कि सिद्धान्त सूत्र है।

120 | सहकारी अन्तर्विधि अधिकरण 3 सूत्र 3 | 4 | 46 से 3 | 4 | 48 तक (अधि 3 | 4 | 12)

चौथे पाद के बारहवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। सहकारी का अर्थ है सहयोगी। बृहदारण्यक उपनिषद में उल्लेख है कि विद्वान् जन जब ब्रह्मविद्या की उपासना करते हैं तो उन्हें विद्वत्ता छोड़कर युवक की भांति मौन मन से

श्रीमन्नारायण के दिव्य मंगल विग्रह का ध्यान करना चाहिये। इसे मनन शीलत्वम कहते हैं। अतः मौन भक्तियोग का एक और अंग हुआ।

121 | अनाविष्काराधिकरण 1 सूत्र 3|4|49 (अधि 3|4|13)

चौथे पाद के तेरहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। बृहदारण्यक उपनिषद के पाचवें अध्याय में उल्लेख है कि ब्रह्मोपासना करने वाले को मूर्धन्य विद्वान् होते हुए एक साधारण जन की तरह व्यवहार करना चाहिये। अर्थात् अपनी विद्वत्ता का सर्वदा प्रदर्शन न कर जन साधारण के साथ घुलमिलकर रहना चाहिये। संशय होता है कि क्या इसे चिन्तनशीलता त्याग कर एक कौतुकी की तरह रहते हुए कहीं कुछ भी करना तथा भोजन खाना चाहिये। पूर्वपक्षी का मत है कि इसे कौतुकी तथा कही कुछ भी करते हुए कुछ भी खा लेना चाहिये। सूत्रकार इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मविद् को अनावश्यक अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन में रत नहीं रहना चाहिये।

122 | ऐहिकाधिकरण 1 सूत्र 3|4|50 (अधि 3|4|14)

चौथे पाद के चौदहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। इस अधिकरण तथा परवर्ती अंतिम अधिकरण में फल प्राप्ति के समय का विश्लेषण प्रस्तुत है। ब्रह्मोपासना भी दो तरह के होते हैं। एक मोक्ष के लिये तथा दूसरा सांसारिक सुख के लिये जिसे ऐहिक फल कहते हैं। भगवान् ने गीता 7|16 में चार तरह के भक्त बताये हैं। 'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।' यद्यपि कि सभी ब्रह्मोपासक हैं परंतु पहले तीन ऐहिक फल वाले हैं तथा ज्ञानी ही मोक्षार्थी हैं।

प्रश्न है कि उपासना का फल कब मिलता है। समाधान में तीन स्थितियों का उल्लेख है। 1। उपासना के शीघ्र बाद। 2। इस जन्म में। 3। आने वाले जन्म में। पूर्वपक्षी का मत है कि उपासना की पूर्ति के शीघ्रबाद फल मिल जाता है। सूत्रकार का मत है कि ऐहिक फल उपासक को प्राप्त हो जाता है परंतु पाप कृत्य के नाश के पश्चात् ही। पाप कृत्य का अवरोध सबों ने स्वीकार किया है। उद्गीथ विद्या के यज्ञ में पाप का नाश होकर शीघ्र फल मिलता है।

123 | मुक्तिफलाधिकरण 1 सूत्र 3|4|51 (अधि 3|4|15)

चौथे पाद के पंद्रहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। इस अधिकरण में मोक्ष फल प्राप्ति के समय का विश्लेषण हुआ है। यहां यह निष्कर्ष निकला है कि अगर पाप कृत्य नष्ट नहीं हुए हैं तो मोक्षफल में भी विलम्ब होता है। ब्रह्मविद् अपचार घोर पाप है जिसमें ब्रह्मनिष्ठ को अपमानित किया जाता है। इस पाप से मोक्षफल निरस्त भी हो जाता है। अतः इस पाप से हर हाल में सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। सूत्र 3|4|51 'एवं मुक्तिफलानियमस् तदवस्थावधृतेस् तदवस्थावधृतेः' में 'तदवस्थावधृतेः' की दो बार पुनरावृत्ति तीसरे अध्याय की समाप्ति का सूचक है।

तालिका 16 : तीसरे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (51 सूत्र, 15 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण के क्रमांक ³¹
109 पुरुषार्थ अधिकरण	3 4 1 से 3 4 20	20	3 4 1
110 स्तुतिमात्रा अधिकरण	3 4 21 से 3 4 22 तक	2	3 4 2
111 पारिप्लवाधिकरण	3 4 23 से 3 4 24 तक	2	3 4 3
112 अग्नीन्धनाद्यधिकरण	3 4 25	1	3 4 4
113 सवपिक्षाधिकरण	3 4 26	1	3 4 5
114 शमदमाद्यधिकरण	3 4 27	1	3 4 6
115 सर्वान्मानुमत्यधिकरण	3 4 28 से 3 4 31 तक	4	3 4 7
116 विहितत्वाधिकरण	3 4 32 से 3 4 35 तक	4	3 4 8
117 विधुराधिकरण	3 4 36 से 3 4 39 तक	4	3 4 9
118 तद्भूताधिकरण	3 4 40 से 3 4 43 तक	4	3 4 10
119 स्वामी अधिकरण	3 4 44 से 3 4 45 तक	2	3 4 11
120 सहकारी अन्तर्विधि अधिकरण	3 4 46 से 3 4 48 तक	3	3 4 12
121 अनाविष्काराधिकरण	3 4 49	1	3 4 13
122 ऐहिकाधिकरण	3 4 50	1	3 4 14
123 मुक्तिफलाधिकरण	3 4 51	1	3 4 15

³¹ 3 | 4 | 1 अध्याय 3 पाद 4 अधिकरण 1

चौथे अध्याय का पहला पाद

(फल अध्याय, आवृत्ति पाद, 19 सूत्र, 11 अधिकरण)

श्रीभाष्य के चार अध्याय में से तीन अध्याय यहां तक पूरा हुआ और चौथा तथा अंतिम अध्याय का शुभारंभ है। इस अध्याय को फल अध्याय कहते हैं तथा इसके चार पाद हैं : आवृत्ति, उत्क्रान्त, गति, तथा फल। पहले पाद में 19 सूत्र तथा 11 अधिकरण हैं। दूसरे पाद में 20 सूत्र हैं तथा 11 अधिकरण हैं। तीसरे पाद में 15 सूत्र हैं तथा 5 अधिकरण हैं। चौथे पाद में 22 सूत्र तथा 6 अधिकरण हैं। पूरे अध्याय में कुल 76 सूत्र हैं तथा 33 अधिकरण हैं। सूत्रों के विचार से यह सबसे छोटा अध्याय है।

इस अध्याय में मुमुक्षु द्वारा इक्षित मोक्ष फल की प्राप्ति का विश्लेषण प्रस्तुत है। भक्तियोग अष्टांग योग है। इसके सहायक कर्म योग एवं ज्ञानयोग हैं जिसकी प्राप्ति से सम्बन्धित साधना सप्तक का विवरण तीसरे अध्याय के तीसरे पाद में दिया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि इस कलियुग में कठिन ध्यान से भक्तियोग को प्राप्त करना दुस्तर है। श्रीवैकुण्ठ गद्य में भगवद रामानुज ने बताया है कि मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रपत्ति के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है भले ही इसमें हजारों वर्ष लग जायें। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि पिछले तीन युगों में किसी ने भक्तियोग की साधना नहीं की है। दंडकारण्य के ऋषिगण ने भक्तियोग का सहारा लिया तथा द्वार में गोपी बनकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। इसी तरह से धर्मव्याधा तथा शबरी ने भक्तियोग से ही मोक्ष प्राप्त किया जिसका शुभारंभ उन्होंने पूर्व जन्म में किया था। इसका निष्कर्ष है कि श्रीमन्नारायण के दिव्य मंगल अर्चा विग्रह के चरणारविन्द में समर्पित एवं शरणागत होकर प्रपत्ति से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

124 | आवृत्ति अधिकरण 2 सूत्र 4|1|1 से 4|1|2 तक (अधि 4|1|1)

चौथे अध्याय के पहले पाद के पहले अधिकरण में 2 सूत्र हैं। उपनिषद के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि परमात्मा पर ध्यान करने से मोक्ष मिलता है। इस अधिकरण का विषयवस्तु है कि परमात्मा पर ध्यान एक ही बार की जाय या बार बार। पूर्वपक्षी का मत है कि साधना का दृष्ट एवं अदृष्ट फल मिलता है। दृष्ट फल सांसारिक सुख है और मोक्ष अदृष्ट फल है। सांसारिक सुख के लिये बार बार ध्यान की आवश्यकता है जैसे धान को बार बार मलने से ही उससे चावल निकलता है। सूत्र 4|1|1 'आवृत्तिर असकृत् उपदेशात्' का तात्पर्य है कि उपनिषद के अनुसार भक्तियोग को बार बार दुहराने की आवश्यकता है। तैत्तिरीय उपनिषद का उल्लेख है कि ब्रह्मविद् परमात्मा को दिव्यवैकुण्ठ में प्राप्त करते हैं। 'विद्' का अर्थ है जानना। श्रीमन्नारायण को अतिशय प्रेम से जानने को 'वेदन' कहते हैं जो 'ध्यान' का पर्याय है। उपनिषद में उल्लेख है कि उपासना एवं ध्यान का पर्याय ही वेदन है। 'ध्यान च चिन्तनम्। चिन्तनं च स्मृतिसन्तितिरूपम्' ही ध्यान है यानी बार बार अनवरत की जाने वाली चिन्ता को ही ध्यान कहते हैं। सूत्र के 'सकृत्' शब्द का अर्थ है एक बार, एवं 'असकृत्' का अर्थ है बार बार। अतः श्रीमन्नारायण पर बार बार ध्यान करना ही भक्तियोग हुआ।

125 | आत्मत्वोपासनाधिकरण 1 सूत्र 4|1|3 (अधि 4|1|2)

चौथे अध्याय के पहले पाद के दूसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। उपासना में ध्यान का विषय वस्तु क्या हो इस अधिकरण का विषय है। 'जीव परमात्मा का शरीर है तथा परमात्मा ही इसकी आत्मा है' इसी सम्बन्ध पर ध्यान

की जाय या अन्य किसी वस्तु पर। पूर्वपक्षी का मत है कि उपासक जीव परमात्मा से सर्वदा पृथक है। अतः ध्यान केवल परमात्मा का हो न कि जीव के साथ सम्बन्ध का। सूत्र 4।1।3 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च' का तात्पर्य है कि व्यक्ति परमात्मा को अपनी आत्मा मानकर उपासना करे। बृहदारण्य का अन्तर्यामी ब्रह्म का उल्लेख बताता है कि जीव परमात्मा का शरीर है। अतः परमात्मा ही उसकी आत्मा हुए।

126 | प्रतीकाधिकरण 2 सूत्र 4।1।4 से 4।1।5 तक (अधि 4।1।3)

चौथे अध्याय के पहले पाद के तीसरे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। वर्तमान अधिकरण तथा इसके बाद का अधिकरण प्रसंग से बाहर का है परंतु पिछले अधिकरण में उठे कुछ संशय का इसमें समाधान हुआ है। तीसरे अध्याय के तीसरे पाद के एक अधिकरण में प्रतीक उपासना का उल्लेख है। प्रतीक का अर्थ है शरीर का अवयव। मन अवयव पर ध्यान कर सकता है या अवयव को ब्रह्म मानकर ध्यान कर सकता है। इसी को प्रतीक उपासना कहते हैं या दृष्टिविधि भी कहते हैं। उपासना ब्रह्मविद्या की श्रेणी में नहीं अता है। इस तरह की उपासना से मोक्ष नहीं मिलता। कुछेक मुख्य प्राण की उपासना करते हैं। यह भी प्रतीक उपासना है और इस तरह की उपासना से सांसारिक सुख का फल मिलता है न कि मोक्षधाम। संशय होता है कि ब्रह्मविद्या में परमात्मा को आत्मा तथा जीव को परमात्मा का शरीर मानकर ध्यान आवश्यक है क्या। क्या प्रतीक उपासना में भी आत्मा को ध्येय वस्तु माना जाय ?। पूर्वपक्षी का मत है कि प्रतीक उपासना भी बिना किसी भेद भाव के उपासना ही हैं एवं इसमें भी आत्मा पर ध्यान किया जा सकता है। सूत्र 4।1।5 'न प्रतीके न हि सः' से सूत्रकार कहते हैं कि उक्त मत प्रतीक उपासना के लिये लागू नहीं है। प्रतीक को उपासक की आत्मा का दर्जा नहीं दिया जा सकता। हालांकि सूत्रकार का मत है कि मध्यम स्तर की वस्तु को उच्च स्तर का मानने लाभ ही होता है जबकि उच्च स्तर की वस्तु को निम्नस्तर का मानने से हानि होने का भय होता है। जैसे सेवक को राजा मानने से लाभ हो सकता है जबकि राजा को सेवक मानना श्रेयस्कर नहीं है।

127 | आदित्यादिमत्यधिकरण 1 सूत्र 4।1।6 (अधि 4।1।4)

चौथे अध्याय के पहले पाद के चौथे अधिकरण में 1 सूत्र है। पूर्व की तरह वर्तमान अधिकरण भी पहले पाद के विषय प्रसंग से बाहर है। तीसरे अधिकरण के निष्कर्ष पर संशय होता है कि मध्यम वस्तु को उच्च मान कर ध्यान करना चाहिये। छान्दोग्य के पहले अध्याय के तीसरे विभाग में उल्लेख है कि जो ज्योतिर्मय है वह उदगीथ है। छान्दोग्य के दूसरे अध्याय में कहा गया है कि जो ज्योतिर्मय है वह सूर्य है। उदगीथ प्रणव को कहते हैं एवं विभिन्न तरह से प्रणव का ध्यान उदगीथ विद्या है। जब यज्ञ का संपादन उदगीथ विद्या के साथ करते हैं तब यज्ञ का श्रेयष्कर फल शीघ्र मिलता है। प्रश्न है कि उदगीथ एवं आदित्य यानी सूर्य में श्रेष्ठ कौन है। पूर्व पक्षी के मत में प्रणव से यज्ञ में शीघ्र फल मिलने के कारण प्रणव ही श्रेष्ठ है क्योंकि आदित्य से ऐसा नहीं होता। अतः आदित्य को उदगीथ समझ कर ध्यान करना चाहिये।

सूत्र 4।1।6 'आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः' से सूत्रकार का मत है कि आदित्य उदगीथ से श्रेष्ठ है क्योंकि यज्ञ के ईच्छित फल की प्राप्ति आदित्य की अर्चना से होती है। अतः उदगीथ का ध्यान आदित्य मानकर करना चाहिये।

128 | आसीनाधिकरण 5 सूत्र 4|1|7 से 4|1|11 (अधि 4|1|5)

चौथे अध्याय के पहले पाद के पाचवें अधिकरण में 5 सूत्र है। दूसरे अधिकरण यानी आत्मत्वोपासनाधिकरण के क्रम में इस अधिकरण का विषय है कि उपासना कौन सी मुद्रा में की जाय यानी बैठकर, खड़ेहोकर, चलते हुए या शयनावस्था में। पूर्वपक्षी के मतानुसार उपनिषद में इस पर कोई एक के पक्ष में उल्लेख नहीं है। सूत्रकार ने सूत्र 4|1|7 'आसीनः संभवात्' से बताया है कि बैठने की मुद्रा में मन स्थिर रहता है और स्थिर मन से ध्यान दृढ़ होता है। खड़ा एवं चलने की स्थिति में मन आसानी से विषयांतर से ग्रस्त हो सकता है। शयनावस्था में निद्रा आ जाने से व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। सूत्र 4|1|9 'अचलत्वं चापेक्ष्य' का तात्पर्य है कि दृढ़ ध्यान के लिये शरीर कंपन आदि से मुक्त होकर स्थिर रहना चाहिये। 4|1|10 तथा 4|1|11 सूत्रों में उल्लिखित आसन का स्थान एवं आसन की वस्तु को गीता तथा श्वेताश्वतर उपनिषद के उद्धरण से पुष्टि की गयी है। गीता 6|11 एवं 6|12 'शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नाल्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।' आसन का स्थान पवित्र समतल होना चाहिये। अग्नि तथा जल से दूर बालू एवं कंकरीले स्थान पर आसन नहीं होना चाहिये। काठ का आसन अच्छा माना जाता है। इसे कूर्मासन कहते हैं। यह बहुत ऊंचा तथा बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। काठ पर दुर्वा या कुशासन उसके ऊपर मृगचर्म तथा उसके ऊपर कोई साफ वस्त्र डालकर आसन बनाया जाय। ध्यान का समय एवं स्थान शांत मन के अनुकूल होना चाहिये जिससे कि कोई व्यवधान का अनुभव न करना पड़े।

129 | आप्रयाणाधिकरण 1 सूत्र 4|1|12 (अधि 4|1|6)

चौथे अध्याय के पहले पाद के छठे अधिकरण में 1 सूत्र है। ध्यान की अवधि कितनी बड़ी हो यही इस अधिकरण का विषय वस्तु है। पूर्वपक्षी का मत है कि श्रीमन्नारायण के चरणों में अनवरत चित्त का लगा रहना ध्यान को बार बार केन्द्रित करने से ही होता है एवं इसके दिन भर की अवधि पर्याप्त है। सूत्र 4|1|12 'आप्रयाणात् तत्रापि हि दृष्टम्' से सूत्रकार का सिद्धान्त है कि मरणशील शरीर से प्राण निकलते समय तय यानी प्रयाण पर्यन्त ध्यान चलते रहना चाहिये। छान्दोग्य कहता है कि जीवन पर्यन्त भक्ति योग की साधना चलती रहती है। श्रीभाष्य में भक्तियोग के बारे में सूक्ष्म बात है कि मृत्युपर्यन्त इसका अबाध क्रम चलते रहना चाहिये। भक्तियोग की दीक्षा से प्रारंभ कर मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य में कितने जन्म लग जायेंगे यह कहना बहुत कठिन है। अतः श्रीभाष्य का मृत्युपर्यन्त का तात्पर्य है मोक्ष की प्राप्ति तक का काल चाहे वह एक जन्म का हो या कई जन्मों का हो। रहस्यत्रय सार में श्री देशिकान् स्वामी बताते हैं कि 'आप्रयाण' का अर्थ है दिव्य वैकुण्ठ की यात्रा तक।

130 | तदधिगमाधिकरण 1 सूत्र 4|1|13 (अधि 4|1|7)

चौथे अध्याय के पहले पाद के सातवें अधिकरण में 1 सूत्र है। इस अधिकरण से लेकर अंतिम अधिकरण तक भक्तियोग के फल का वर्णन किया गया है। जब मन में श्रीमन्नारायण की चिन्ता आने लगती है उसी क्षण से भक्तियोग का शुभारंभ हो जाता है। इसे 'दर्शन समान आकार' भी कहते हैं यानी मन में श्रीमन्नारायण के लिये ऐसी भावना जगती है जैसे कि सामने अपनी आंखों से श्रीमन्नारायण का दर्शन कर रहे हों। भगवद रामानुज

उपनिषद का उद्धरण देकर यह सिद्ध करते हैं कि भक्तियोगनिष्ठ के पाप का क्षय होने लगता है। योगनिष्ठ होने के बाद अनचाहे या अनजाने अपराध का भी स्वयंमेव क्षय हो जाता है।

131 | इतराधिकरण 1 सूत्र 4|1|14 (अधि 4|1|8)

चौथे अध्याय के पहले पाद के आठवें अधिकरण में 1 सूत्र है। सातवें अधिकरण में यह बताया गया कि योगनिष्ठ उपासक के पूर्व के कर्म का श्रीमन्नारायण की ईच्छा से क्षय हो जाता है तथा योगनिष्ठ होने के बाद अनजाने हुए पाप के लिये आप दंड नहीं देते हैं। इसी तरह से पुण्य का भी क्षय होने पर ही मोक्ष मिलता है क्योंकि पुण्य भी मोक्ष का बाधक है। मोक्ष प्राप्ति के लिये पाप एवं पुण्य दोनों का शुन्य होना आवश्यक है। उपासना की सिद्धि पर जब शरीर का अन्त होता है तो पुण्य का भी क्षय हो जाता है। पुण्य रहने से वर्षा होती है तथा वर्षा से अन्न होता है। उपासक को जीवन यापन के लिये अन्न नितान्त ही आवश्यक है। अतः जीवन यापन हेतु मात्र ही पुण्य टिकता है।

132 | अनारब्धकार्याधिकरण 1 सूत्र 4|1|15 (अधि 4|1|9)

चौथे अध्याय के पहले पाद के नौवें अधिकरण में 1 सूत्र है। यहां संशय होता है कि योगनिष्ठ होने के पूर्व के पाप एवं पुण्य का किस हद तक क्षय होता है। दोनों के बिल्कुल शून्य हो जाने पर जीवन एक क्षण भी नहीं टिक सकता। साधक को जीवन यापन के लिये पुण्य का टिकना आवश्यक माना जाता है। पूर्व में यह बताया गया है कि पाप की तरह पुण्य भी मोक्ष प्राप्ति का बाधक है। अतः यह तय करने की आवश्यकता है कि पाप एवं पुण्य के किस अंश का क्षय हो एवं किस अंश का संचय बना रहे। पूर्व के जन्मों के कर्मों का संचय होते जाता है एवं जो अभी फल में क्रियान्वित नहीं हुआ है उसे 'संचित कर्म' कहते हैं। कर्म के पुण्य वाले भाग से सुख मिलता है तथा पाप वाले भाग से मानसिक यातना एवं शारीरिक दुःख मिलता है। जबतक फल का क्रियान्वन नहीं होता है तबतक संचित कर्म को अनारब्ध कर्म कहते हैं। जैसे ही जो अंश फल देना शुरू करता है उसे आरब्ध या प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

सूत्रकार का सिद्धान्त है कि श्रीमन्नारायण की कृपा से या ईच्छा से केवल अनारब्ध यानी संचित कर्म का क्षय होता है न कि आरब्ध या प्रारब्ध कर्म का। छान्दोग्य के छठे अध्याय से यह स्पष्ट है कि जब तक पाप पुण्य का बंधन रहता है उपासक मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। उपनिषद का उल्लेख है कि रूई की गड़र की तरह योगनिष्ठ होने के पूर्व के कर्मों का क्षय होता है। उपर्युक्त बातों में कुछ विरोधाभास प्रतीत होता है। सूत्रकार का तात्पर्य है कि योगनिष्ठ होने के पूर्व संचित यानी अनारब्ध का क्षय होता है तथा उपासक के शरीर छोड़ने के समय प्रारब्ध का अंत होता है।

133 | अग्निहोत्राद्यधिकरण 3 सूत्र 4|1|16 से 4|1|18 तक (अधि 4|1|10)

चौथे अध्याय के पहले पाद के दसवें अधिकरण में 3 सूत्र हैं। यहां पाप पुण्य के निराकरण के दूसरे पक्ष का विवेचन प्रस्तुत है। आठवें अधिकरण में यह बताया गया कि योगनिष्ठ होने के बाद उपासक को पुण्य कर्म का स्पर्श नहीं होता। इसका तात्पर्य है कि पुण्य फल नहीं देता क्योंकि पाप की तरह पुण्य भी मोक्षप्राप्ति में बाधक है। योगनिष्ठ होने के बाद जब साधक के लिये पुण्य कर्म का कोई उपयोग नहीं है तब पुण्य का अर्जन क्यों

किया जाय। नित्य नैमित्तिक कृत्य से ही पुण्य आता है। उपासना की बाधा को दूर करने के लिये कल्प सूत्र में नित्य अग्निहोत्र का प्रावधान है। पूर्वपक्ष की धारणा है कि जब पुण्य कोई फल नहीं दे सकता तब इसे नहीं किया जाय। इसी के निराकरण में सूत्र 4 | 1 | 16 'अग्निहोत्रादि तु तत्कारययिव तद्दर्शनात्' कहता है कि उपासना की बाधा को दूर करने हेतु नित्य अग्निहोत्र वांछित है। अग्निहोत्र प्रत्येक यज्ञ के पूर्व संपादित होने वाला कृत्य है। उपासना की तरह यह प्रतिदिन संपादित किया जाता है तथा इसे दिन में दो बार करने का प्रावधान है। इस प्रसंग में एक प्रश्न खड़ा होता है कि जब अग्निहोत्रादि का पुण्य उपासना के अवरोध को दूर करने में काम आता है तब कौन सा पुण्य सुहृद् सम्बन्धियों को हस्तान्तरित होता है। पूर्व में उपनिषद् के उद्धरण से यह बताया गया था कि योगनिष्ठ जीव के शरीरान्त काल में उसका बचा हुआ पुण्य मित्रों एवं सुहृदों को तथा पाप वैरियों का चला जाता है। इस अधिकरण का दूसरा सूत्र 4 | 1 | 17 'अतोऽन्याऽपि ह्येकेषामुभयोः' इस संशय को दूर करता है। उपासक के पूर्व के घोर पाप के कारण कभी कभी श्रीमन्नारायण अपनी ईच्छा से उसके कुछ पुण्य कृत के फल पर अवरोध लगा देते हैं। यही अवरोध लगा हुआ यानी अनुपयुक्त पुण्य सुहृदों को मिलता है।

134 | इतरक्षणधिकरण 1 सूत्र 4 | 1 | 19 (अधि 4 | 1 | 11)

चौथे अध्याय के पहले पाद के ग्यारहवें अधिकरण में 1 सूत्र है। मोक्ष प्राप्ति काल ही इस अधिकरण का विवेचन वस्तु है। संशय होता है कि योगनिष्ठ जिस जन्म में योग प्रारंभ करता है उसमें मोक्ष मिलता है या अनेकों जन्मों के बाद। एक अन्य संशय है कि जिस जन्म में पुण्य पाप अपना फल देना प्रारंभ करते हैं उस जन्म में ही मोक्ष मिल जाता है। इस तरह का संशय छान्दोग्य उपनिषद् के छठे एवं आठवें अध्याय के उल्लेख से उठ खड़ा होता है। छठा अध्याय कहता है कि प्रारब्ध के अन्त होने पर ही मोक्ष मिलता है। पुण्य से सुख तथा पाप से दुःख मिलता है। दुःख तीन तरह के होते हैं जो तापत्रय कहे जाते हैं। 1। आध्यात्मिक दुःख शरीर एवं मन दोनों का है। शरीर को व्याधि तथा मन को क्रोध, तनाव, एवं चिन्ता से यातना मिलती है। 2। आधिभौतिक दुःख सम्बन्धियों, शत्रुओं या समाज के कारण मिलता है जो शरीर एवं मन दोनों को कष्ट देता है। 3। आधिदैविक दुःख दैवी कोप यानी परमात्मा द्वारा दिये गये प्राकृतिक आपदा हैं। जैसे : भूकंप, अतिवृष्टि, बाढ़, महामारी आदि। जैसे ही उपासक के प्रारब्ध का अंत होता है उसी क्षण वह शरीर छोड़ देता है।

छान्दोग्य के आठवें अध्याय का उल्लेख उपासक के मुख की वाणी में है। उपासक बताता है कि जैसे घोड़ा अपने बाल का त्याग करता है तथा चन्द्रमा राहु के पंजे से मुक्त होता है उसी तरह मैं अपने नश्वर शरीर का त्याग कर परमात्मा से दिव्य वैकुण्ठ में मिलूंगा।

पूर्वपक्षी कहते हैं कि छान्दोग्य के छठे अध्याय का तात्पर्य है कि उपासक जिस जन्म में योगनिष्ठ होता है उसी जन्म में मोक्ष पाता है। सूत्रकार सूत्र 4 | 1 | 19 'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाऽथ संपद्यते' से पूर्वपक्षी के मत का खंडन करते हैं। 'अथ संपद्यते' यानी उपासक मोक्ष पाता है। 'इतरे' यानी प्रारब्ध या आरब्ध के, 'भोगेन' यानी फल मिलने से। 'क्षपयित्वा' यानी इनके क्षय से। स्मरण रहे कि प्रारब्ध संचित कर्म का वह अंश है जो फल देना प्रारंभ करता है। इस सूत्र का तात्पर्य है कि प्रारब्ध का या तो एक जन्म में क्षय हो जाता है या कई आने वाले जन्मों में होता है। क्षय वाले जन्मों के सही आकलन का कोई तरीका उपलब्ध नहीं है।

अधिकरणों का निष्कर्ष निम्नवत है। योगनिष्ठ जीव के पुण्य पाप कर्म के क्षय का निष्पादन : 1। पुण्य पाप कर्म चार तरह के होते हैं। क। जिसके फल पूर्व में मिल चुके हैं। ख। जिसके फल अब मिल रहे हैं। ग। जिसके फल भविष्य में मिलेंगे। घ। जिसके फल पर अवरोध लगा हुआ है और जो सुहृदों तथा वैरियों को स्थानान्तरित होते हैं। 2। उपासना के पूर्व के किये गये पुण्य एवं पाप पूर्व अघ कहे जाते हैं। इनके विभेद हैं : क। दत्त फलम यानी जिसके फल मिल चुके। ख। अदत्त फलम यानी जिसके फल मिलने वाकी हैं। अदत्त फलम का एक भाग होता है जो प्रायश्चित्त आदि से लुप्त हो जाता है। दूसरा भाग है जो नष्ट नहीं हुआ है यानी अविनष्ट फलम। अविनष्ट के एक विभेद को प्रारब्ध कहते हैं यानी जो फल देने प्रारंभ कर दिया है। दूसरा अप्रारब्ध है जो फल देना प्रारंभ नहीं किया है।

उपासना के आरंभ में कर्म लुप्त होते हैं यानी परमात्मा की कृपा से वे शिथिल होकर फल देना बंद कर देते हैं। प्रारब्ध फल के दो भेद हैं। क। विद्यानुकूल यानी जो साधना में प्रगति कराये। ख। अनानुकूल यानी जो उपासना के लिये सहयोगी न हो। अनानुकूलम दो तरह के होते हैं। एक बुद्धि पूर्वम यानी जो जानकर किये गये हैं। दूसरा अबुद्धिपूर्वम यानी अनजाने में किये गये। अनजाने किय गये कर्म उपासक का स्पर्श नहीं करते यानी उसका फल शिथिल रहता है। उपासना के पश्चात किये गये पुण्य से समुचित वर्षा एवं तदुपरान्त अन्न होते हैं जो सुखमय जीवन यापन के सहायक बनते हैं।

ग्यारहवें अधिकरण का सारांश है कि जब प्रारब्ध का अंत होता है यानी वह एक जन्म में हो या कई जन्मों में तब उपासक की उपासना पूर्ण हो जाती है और वह अर्चिरादि मार्ग से दिव्य वैकुण्ठ पहुंच जाता है।

तालिका 17 : चौथे अध्याय के पहले पाद के अधिकरण (19 सूत्र, 11 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ³²
124 आवृत्ति अधिकरण	4 1 1 से 4 1 2 तक	2	4 1 1
125 आत्मत्वोपासनाधिकरण	4 1 3	1	4 1 2
126 प्रतीकाधिकरण	4 1 4 से 4 1 5 तक	2	4 1 3
127 आदित्यादिमत्यधिकरण	4 1 6	1	4 1 4
128 आसीनाधिकरण	4 1 7 से 4 1 11 तक	1	4 1 5
129 आप्रयाणाधिकरण	4 1 12	1	4 1 6
130 तदधिगमाधिकरण	4 1 13	1	4 1 7
131 इतराधिकरण	4 1 14	1	4 1 8
132 अनारब्धकार्याधिकरण	4 1 15	1	4 1 9
133 अग्निहोत्राद्यधिकरण	4 1 16 से 4 1 18 तक	3	4 1 10
134 इतरक्षपणाधिकरण	4 1 19	1	4 1 11

³² 4 | 1 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 1 अधिकरण 1

चौथे अध्याय का दूसरा पाद

(फल अध्याय, उक्तान्ति पाद, 20 सूत्र, 11 अधिकरण)

श्रीभाष्य के चौथे अध्याय का दूसरा पाद मृत्यु के ठीक पूर्व में शरीर छोड़ने की तैयारी से सम्बन्ध रखता है। शरीर छोड़ने के पूर्व प्रयाण की सारी तैयारी अदृश्य तरीके से शरीर के भीतर होती है। छान्दोग्य में इसका उल्लेख है एवं बादरायण मुनि ने इस पाद के सूत्रों से इसका सम्यक विवेचन किया है। अद्वैत मत का 'जीवन मुक्तवाद' इस दूसरे पाद से निरस्त हो जाता है। इस पाद में 20 सूत्र हैं तथा 11 अधिकरण हैं।

135 | वागधिकरण 2 सूत्र 4|2|1 से 4|2|2 तक (अधि 4|2|1)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के पहले अधिकरण में 2 सूत्र हैं। छान्दोग्य उपनिषद के सद्विद्या नामक छठा अध्याय यहां का विषय वाक्य है। इसका उल्लेख बताता है कि जब जीव शरीर छोड़ने की तैयारी करता है तब वाणी का अंग मन से मिलता है। मन मुख्य प्राण से मिलता है। तब मुख्य प्राण जीव से मिलता है। तत्पश्चात् जीव, मन, मुख्यप्राण, तथा सभी इन्द्रियां तेजस से मिलते हैं। पुनः सब हृदयस्थ अन्तर्यामी परमात्मा से मिलते हैं। यहां मिलने का तात्पर्य है एकहोना। उपनिषद में इसे 'संपत्ति' कहा गया है 'इति वाचो मनसि संपत्तिश्रुतिः'। यहां संशय का विषय है कि वाणी मन से एक होती है या वाणी का अंग।

पूर्वपक्षी का मत है कि कार्य कारण सिद्धान्त में कार्य अंततः कारण में मिल जाता है। शरीर में मन वाणी को उत्पन्न करने वाला अंग का कारक नहीं है इसलिये वाणी मन से मिल जाती है न कि वाणी को उत्पन्न करने वाला अवयव मन से मिलता है। सूत्र 4|2|1 'वाङ्गनसि दर्शनाच्छब्दाच्च' से सूत्रकार पूर्वपक्ष के मत का खंडन करते हैं। वाक् का अर्थ है वागिन्द्रिय यानी वाणी उत्पन्न करने वाला अवयव। श्रुति में उल्लेख है 'संपद्यते'। यहां इसे सूत्र में जोड़ने पर 'वाङ्गनसि संपद्यते' हो जाता है। दो कारण से वाणी का अवयव मन से मिलता है। पहला कारण है दर्शनात् एवं दूसरा है शब्दाच्च। अर्थात् प्रयाण करने वाला व्यक्ति वाणी हीन हो जाता है। हालांकि कुछ मानसिक गतिविधि दिखायी पड़ती है। 'शब्दाच्च' का अर्थ है उक्त उपनिषद वाक्य।

सूत्र 4|2|2 'अतएव सर्वान्यणु' का तात्पर्य है कि वाणी के साथ दसो इन्द्रियां मन से मिल जाती हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय : आंख, नाक, कान, जीभ, एवं त्वचा। पांच कर्मेन्द्रिय : हाथ, पैर, वाणी का अवयव यानी कंठ, यौनांग, तथा मलमूत्र विसर्जन के अवयव।

136 | मनोधिकरण 1 सूत्र 4|2|3 (अधि 4|2|2)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। शरीर छोड़ने के समय वाणी से प्रारंभकर सब इन्द्रियां मन से मिल जाते हैं। तत्पश्चात् मन सबों को लेकर मुख्यप्राण से मिल जाता है। सूत्र 4|2|3 'तन्मनः प्राण उत्तरात्' का अर्थ है कि मन प्राण में लय हो जाता है। यहां 'उत्तरात्' का अर्थ पूर्व के वाक्य 'वाक् मनसि संपद्यते' के तत्पश्चात् है। इस अधिकरण में एक और संशय का निराकरण होता है। छान्दोग्य उपनिषद के 6|6|5 में 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' का उल्लेख है यानी यह प्रतीत होता है कि अन्न मन का कारण है। जल अन्न का कारण है 'ता अन्नमसृजन्त'। इसके बाद 'आपोमयः प्राणः' से प्रतीत होता है कि 'जल प्राण का कारण है'। उक्त वाक्यों का यह आशय प्रतीत होता है कि 'मन जल में लय हो जाता है' क्योंकि जल ही अंततः इसका

कारण है। कार्य कारण सिद्धान्त से कार्य का कारण में लय हो जाता है। अतः सभी इन्द्रियों के साथ मन का जल में लय हो जाता है। पूर्वपक्षी इसी आशय का अर्थ करते हैं परंतु इस आशय का अर्थ संशय उत्पन्न करता है। 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' तथा 'आपोमयः प्राणः' का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्न मन का कारण है और जल मुख्यप्राण श्वास का कारण है अपितु इसका आशय है कि अन्न मन की कार्यक्षमता की अभिवृद्धि करता है, तथा जल मुख्यप्राण श्वास की कार्यक्षमता की अभिवृद्धि करता है। अतः जीव का शरीर छोड़ते समय सभी इन्द्रियों के साथ मन का मुख्यप्राण श्वास में लय हो जाने का पूर्वोक्त अर्थ उचित है।

137 | अध्यक्षाधिकरण 1 सूत्र 4|2|4 (अधि 4|2|3)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के तीसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। शरीर छोड़ने की तैयारी में पूर्व में बताया गया कि वाणी के अवयव से प्रारंभ कर सभी इन्द्रियों का लय मन में होता है। तत्पश्चात् सब इन्द्रियों के साथ मन का लय मुख्यप्राण श्वास में हो जाता है। अब सबों का यानी इन्द्रिय, मन, एवं मुख्यप्राण श्वास का लय जीव में होता है। परंतु पूर्वपक्षी का मत है कि सबों का लय जीव में न होकर तेजस यानी पंचभूत में होता है। पूर्वपक्षी छान्दोग्य का उद्धरण देते हैं 'प्राणः तेजसि, तेजः परस्यां देवतायम्'। इस उद्धरण में जीव का उल्लेख नहीं है। सूत्र 4|2|3 'सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः' से पूर्वपक्षी के उक्त मत का खंडन करते हैं। अर्थात् मुख्यप्राण का सभी इन्द्रियों के अध्यक्ष यानी नेता जीव से संसर्ग होता है यानी जीव में लय होता है। इसका प्रमाण बृहदारण्य एवं प्रश्नोपनिषद के वाक्य में उपलब्ध है। इसीतरह उपनिषद में यह भी उल्लेख है कि मुख्यप्राण जीव के साथ शरीर से बाहर निकलता है। अतः इन्द्रियों के साथ मुख्यप्राण का तेजस में लय जीव के माध्यम से होता है। यह उसी तरह से है जैसे यह कहना कि यमुना का लय सागर में होता है यानी यमुना गंगा के माध्यम से सागर में लीन हो जाती है।

138 | भूताधिकरण 2 सूत्र 4|2|5 से 4|2|6 तक (अधि 4|2|4)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के चौथे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। पूर्वपक्षी छान्दोग्य के सन्दर्भ 'प्राणः तेजसि' के अनुसार कहते हैं कि इन्द्रिय, मन, एवं मुख्यप्राण अंततः तेजस यानी अग्नि तत्व में लीन होते हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि पांच तत्वों यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी में से मुख्यप्राण का मिलन मात्र अग्नि तत्व से होता है न कि सभी पांचों से। सूत्रकार इसका खंडन करते हैं। सूत्र 4|2|5 'भूतेषु तच्छ्रुतेः' का तात्पर्य है कि सभी इन्द्रिय, मन, मुख्यप्राण, एवं जीव सभी भूतों के साथ मिल जाते हैं। ऐसा ही बृहदारण्य में उल्लेख है। जीव शरीर में सभी भूतों के साथ संपर्क बनाये हुए घूमता है। पूर्वपक्षी का पुनः मत है कि जीव सभी भूतों के साथ न मिलकर एक एक से ही सम्पर्क करता है। सूत्र 4|2|6 'नैकस्मिन् दर्शयतो हि' से स्पष्ट है कि एक तत्व कुछ भी करने में अक्षम हैं सबों के साथ सम्मिश्रण से ही भूतों में कार्यक्षमता आती है। इसे पंचीकरण या त्रिवृत करण से समझना होगा। एक भूत के साथ अन्य के मिश्रण का अनुपात 50 % पहले वाले का तथा अन्य चार का 12.5 % के हिसाब से मिश्रण होता है। इसी तरह से छान्दोग्य का त्रिवृतकरण बताता है कि अग्नि, जल, एवं पृथ्वी का संयोग 50%, 25%, एवं 25% से होता है। अतः 'प्राणः तेजसि' में तेजस का अर्थ है अग्नि 50%,

जल 12.5 %, पृथ्वी 12.5 %, आकाश 12.5 %, एवं वायु 12.5 % । अतः शरीर छोड़ने की अंतिम तैयारी में इन्द्रियों, मन, तथा मुख्यप्राण के साथ जीव अंततः पांच भूतों के साथ संसर्ग में आता है ।

139 | असृत्युपकमाधिकरण 7 सूत्र 4।2।7 से 4।2।13 तक (अधि 4।2।5)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के पांचवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं । इस अधिकरण में 'जीवन मुक्ति' यानी जीवितावस्था में ही मोक्ष प्राप्त करने का खंडन किया गया है । जीव के दो भेद हैं : पहला विद्वान यानी उपासक या साधक या प्रपन्न या शरणगत जो वैकुण्ठ में मोक्ष की कामना करता है, तथा दूसरा अविद्वान यानी मोक्ष की कामना न करने वाला । प्रश्न उठता है कि दोनों तरह के जीव के लिये शरीर छोड़ने की तैयारी की प्रक्रिया समान है या भिन्न है । पूर्वपक्षी का मत है उपर्युक्त प्रक्रिया केवल अविद्वान के साथ लागू होता है क्योंकि विद्वान यानी उपासक तो जीवन मुक्त हो जाता है यानी शरीर छोड़ने के पहले ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

सूत्र 4।2।7 'समाना चाऽऽसृत्युपकमादमृतत्वं चानुपोष्य' में 'समाना' का अर्थ है कि विद्वान या अविद्वान दोनों के लिये शरीर छोड़ने की तैयारी की प्रक्रिया समान है यानी इन्द्रियां मन में, मन में मुख्यप्राण में, मुख्यप्राण जीव में, तथा जीव पंचभूत के साथ परमात्मा में लय प्राप्त करता है । 'असृत्युपकमात्' का अर्थ है वैकुण्ठ जाने का मार्ग मिलने तक । जीव इस मार्ग पर नाड़ी के माध्यम से आता है । इस नाड़ी को मूर्धन्य या सुषुम्ना या ब्रह्मनाड़ी कहते हैं । नब्ज की गति से नाड़ी का बोध होता है । हृदयस्थल में 101 नाड़ियां हैं । 101वां नाड़ी जो नाभि से शिर तक जाती है मूर्धन्य कही जाती है । इसी नाड़ी से अर्चिरादि मार्ग में प्रवेश मिलता है । दिव्य वैकुण्ठ को जाने वाले मूर्धन्य के माध्यम से नश्वर शरीर को छोड़कर अर्चिरादि मार्ग में प्रवेश करते हैं । स्वर्ग या नरक जाने वाले अविद्वान व्यक्ति अन्य 100 नाड़ियों से शरीर से बाहर निकलता है जबकि उपर्युक्त 101वां नाड़ी से योगनिष्ठ यानी विद्वान शरीर को छोड़ते हैं । अतः विद्वान या अविद्वान के लिये शरीर से निकलने की प्रक्रिया एक समान है परंतु अंतर नाड़ी का एवं अंततः मार्ग का है ।

सूत्र के अन्य शब्दों 'अमृतत्वं चानुपोष्या' के अर्थ की व्याख्या के लिये कठोपनिषद का उल्लेख द्रष्टव्य है 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' । अर्थात् उपासक जब तृष्णा का परित्याग कर देता है तब वह मुक्त के समान हो जाता है । अतः अमृतत्वं का अर्थ हुआ कि योगनिष्ठ बनने के बाद का पाप उपासक को स्पर्श नहीं करता तथा पूर्व के पाप का क्षय हो जाता है । यह उपासना का फल है । 'अनुपोष्य' का अर्थ है कि शरीर त्यागने के पूर्व ही जीव अमृतत्वं को प्राप्त कर लेता है । इस अधिकरण के कुछ अन्य महत्वपूर्ण आशय का संकलन निम्नवत है । 1। शरीर छोड़ते ही प्रारब्ध कर्म का अंत हो जाता है परंतु जीव जब तक दिव्य वैकुण्ठ नहीं पहुंचता तब तक वह बद्ध जीव की तरह रहता है । अतः जीवनमुक्त का सिद्धान्त भ्रामक है । 2। नश्वर शरीर छोड़ने पर प्राणी सूक्ष्म शरीर को प्राप्त करता है जो दृश्यमान नहीं रहता है । इस शरीर का अंत विरजा नदी पार करने पर होता है । अर्चिरादि से जाने वाले विद्वान प्राणी को सूक्ष्म शरीर की आवश्यकता नहीं रहती परंतु मार्ग में कौपीतकी में उल्लिखित वाक्यानुसार चन्द्र से संभाषण के लिये सूक्ष्म शरीर वांछित है । 3। कठोपनिषद का उपर्युक्त वाक्य 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते' मृत्यु के बाद के अमृतत्व का तात्पर्य नहीं रखता अपितु इसका अर्थ है जबतक विद्वान जीवित है । 4। सूक्ष्म शरीर के पक्ष में सूत्रकार का एक अन्य तर्क

है। जब तक जीव शरीर में रहता है पूरा शरीर उष्ण रहता है। जब वह शरीर छोड़ता है तब शरीर का एक विशेष भाग उष्ण रहता है जबकि अन्य भाग शीतल हो जाता है। इससे भी सूक्ष्म शरीर की उपस्थिति का आभास होता है।

140 | परिसंपत्ति अधिकरण 1 सूत्र 4|2|14 (अधि 4|2|6)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के छठे अधिकरण में 1 सूत्र है। जब जीव नश्वर शरीर से निकलता है तब इन्द्रियां मन मुख्यप्राण तथा जीव सूक्ष्म भूत में लय रहते हैं। संशय इस बात का है कि सूक्ष्म भूत के साथ जीव का अन्तर्यामी परमात्मा से कोई सम्बन्ध होता है या अपने यज्ञादि कर्मानुसार यह विभिन्न लोकों में जाता है। पूर्वपक्षी का मत है कि छान्दोग्य के अनुसार 'तेजः परस्यां देवतायाम्' के अनुसार सूक्ष्म भूत के साथ जीव प्राण मन एवं इन्द्रियों के साथ रहता है। सूत्रकार सूत्र 4|2|14 'तानि परे तथा ह्याह' में 'तानि' का अर्थ जीव सूक्ष्म भूत प्राण मन एवं इन्द्रियां बताते हैं तथा 'परे' का अर्थ परमात्मा बताते हैं। अर्थात् 'तेजः परस्यां देवतायाम्' के अनुसार सूक्ष्मभूत के साथ जीव मन प्राण एवं इन्द्रियों के साथ परमात्मा के साथ रहता है। परमात्मा के साथ होने से जीव क्षणिक विश्राम को प्राप्त होता है तथा तदुपरान्त वह अपने कर्मानुसार वैकुण्ठ स्वर्ग या नरक जाता है।

141 | अविभागाधिकरण 1 सूत्र 4|2|15 (अधि 4|2|7)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के सातवें अधिकरण में 1 सूत्र है। जब जीव परमात्मा के साथ होता है तब यह लय होना है या मात्र संयोग या मिलन है। मिलन में जीव एवं परमात्मा दो अलग इकाई के रूप में रहते हैं जबकि लय में जीव परमात्मा में आत्मसात हो जाता है। पूर्वपक्षी के मत से जैसे कार्य कारण में प्रवेश कर जाता है उसीतरह जीव का परमात्मा में लय होता है। सूत्र 4|2|15 'अविभागो वचनात्' से पूर्वपक्ष का खंडन होता है। अर्थात् सूक्ष्मभूत, जीव, प्राण, मन, एवं इन्द्रियां विना अपना अस्तित्व खोये परमात्मा से मिल जाते हैं। 'वचनात्' से अभिप्राय उपनिषद का उल्लेख 'तेजः परस्यां देवतायाम्' है। इस उपनिषद वाक्य के प्रारंभ 'वाङ्मनसि संपद्यते' में 'संपद्यते' का अभिप्राय है मिलन, न कि लय होना। इस वाक्य का अगला भाग है 'मनः प्राणे' जो 'मनः प्राणे संपद्यते' है। आगे का 'प्राणः तेजसि' 'प्राणः तेजसि संपद्यते' का अभिप्राय बताता है। अतः आगे का 'तेजः परस्यां देवतायाम्' 'तेजः परस्यां देवतायाम् संपद्यते' हो जाता है। यहां 'संपत्ति' शब्द विभिन्न इकाइयों के अविभाज्य मिलन के अर्थ का सूचक है।

142 | तदेकोधिकरण 1 सूत्र 4|2|16 (अधि 4|2|8)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के आठवें अधिकरण में 1 सूत्र है। ब्रह्म सूत्र के 545 सूत्रों में सूत्र 4|2|16 सबसे लम्बा सूत्र है। इस अधिकरण तक विभिन्न इकाइयों का परमात्मा के साथ मिलन विद्वान तथा अविद्वान दोनों के लिये लागू होता है। इसके बाद से दोनों में विभिन्नता आ जाती है। पूर्व में बताया गया है कि विद्वान जीव सुषम्ना या ब्रह्मनाड़ी या मूर्धन्य कहे जाने वाले 101 वीं नाड़ी से अर्चिरादि में प्रवेश कर दिव्य वैकुण्ठ को प्राप्त करता है। प्रश्न उठता है कि किस कारण से विद्वान मूर्धन्य नाड़ी में प्रवेश करता है जबकि अविद्वान दूसरे नाड़ी में प्रवेश कर जाते हैं। पूर्वपक्षी का मत है कि यह मात्र संयोग से होता है क्योंकि अनेकों सूक्ष्म नाड़ियों में से ब्रह्मनाड़ी में प्रवेशपाने के लिये कोई विशेष कारण नहीं है यह केवल संयोग मात्र है। सूत्र 4|2|16

‘तदेकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात् तच्छेष गत्यनुस्मृति योगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया’ से सूत्रकार पूर्वपक्ष को नकार देते हैं। ‘विद्यासामर्थ्यात्’ यानी परमात्मा पर स्थिर ध्यान करने से प्राप्त शक्ति। ‘तत् शेष गति अनुस्मृति योगाच्च’ यानी ‘ध्यान से प्रसन्न होकर’ जिसमें अर्चिरादि से वैकुण्ठ जाने के मार्ग का भी सहायक के रूप में विद्वान नित्य ध्यान करता है। ‘हार्देन’ में हार्द का अर्थ हृदय में रहने वाला परमात्मा है, तथा ‘हार्देन’ यानी परमात्मा से। ‘अनुगृहीत’ यानी विद्वान पर कृपा होती है। ‘ओकः अग्रे’ यानी हृदय का उर्ध्वभाग जहां जीव का वास होता है। ‘ज्वलनं प्रकाशित द्वारः शताधिकया’ यानी 101वीं नाड़ी या ब्रह्मनाड़ी को परमात्मा प्रकाशित करते हैं जिससे कि जीव बिना कठिनाई के इस द्वार से अर्चिरादि में प्रवेश कर जाये।

सूत्र का आशय है कि जीव जब परमात्मा के साथ अर्चिरादि का भी ध्यान करता है तब परमात्मा उससे प्रसन्न होकर हृदय के उपरी भाग से निकलने वाली ब्रह्म नाड़ी में जीव को प्रवेश करा देते हैं और जीव वहां से अर्चिरादि को पकड़कर दिव्यधाम वैकुण्ठ पहुंच जाता है। यही स्थिति प्रपन्न जीव के साथ भी होती है जो ध्यान न करके मात्र शरणागति का सहारा लेता है।

143 | रश्म्यनुसाराधिकरण 1 सूत्र 4|2|17 (अधि 4|2|9)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के नौवें अधिकरण में 1 सूत्र है। 101वीं नाड़ी से निकलकर जीव सूर्यमंडल की किरणों के सहारे अर्चिरादि मार्ग में आगे बढ़ता है। इसका उल्लेख छान्दोग्य 8 | 6 | 5 में मिलता है ‘अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामति अथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते’। पूर्वपक्षी का संशय है कि रात्रि में विद्वान जब शरीर छोड़ता है तब सूर्य की किरण तो नहीं रहती है तब कैसे वह सूर्यमंडल को जायेगा। सूत्रकार इस मत को छान्दोग्य के पूर्वोक्त उद्धरण से निरस्त करते हैं। सूर्य की किरण गर्मी में पसीना उत्पन्न करता है परंतु बादल से छिपजाने पर गर्मी समाप्त हो जाती है। शीतकालीन सूर्य की किरण से पसीना कभी नहीं चलता। अतः रात्रि में सूर्य की किरण का न मिलना निरस्त होता है क्योंकि उसका प्रभाव परोक्षरूप से बादल से छिपे स्थिति की तरह तो रहता ही है।

144 | निशाधिकरण 1 सूत्र 4|2|18 (अधि 4|2|10)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के दसवें अधिकरण में 1 सूत्र है। पूर्व के अधिकरण में यह उल्लेख है कि रात्रि में भी शरीर छोड़ने पर विद्वान सूर्य किरण के सहारे जाता है। फिर भी पूर्वपक्षी दूसरा संशय प्रस्तुत करते हैं। उपनिषद में ऐसा उल्लेख मिलता है कि शरीर छोड़ने का सर्वोत्तम काल दिन, शुक्ल पक्ष, तथा उत्तरायण का सूर्य है। इस अवधि में मोक्ष मार्ग मिलता है। इसके विपरीत प्रयाण काल अगर रात्रि, कृष्णपक्ष, तथा दक्षिणायन का सूर्य हो तो मोक्ष मार्ग नहीं मिलता है। अतः पूर्वपक्षी का मत है कि विद्वान का रात्रिकाल में शरीर छोड़ना मोक्षदायी नहीं होता है। सूत्र 4 | 2 | 18 ‘निशि नेतिचेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात् दर्शयति च’ से सूत्रकार पूर्वपक्ष का खंडन करते हैं। ‘निशि’ यानी अगर विद्वान का शरीर रात में छूटे। ‘नेति चेत्’ यानी मोक्ष नहीं मिलता। ‘न’ यानी ऐसा नहीं होता कि विद्वान मोक्ष पाता है। ‘यावत् देहभावित्वत्’ यानी जब तक देह है तब तक प्रारब्ध कर्म भी है। देह का छूटना एवं प्रारब्ध का नष्ट होना एक साथ होता है। शरणागति करने वाले या ध्यान करने वाले विद्वान का अंतिम जन्म होने के कारण मृत्यु के साथ प्रारब्ध का नाश हो जाता है। भगवद रामानुज कहते हैं कि प्रारब्ध

के अतिरिक्त उपासना के पूर्व जो सारे पाप पुण्य कर्म संग्रहित होते हैं उन सबों का क्षय परमात्मा की कृपा से होता है। उपासना के प्रारंभ के पश्चात् अनजाने में किये गये पाप उपासक को स्पर्श भी नहीं करते। उपासना के अन्तराल में प्रारब्ध कर्म साथ रहता है और इसका कब अंत होगा यह परमात्मा के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अगर कर्म के कारण विद्वान का अंत रात में भी होता है तो पूर्वोक्त कर्म के नाश की गति के कारण वह मोक्षगामी होता है। प्रपन्न के उदाहरण में जब आचार्य द्वय मंत्र से शरणागति कराते हैं तो शरणागति के समय ही सब तरह के कर्म का क्षय हो जाता है।

‘दर्शयति च’ यानी उपर्युक्त तथ्य का छान्दोग्य 6 | 142 में स्पष्ट उल्लेख है ‘तस्य तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये’। अभिप्राय है कि प्रारब्ध के अंत होने तक विलम्ब है अन्यथा उपासक मोक्षगामी होता है। अतः रात्रि का प्रयाण मोक्ष में बाधक नहीं होता।

145 | दक्षिणायनाधिकरण 2 सूत्र 4 | 2 | 19 एवं 4 | 2 | 20 (अधि 4 | 2 | 11)

चौथे अध्याय के दूसरे पाद के ग्यारहवें अधिकरण में 2 सूत्र हैं। पूर्व के अधिकरण में रात्रि के अंत से मोक्ष अवरूद्ध होने के संशय को दूर किया गया। तैत्तिरीय के अंतिम अनुवाक्य में उल्लेख है कि दक्षिणायन का सूर्य मोक्ष का बाधक है ‘अथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसस्सायुज्यं गच्छति’। अर्थात् दक्षिणायन सूर्य से पितृलोक मिलता है एवं चन्द्र को प्राप्त करता है। जो चन्द्र को प्राप्त करते हैं वे पुनः जन्म लेते हैं। पूर्वपक्षी भीष्मपितामह का उदाहरण देते हैं जिन्होंने उत्तरायण सूर्य के लिये वाणशय्या पर प्रतीक्षा करना श्रेयस्कर समझा था।

सूत्र 4 | 2 | 19 ‘अतश्चायनेऽपि दक्षिणे’ का तात्पर्य है कि दक्षिणायन रहने पर भी विद्वान मोक्ष प्राप्त करता है। पुनर्जन्म केवल उनके लिये है जो न तो उपासना किये और न शरणागत हुए। तैत्तिरीय का उल्लेख स्पष्ट है ‘तस्मादब्रह्मणो महिमानमाप्नोति’ अर्थात् दक्षिणायन से चन्द्र को प्राप्त करके भी ब्रह्म को प्राप्त होता है। चन्द्र को प्राप्त होना विश्राम हेतु अल्पकालीन होता है। भीष्म वसु थे और शरीर छोड़ने के बाद देवलोक गये न कि वैकुण्ठ। अतः उत्तरायण के सूर्य का दृष्टान्त मृत्युकाल की श्रेष्ठता बताता है न कि मोक्ष की अनिवार्यता। अगला संशय गीता के 8 | 23 से 26 तक के श्लोक से उत्पन्न होता है। ‘यत्रकाले त्वनावृत्तिं चैव योगिनः। प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ। अग्निर्ज्योतिरुहश्शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।..... तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते। शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते। एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः’। इस संशय का निवारण सूत्र 4 | 2 | 20 ‘योगिनः प्रति स्मर्येते स्मार्ते चैते’ से हुआ है। श्रीकृष्ण ने मृत्यु काल में अर्जुन को धूममार्ग तथा अर्चिरादि मार्ग का महत्व सुनाया है। एक से पितृलोक तथा दूसरे से वैकुण्ठ लोक मिलता है। अतः धूममार्ग से जाने वाला व्यक्ति स्वर्ग के सुख भोगने के पश्चात् पुनः यहां मर्त्यलोक में लौट आता है। अर्चिरादिमार्ग से दिव्यवैकुण्ठ जाने वाला विद्वान प्राणी चरम आनंद में लीन रहकर दिव्य दंपति की सेवा करता है। वह लौटकर नहीं आता।

तालिका 18 : चौथे अध्याय के दूसरे पाद के अधिकरण (20 सूत्र, 11 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ³³
135 वागधिकरण	4 2 1 से 4 2 2 तक	2	4 2 1
136 मनोधिकरण	4 2 3	1	4 2 2
137 अध्यक्षाधिकरण	4 2 4	1	4 2 3
138 भूताधिकरण	4 2 5 से 4 2 6 तक	2	4 2 4
139 आसृत्युपक्रमाधिकरण	4 2 7 से 4 2 13 तक	7	4 2 5
140 परिसंपत्ति अधिकरण	4 2 14	1	4 2 6
141 अविभागाधिकरण	4 2 15	1	4 2 7
142 तदेकोधिकरण	4 2 16	1	4 2 8
143 रश्म्यनुसाराधिकरण	4 2 17	1	4 2 9
144 निशाधिकरण	4 2 18	1	4 2 10
145 दक्षिणायनाधिकरण	4 2 19 एवं 4 2 20	2	4 2 11

³³ 4 | 2 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 2 अधिकरण 1

चौथे अध्याय का तीसरा पाद

(फल अध्याय, गति पाद, 15 सूत्र, 5 अधिकरण)

श्रीभाष्य के चौथे अध्याय का तीसरा पाद गति पाद है। इस पाद में 15 सूत्र हैं तथा 5 अधिकरण हैं। इस पाद में अर्चिरादि गति या अर्चिरादि मार्ग का वर्णन है। इस मार्ग को देवयान भी कहते हैं। गति का अर्थ यात्रा या मार्ग दोनों है। श्रीमन्नारायण ने बारह अतिवाहक कहे जाने वाले स्वर्गिकों को लगा रखा है जो योगनिष्ठ या प्रपन्न जीव को पृथ्वी से विरजा नदी तक मार्गदर्शन करते हुए ले जाते हैं। पृथ्वी को लीला विभूति कहते हैं तथा वैकुण्ठ नित्य विभूति है। विरजा नदी दोनों के बीच सीमा का काम करती है। 12 अतिवाहक हैं : 1। अग्नि के देव अर्चि या ज्वाला कहे जाते हैं। 2। दिन रात के स्वामी अहः या दिवस कहे जाते हैं। 3। शुक्ल पक्ष के देव आपूर्यमान पक्ष या ज्योत्सना पक्ष कहे जाते हैं। 4। दक्षिण से उत्तर संक्रमण करते सूर्य के छः महीने की अवधि के देव को उत्तरायण या पङ्गिति मास कहते हैं। 5। बारह महीने की अवधि के देव को सम्वत्सर या वत्सर कहते हैं। 6। हवा के देव को वायु या पवन कहते हैं। 7। सूर्य देव को आदित्य या तपन कहते हैं। 8। चंद्र को चंद्रमास या चंद्र कहते हैं।

1 से 8 तक के सभी देवों की अपनी क्षेत्रसीमा है। अपनी सीमा में वे जीव को ले जाते हैं तथा विश्रादि की उचित व्यवस्था करते हैं तथा आगे की सीमा तक पहुंचा कर जीव को उस क्षेत्र के अतिवाहक को सौंप देते हैं। 9। तड़ित के देव को विद्युत पुरुष कहते हैं जो विरजा नदी तक ले जाते हैं। 10। जल के देव वरुण। 11। देवों के राजा इन्द्र। 12। प्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा।

वरुण, इन्द्र, तथा प्रजापति विद्युत देवता का साथ देते हैं जो प्रकृति मंडल की सीमा विरजा नदी तक जीव को ले जाते हैं। अतिवाहक के अतिरिक्त श्रीमन्नारायण स्वयं भी मुक्त जीव की यात्रा का पूरा ध्यान रखते हैं। चूंकि पहले अतिवाहक अग्नि देव हैं इसलिये इस मार्ग का नाम प्रारंभ के अतिवाहक से जुड़ गया यानी अर्चिरादि हो गया।

इस जगत में अनेकों ब्रह्माण्ड हैं। सबके पृथक पृथक चतुर्मुख ब्रह्मा हैं तथा सबके पृथक 14 लोक हैं। सब का अर्चिरादि मार्ग पृथक है परंतु सब मुक्तात्मा एक ही नित्य विभूति यानी दिव्य वैकुण्ठ धाम में पहुंचते हैं। परमपद सोपान में श्री देशिकान् ने अतिवाहक के बारे में दो तरह की बात बतायी है। एक विचार से अतिवाहक कर्म के वशीभूत होते हैं तथा पाप पुण्य का फल भोगते हैं। दूसरे विचार से ये सभी नित्यसूरी अनंत गरुड़ तथा विष्वक्सेन के समान वैकुण्ठ के पार्षद होते हैं। एक और मत है कि विद्युत पुरुष से भिन्न वैकुण्ठ के अमानव पुरुष होते हैं जो जीव को संरक्षण प्रदान कर विरजा तक ले आते हैं। वैकुण्ठ के प्रत्येक वस्तु को अप्राकृत कहते हैं। ये सभी सत्व गुण से बने होते हैं इसीलिये शुद्ध सत्व भी कहे जाते हैं। इस प्रकृति मंडल के वस्तु प्राकृत कहे जाते हैं जो सत्व राजस तथा तामस गुण के मिश्रण से बने होते हैं।

146 | अर्चिरादि अधिकरण 1 सूत्र 4|3|1 (अधि 4|3|1)

चौथे अध्याय के तीसरे पाद के पहले अधिकरण में 1 सूत्र है। इसके विषय वाक्य छान्दोग्य, कौषीतकी तथा बृहदारण्यक उपनिषद हैं। छान्दोग्य उपनिषद में अर्चिरादि गति कई स्थानों पर वर्णित हैं। चौथे अध्याय के चौदहवें उपभाग में उपकोसल विद्या के अंत में, पाचवें अध्याय के पंचाग्नि विद्या के अंत में, तथा आठवें अध्याय के छठे भाग में इसका वर्णन मिलता है। कौषीतकी उपनिषद के पहले अध्याय में तथा बृहदारण्यक में दो स्थानों पर भी इसका वर्णन मिलता है। उपर्युक्त उपनिषद में अर्चिरादि मार्ग के ठहराव स्थल तथा उनके क्रम में विभिन्नता पायी जाती है। पूर्वपक्षी का मानना है कि अर्चिरादि मार्ग एक निश्चित मार्ग न होकर कई विकल्पों के साथ स्थित है तथा जीव भी अपनी सुविधा से किसी एक मार्ग का अनुसरण करते हैं। छान्दोग्य के चौथे एवं पांचवें अध्याय में समान मार्ग का उल्लेख है। आठवें अध्याय में जीव को सूर्य रश्मि का सहारा लेकर उर्ध्वगामी होते बताया गया है जैसा कि पूर्वोक्त तीसरे पाद के नौवें अधिकरण 3|3|9 यानी रश्मि अधिकरण में वर्णित है। कौषीतकी एवं बृहदारण्यक में वर्णित अर्चिरादिगति के क्रम तालिका 18 में द्रष्टव्य है।

तालिका 18: कौषीतकी एवं बृहदारण्यक में वर्णित अर्चिरादिगति के क्रम

क्रम	कौषीतकी उपनिषद	बृहदारण्यक उपनिषद 8 2 15 पंचाग्नि विद्या के अंत का उल्लेख	बृहदारण्यक उपनिषद के 7 18 2 का उल्लेख
1	ब्रह्मानाड़ी से शरीर छोड़कर निकलना		
2	अग्नि लोक	अग्नि के देव	शरीर से निकलकर वायु के देव के पास जाता है। वायु देव रथ के चक्के के बराबर एक छिद्र बनाते हैं जिससे ऊपर निकलकर जीव सूर्य देव के पास जाता है।
3	वायु लोक	दिन के देव	वाद्ययंत्र 'आडम्बर' के छिद्र से सूर्य देव जीव को ऊपर निकालते हैं वहां से चन्द्रदेव के पास आता है।
4	वरुण लोक	शुक्ल पक्ष के देव	चन्द्रदेव दुन्दुभी के छेद से जीव को ऊपर निकालते हैं और वह वैकुंठ में पहुंचता है। वैकुंठ न तो गर्म है न ठंडा। इसे 'अहिमम' यानी वर्षाविहीन कहते हैं। यहां दुःख का लेश मात्र नहीं है तथा सदा के लिये जीव यहां रहता है और पुनः पृथ्वी पर कभी नहीं लौटता।
5	आदित्य लोक	उत्तरायण के देव	
6	इन्द्रलोक	देवलोक यानी वायु के देव क्योंकि देवों का वास वायु बहने वाले लोक में बताया जाता है।	
7	प्रजापति लोक	सूर्य देव	

8	ब्रह्मलोक यानी वैकुण्ठ	तड़ित या विद्युत के देव मानस के साथ वैकुण्ठ में पहुंचना	
---	---------------------------	---	--

पूर्वपक्षी के मत से जीव किसी भी अर्चिरादि गति को चुनता है तथा वैकुण्ठ पहुंचता है। सूत्र 4।3।1 'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः' से सूत्रकार पूर्वपक्ष का खंडन करते हैं। अर्थात् अर्चिरादि का एक ही सर्वप्रसिद्ध मार्ग है और जीव उसी मार्ग से दिव्य वैकुण्ठ पहुंचता है। जैसा कि तीसरे अध्याय के तीसरे पाद यानी गुणोपसंहार पाद में वर्णित है कि कुछेक ब्रह्मविद्या में विधि तथा श्रीमन्नारायण के कल्याण गुणों में विभिन्नता पाया जाता है परंतु सबों को एक साथ संग्रहित कर उस पर ध्यान किया जाने का प्रावधान है उसीतरह विभिन्न उपनिषद में अतिवाहक के भिन्न भिन्न नाम रहने पर भी कुल 12 अतिवाहक देव होते हैं और विभिन्न उपनिषदों में वर्णित देवों को एक साथ संग्रहित करके 12 अतिवाहक देव निश्चित हुए हैं।

147 | वाय्वधिकरण 1 सूत्र 4।3।2 (अधि 4।3।2)

चौथे अध्याय के तीसरे पाद के दूसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। इस अधिकरण में देवों के क्रम का निर्णय हुआ है। छान्दोग्य में सूर्य देव वर्ष के देव के बाद आते हैं। बृहदारण्यक में वायु देव को देवलोक कहा गया तथा इनका स्थान वर्ष के देव तथा सूर्य देव के बीच में वर्णित है। पूर्वपक्षी के मत से एक ही अर्चिरादि गति का कोई नियम नहीं है। विभिन्न उपनिषद में वर्णित भिन्न भिन्न ब्रह्म विद्या से साधक उपासना करने का अधिकारी है तथा उसी उपनिषद में वर्णित अर्चिरादि गति का वही अधिकारी बनता है जिस उपनिषद के ब्रह्मविद्या की वह साधना करता है। पूर्वपक्षी वायु देव एवं देवलोक को पृथक मानते हैं।

सूत्र 4।3।2 'वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम्' से सूत्रकार पूर्वपक्षी को नकार देते हैं और वायु देव के स्थान को वर्ष के देव के ऊपर तथा सूर्य देव के नीचे निर्धारित करते हैं। 'अविशेष' का अर्थ है सामान्य यानी सामान्य अर्थ से बृहदारण्यक में वर्णित देवलोक का अर्थ होता है देवों का लोक जो स्वर्ग है। अतः यह वायु का लोक है। 'विशेष' का अर्थ है निश्चित यानी देवलोक के स्थान पर वायु लोक का उल्लेख है अतः देवलोक का तात्पर्य वायु है।

वर्ष के देव को उत्तरायण के देव से ऊपर स्थान प्राप्त है क्योंकि वर्ष की अवधि उत्तरायण की अवधि से बड़ी है। बृहदारण्यक में देवलोक उत्तरायण देव के बाद आता है। इस तरह से दो तरह के क्रम बनते हैं। उपनिषद के क्रम को पतक्रम कहते हैं तथा तर्क पर आधारित क्रम को अर्थक्रम कहते हैं। अर्थक्रम को मानते हुए वायु का स्थान वर्ष के देव तथा सूर्य के बीच निर्धारित होता है।

148 | वरुणाधिकरण 1 सूत्र 4।3।3 (अधि 4।3।3)

चौथे अध्याय के तीसरे पाद के तीसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। तालिका 18 में कौपीतकी के अनुसार अर्चिरादि का क्रम द्रष्टव्य है जहां इन्द्र, वरुण, तथा प्रजापति का उल्लेख है। इस अधिकरण में इस प्रश्न का समाधान है कि इन्द्र, वरुण, तथा प्रजापति को 12 अतिवाहक देवों की श्रेणी में कहां स्थान दिया जाय। पूर्वपक्षी के मत से

इनको वायु के बाद ही स्थान देना चाहिये। सूत्र 4।3।3 'तटितोऽधि वरुणः संबन्धात्' का तात्पर्य है कि 'तटित' यानी विद्युत के पूर्व वरुण को स्थान दिया जाय क्योंकि जल के देवता वरुण एवं विद्युत या तड़ित में परस्पर सम्बन्ध है। विद्युत पुरुष को अमानव पुरुष कहते हैं जो अंतिम स्थिति में जीव को वैकुण्ठ में ले जाते हैं। अतः इन्द्र एवं प्रजापति का भी स्थान विद्युत एवं वरुण के पूर्व ही होगा।

149 | आतिवाहिकाधिकरण 2 सूत्र 4।3।4 एवं 4।3।5 (अधि 4।3।4)

चौथे अध्याय के तीसरे पाद के चौथे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। पश्न उठता है कि 12 आतिवाहिक स्थान हैं या देव हैं। आतिवाहिक का अर्थ होता है साथ ले जाने वाला। इस तरह का संशय समय सूचक शब्द दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, एवं वर्ष के उल्लेख के कारण होता है। इन सबों का तात्पर्य एक विशेष अवधि से है। पूर्वपक्षी के मत से ये सारे लोक हैं यानी विश्राम तथा मनोरंजन के स्थान हैं। सूत्र 4।3।4 'आतिवाहिकाः तल्लिङ्गात्' में 'तल्लिङ्गात्' से यह स्पष्ट होता है कि श्रीमन्नारायण ने ही 12 आतिवाहिकों को जीव की आगवानी तथा मार्ग दर्शन के लिये निर्धारित किया है। जैसे 'तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयति' से अमानव पुरुष जीव को ब्रह्म तक ले जाते हैं उसी तरह अन्य 11 भी मार्ग में जीव को एक आतिवाहिक से दूसरे आतिवाहिक तक ले जाते हैं।

150 | कार्याधिकरण 10 सूत्र 4।3।6 एवं 4।3।15 (अधि 4।3।5)

चौथे अध्याय के तीसरे पाद के अंतिम तथा पाचवें अधिकरण में 10 सूत्र हैं। आतिवाहिक के विवेचन से कुछ संशय भी उत्पन्न होते हैं। संशय 1 : क्या ब्रह्मनिष्ठ जीव हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा के पास ले जाया जाता है ? । संशय 2 : क्या ब्रह्मनिष्ठ जीव वैकुण्ठ जाता है ? । संशय 3 : क्या ब्रह्मनिष्ठ जीव प्रत्यगात्मा के पास ले जाया जाता है जिसपर उसने अपनी आत्मा मानकर ध्यान किया था ? ।

सूत्र 4।3।6 'कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः' पूर्वपक्ष का सूत्र है। बादरायण मुनि ने जब ब्रह्मसूत्र की रचना की तो उनके पास उनके शिष्य बदरि तथा जैमिनि उपस्थित थे। अपने शिष्यों को सम्मानित करने के लिये सूत्रकार ने कुछेक प्रश्नों पर उनका भी परामर्श लिया है। सूत्र का 'कार्यं' शब्द चतुर्मुख ब्रह्मा का सूचक है जो श्रीमन्नारायण की नाभि से निकलने के कारण हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं। कारण स्वयं श्रीमन्नारायण हैं तथा कार्य चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। सूत्रकार के शिष्य बादरि मुनि का मत है कि परमात्मा का सर्वत्र विराजमान रहने के कारण ब्रह्मनिष्ठ जीव को परमात्मा के पास वैकुण्ठ में न ले जाकर सत्यलोक यानी हिरण्य गर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा के लोक में ले जाया जाता है। बृहदारण्य 8।2।15 'पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति' में बहुवचन ब्रह्मलोकान् का तात्पर्य है कि अनेकों या अनंत चतुर्मुख ब्रह्मा के लोकों में, जो पत्येक ब्रह्माण्ड के पृथक पृथक सत्यलोक के सूचक हैं। पुनः छान्दोग्य 8।14।1 का उल्लेख 'प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये' का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा हिरण्यगर्भ के गृह में प्रवेश करता है।

पुनः बदरि से प्रश्न किया गया कि जब उपनिषद ब्रह्म बता रहे हैं तब इसका अर्थ हिरण्यगर्भ कैसे होगा ? । बदरि का समाधान है कि सत्यलोक वैकुण्ठ के पास अवस्थित है अतः हिरण्यगर्भ लोक का तात्पर्य प्रासंगिक है। बदरि आगे बताते हैं कि जो हिरण्यगर्भ का ध्यान करते हैं वे चतुर्मुख के आयुपर्यन्त सत्यलोक वासी बनते हैं।

चतुर्मुख ब्रह्मा की आयु 100 देव वर्ष की है जो मानववर्ष की गिनती में 2×10^{17} वर्ष होता है। वर्तमान में चतुर्मुख ब्रह्मा का 50 वर्ष का पहला परार्द्ध बीत चुका है और वे दूसरे परार्द्ध में प्रवेश कर चुके हैं यानी 51 वर्ष 1 माह 26 दिन की पूर्वाह्न की आयु के हो चुके हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा की आयु बीतने पर आनेवाले प्रलय की अवधि भी 2×10^{17} वर्ष की होती है। इसीलिये नित्य संकल्प में यह बोला जाता है 'अद्य ब्रह्मणः द्वितीय परार्द्धं श्वेत वाराह कल्पे.....'। अतः हिरण्य गर्भ पर ध्यान करने वाले सत्यलोक में एकत्रित होकर हिरण्यगर्भ के साथ वैकुण्ठ जाते हैं। बदरि के इस मत के समर्थन में कुर्म पुराण का एक श्लोक भी समान अभिप्राय बताता है। अतः बदरि का निष्कर्ष है कि आतिवाहक समूह जीव को सत्यलोक ले जाते हैं न कि वैकुण्ठ। तदुपरांत जैमिनिमुनि ने बदरि मुनि द्वारा 5 सूत्रों में स्थापित मत को अगले 3 सूत्रों से खंडित किया है। सूत्र 4 | 3 | 11 'परं जैमिनिमुख्यत्वात्' का तात्पर्य है कि ब्रह्म तो मात्र श्रीमन्नारायण के लिये ही प्रयुक्त है। यद्यपि श्रीमन्नारायण सर्व अन्तर्यामी हैं परन्तु जीव का नश्वर शरीर का त्याग करके सूक्ष्म शरीर से चन्द्र के साथ संभाषण करने के उपरांत अर्चिरादि मार्ग से विरजा के इस पार पहुंच कर सूक्ष्म शरीर का त्याग करके विरजा पार करने के बाद वैकुण्ठ में दिव्यदंपति की चिरंतन सेवा में लग जाना ही मोक्ष है। ब्रह्मलोक का तात्पर्य है स्वयं ब्रह्म और समस्त दिव्य वैकुण्ठलोक ही ब्रह्मलोक है। पूर्व मीमांसा 9 | 3 | 5 के सिद्धान्त से 'ब्रह्मलोकान्' बहुवचन का कोई विशेष अर्थ नहीं है। जैमिनिने छान्दोग्य के 8वें अध्याय के वाक्य का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया कि संप्रसाद यानी विद्वान जीव नश्वर शरीर त्याग कर परमज्योति यानी श्रीमन्नारायण को प्राप्त करता है। अतः मुक्त जीव को हिरण्यगर्भ लोक जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। तदुपरांत जैमिनिने आगे के दो सूत्र 4 | 3 | 12 'दर्शनाच्च' तथा 4 | 3 | 13 'न च कार्ये प्रत्यभिसन्धिः' से बदरि द्वारा उद्धरित 'प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये' से चतुर्मुख के गृह के तात्पर्य को नकारते हुए बताया कि उक्त वाक्य के आगे का वाक्य इसी संदर्भ में दिव्य वैकुण्ठ का उल्लेख करता है। बदरि तथा जैमिनिके तर्क को सुनने के पश्चात् आगे के दो सूत्रों में सूत्रकार बादरायण ने बदरि के मत का सर्वांश निरस्त कर दिया जबकि जैमिनिके मत का आंशिक खंडन किया। सूत्र 4 | 3 | 14 'अप्रतीकालम्बनान्यतीति बादरायण उभयथा च दोषात् तत्कतुश्च' से श्रीमन्नारायण के ध्यान करने वाले को दो श्रेणियों में रखा। 1। प्रतीकालम्बन तथा 2। अप्रतीकालम्बन। यहां प्रतीक का अर्थ अंग या अवयव या निर्जीव वस्तु हो सकता है। साधक किसी प्रतीक को परमात्मा मान कर ध्यान कर सकता है। इसको 'दृष्टि विधि' या 'ब्रह्म दृष्टि उपासना' कहते हैं। जब प्रतीक को बिना ब्रह्म माने हुए उस पर ध्यान किया जाता है तो इसे 'केवल उपासना' कहा जाता है। जो प्रतीक को ब्रह्म मानकर या बिना ब्रह्म मानते हुए ध्यान करते हैं वे प्रतीकालम्बन कहे जाते हैं तथा ये मोक्षफल के अधिकारी नहीं होते हैं तथा आतिवाहिक अर्चिरादि गति से इन्हें वैकुण्ठ नहीं ले जाते। छान्दोग्य के सातवें अध्याय में सनत्कुमार ऋषि ने नारद मुनि को पन्द्रह तरह के प्रतीक का भेद बताया हैः नाम, वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्पर्श, आशा एवं प्राण। स्थिर मन को चित्त कहते हैं। शास्त्र या स्वयं की अनुभूति से प्राप्त ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। आचार्य के पधारने पर खड़े होकर स्वागत करते हुए साष्टांग करना बल है। अतः उक्त किसी पन्द्रह पर ब्रह्म दृष्टि या बिना ब्रह्म दृष्टि के ध्यान करने से सांसारिक सुख का फल मिलता है न कि मोक्ष। ऐसे व्यक्ति प्रतीकालम्बन कहे जाते हैं।

जो मोक्ष प्राप्ति के लिय ध्यान करते हैं वे अप्रतीकालम्बन कहे जाते हैं तथा इनके दो भेद हैं। पहली श्रेणी में वे हैं जो अपने को ब्रह्म का शरीर मान सीधे ब्रह्म पर ध्यान करते हैं। ये 'स्वात्म शारीरक परमात्मा उपासक' कहे जाते हैं तथा अध्याय तीन के तीसरे पाद में वर्णित 30 तरह की ब्रह्म विद्या विधि के किसी एक के ये उपासक हैं। 31वां ब्रह्मविद्या न्यास या प्रपत्ति है। न्यासविद्यानिष्ठ भी इसी श्रेणी में हैं। ये सभी उपनिषद में वर्णित 'एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाप परं ज्योतिरूप संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' के अनुसार अर्चिरादि गति से अतिवाहक द्वारा वैकुण्ठ में लाये जाते हैं। अप्रतीकालम्बन की दूसरी श्रेणी के लोग 'ब्रह्मात्मक स्वात्म उपासक' या 'पंचाग्निविद्यानिष्ठ' कहे जाते हैं जो अपने को परमात्मा का शरीर मानते हैं तथा परमात्मा को अपनी आत्मा मानते हैं। अन्य 30 में परमात्मा ही ध्यान के वस्तु हैं जिसमें जीव की आत्मा परमात्मा का शरीर माना जाता है। छान्दोग्य 5।10।1 के अनुसार 'तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते ते ऽर्चिषभिसंभन्ति' मोक्ष प्राप्त करते हैं। अर्थात् 'तद्य इत्थं विदुः' अपने को परमात्मा का शरीर मानते हैं तथा परमात्मा को अपनी आत्मा मानते हैं। 'ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते' यानी स्वात्म शारीरक परमात्मा अर्थात् अपनी आत्मा को परमात्मा का शरीर मानते हैं। 'ते ऽर्चिषभिसंभन्ति' अर्थात् उपर्युक्त दोनों यानी ब्रह्मात्मक तथा स्वात्मशारीरक अर्चिरादि को प्राप्त कर दिव्य वैकुण्ठ जाते हैं।

सूत्र 4।3।14 का अंतिम शब्द 'तत्कतुश्च' का अभिप्राय है कि उपासक परमात्मा तथा स्वयं के जिस स्वरूप का ध्यान करता है दिव्य वैकुण्ठ में उसी रूप को देखता है। अतः अप्रतीकालम्बन का अर्चिरादि गति से मोक्ष प्राप्त करना सिद्ध हुआ। वे दिव्य वैकुण्ठ में जाकर पृथ्वी पर कभी नहीं लौटते।

तालिका 19 : चौथे अध्याय के तीसरे पाद के अधिकरण (15 सूत्र, 5 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण के क्रमांक ³⁴
146। अर्चिरादि अधिकरण	4।3।1	1	4।3।1
147। वाय्वधिकरण	4।3।2	1	4।3।2
148। वरुणाधिकरण	4।3।3	1	4।3।3
149। आतिवाहिकाधिकरण	4।3।4 एवं 4।3।5	2	4।3।4
150। कार्याधिकरण	4।3।6 से 4।3।15 तक	7	4।3।5

तीसरे पाद के प्रमुख निम्नांकित बिन्दुओं को श्री देशिकान ने अधिकरण सारावली में संग्रहित किया है।
1। श्रीदेशिकान के सुयोग्य पुत्र कुमारवरदाचार्य ने अधिकरण सारावली के 496वें श्लोक पर चिंतामणि व्याख्या में कहा है कि विद्वान का शरीर छोड़कर मोक्षगामी होने पर श्राद्ध किया की आवश्यकता नहीं है परंतु विद्वान के पुत्रों द्वारा या अन्य श्रद्धालुओं द्वारा श्राद्ध किया संपन्न किया जाना चाहिये। ऐसा नहीं करने से पुत्रों को पाप का

³⁴ 4।3।1 अध्याय 4 पाद 3 अधिकरण 1

भागी होना पड़ता है और वे जो कुछ श्राद्ध में करते हैं सब अपनी भलाई के लिये करते हैं न कि शरीर छोड़ने वाली आत्मा के लिये। 2। भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु की शक्ति प्राप्त थी। तदनुसार उन्होंने दक्षिणायन में बाणशय्या पर प्रतीक्षा करके उत्तरायण में शरीर छोड़ा। वे एक वसु थे और शाप वश जन्म लेकर पृथ्वी पर आये थे अतः शरीर छोड़ने पर सीधे मोक्ष धाम न जाकर अपने लोक चले गये। अधिकरण सारावली के श्लोक 498 तथा 502 के अनुसार बाद में 32 ब्रह्मविद्याओं में से एक 'मधुविद्या' का उन्होंने अभ्यास किया। तत्पश्चात् वे वैकुण्ठ प्राप्त कर सके। 3। जब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया तो उसकी आत्मा श्रीकृष्ण में विलीन होते देखी गयी। शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र पूर्वजन्म में रावण एवं कुम्भकर्ण थे जिनका राम प्रभु ने उद्धार किया था। यही लोग पूर्वजन्म में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु थे जिनमें से हिरण्याक्ष का उद्धार वराह भगवान ने किया था तथा हिरण्यकशिपु का नरसिंह भगवान के हाथों कल्याण हुआ। तीन जन्म के पूर्व ये दोनों जय विजय के नाम से कार्यवैकुण्ठ कहे जाने वाले विष्णुलोक में सुरक्षाकर्मी थे और दुर्भाग्य से सनकादिक मुनि के कोप भाजन हो गये। तीन जन्म के बाद वे स्वयंमेव मोक्ष प्राप्त कर वैकुण्ठ में आ गये। 4। अपने महाप्रयाण काल में राम प्रभु ने सारे अयोध्यावासियों को संतानक लोक दिला दिया। भगवान के साथ सरयू में डुबकी लगाते ही सभी अयोध्यावासी संतानक लोक चले गये जहां के स्वामी चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। 5। पुण्डरीक को भगवान स्वयं वैकुण्ठ ले गये। 6। पांचरात्र संहिता के अनुसार ब्रह्मांड में अनेकों विभव लोक एवं व्यूह लोक हैं। व्यूह लोक क्षीर सागर के टापू हैं जो श्वेतद्वीप कहे जाते हैं। व्यूह एवं विभव लोक वाले भक्तियोग से बिना अर्चिरादि का सहारा लिये सीधे वैकुण्ठ जाते हैं। 7। परमपद सोपान में श्री देशिकान ने अर्चिरादि गति के बारे में अन्य बातें भी बतायीं हैं। द्वारका में एक ब्राह्मण के एक के बाद एक संतान जन्म लेते ही लुप्त हो जाती थी। नौवीं संतान को लुप्त होने पर वह ब्राह्मण भगवान से शिकायत करने आया तथा द्वारका के राजा के रूप में भगवान को ही इसके लिये उसने दोषी बताया। अर्जुन ने उसे भरोसा दिलाया कि अगली संतान जीवित रहेगी। प्रसव के पूर्व अर्जुन ने ब्राह्मण के घर को बाण से पूर्णतया आच्छादित कर दिया परंतु फिर भी संतान जीवित न रही। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अग्नि प्रवेश करके अपना जीवन देने की तैयारी करने लगे। भगवान ने अर्जुन को रोका और स्वयं वैकुण्ठ जाकर उसकी दसो संतान को ले आये। संशय होता है कि वैकुण्ठ से जब कोई आता नहीं तब ब्राह्मण के संतान साथ ऐसा क्यों हुआ। समाधान के रूप में श्रीदेशिकान का कहना है कि जो अर्चिरादि से वैकुण्ठ जाते हैं वे लौट कर नहीं आते परंतु अर्चिरादि से नहीं जाने वाले ब्राह्मण की संतान की तरह पृथ्वी पर आते हैं। 8। चतुर्मुख ब्रह्मा तथा इन्द्र अपने कार्यकाल के बाद अर्चिरादि के रास्ते वैकुण्ठ जाते हैं।

दिव्य वैकुण्ठ धाम का वर्णन :

वैकुण्ठ के वर्णन का आधार स्रोत है : कौषीतकी उपनिषद, महाभारत के शांति पर्व का मोक्षधर्म, हयग्रीव सहस्रनाम स्तोत्र, आलवन्दार का स्तोत्ररत्न, भगवद रामानुज का श्रीवैकुण्ठ गद्य, श्रीवेदान्तदेशिक का श्रीमदरहस्यत्रय सार, एवं परमपद सोपान।

कौषीतकी उपनिषद में दिव्य वैकुण्ठ धाम

ज्ञात हो कि जीव तीन तरह के होते हैं: क। अनिष्टाधिकारी जो पापकर्म में लिप्त रहे हों और ये चंद्र के पास न जाकर नरक जाते हैं। ख। इष्टाधिकारी जो यज्ञ तथा अन्य शुभ कृत्य करने के कारण स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। ये चंद्र के पास आकर धूमादि मार्ग या पितृयान से स्वर्ग जाते हैं। ग। मोक्षाधिकारी जो श्रीमन्नारायण के चरणों में भक्तियोगनिष्ठ होकर या प्रपत्ति लेकर चंद्र से संभाषण करने के पश्चात् अर्चिरादि से वैकुण्ठ जाते हैं।

परमपद यानी वैकुण्ठ के वर्णन के पूर्व उपनिषद में उल्लेख है कि नश्वर शरीर वाले शरीर छोड़ने पर चंद्र के पास पहुंचते हैं। जिन्होंने श्रीमन्नारायण के चरणों में शरणागति या भक्तियोग नहीं किया है वे अविद्वान तथा इष्टाधिकारी कहे जाते हैं तथा वे लोग स्वर्ग जाते हैं। जो श्रीमन्नारायण के चरणों में शरणागत या भक्तियोगनिष्ठ रहे हैं वे अर्चिरादि से मोक्ष प्राप्त कर वैकुण्ठ जाते हैं। ये मोक्षाधिकारी कहे जाते हैं तथा इनका चंद्र से संभाषण होता है।

चंद्र से संभाषण में मुक्त जीव 'मैं' शब्द का प्रयोग करता है जो परमात्मा का सूचक है। जीव बताता है कि 'मैं दिन, पक्ष, माह, ऋतु, वर्ष, तथा युग के रूप में काल हूँ। हर ऋतु में उत्पन्न होने वाला पदार्थ मैं ही हूँ। मैं ही चतुर्मुख ब्रह्मा हूँ। आप भी मैं ही हूँ।' जीव के उत्तर से पसन्न होकर चंद्र उसे अर्चिरादि के मार्ग से वैकुण्ठ जाने की अनुमति देते हैं। वैकुण्ठ में प्रवेश पर एक ताल मिलता है जिसे 'अव' कहते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में तीन ताल का उल्लेख है जिसे 'अव' 'न्य' तथा 'ऐरम्मादीयम' कहते हैं। इन तालों से थोड़ी ही दूर पर 'मुहुर्त्त' नामके सुरक्षाकर्मी डंडे से पहरा देते हुए उनको मार भगाते हैं जो ब्रह्मविद् नहीं रहे हैं यानी जो श्रीमन्नारायण के भक्तियोगनिष्ठ या शरणागत न हुए हों। पहरा वाले डंडे को 'यष्टि' कहते हैं। इसके बाद नदी मिलती है जिसका नाम 'विरजा' या 'विजरा' है। 'विरज' का अर्थ है इच्छामुक्त, तथा 'विजर' का अर्थ है बुद्धापा मुक्त। विरजा नदी ही प्रकृतिमंडल तथा वैकुण्ठ की विभाजक सीमा है। सांसारिक जगत को प्रकृति मंडल कहते हैं। यद्यपि कि उपनिषद में ताल का उल्लेख नदी के पहले है परंतु ये ताल विरजा नदी के बाद वैकुण्ठ की सीमा में हैं न कि प्रकृति मंडल की सीमा में। इसकी पुष्टि हयग्रीव दिव्य सहस्रनाम स्तोत्र से तथा श्रीमद् रहस्यत्रयसार से होता है। विरजा के तट पर जीव अपने सूक्ष्म शरीर को त्याग देता है तथा विरजा कर अपनी इच्छा से वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। विरजा नदी में डुबकी लगाने का भी उल्लेख मिलता है। परमपद सोपान में श्रीदेशिकान ने दोनों का उल्लेख किया है। श्री पिल्लै लोकाचार्य ने 'अर्चिरादि' रहस्य में विरजा जल से स्पर्श होते ही सूक्ष्म शरीर छूटने का उल्लेख किया है। वैकुण्ठ की सीमा में प्रवेश करते ही मुक्तात्मा को शुद्ध सत्व से बना दिव्य शरीर प्राप्त होता है जिसे अप्राकृत शरीर भी कहते हैं।

मुक्तात्मा तब सोमसवन में जाता है जहां श्रीमन्नारायण के जड़ अवतार के रूप में अंजीर के वृक्ष का दर्शन होता है। 500 देवांगनायें स्वागत में खड़ी मिलती हैं। मुक्तात्मा को अलंकृत करने के लिये 100 देवांगनायें अपने हाथ में माला लिये रहती हैं। आंख में लगाने के लिये 100 काला अंजन के साथ रहती हैं। शरीर पर लगाने के लिये चंदन लिये 100 अलग खड़ी रहती हैं। 100 धोती लिये रहती हैं, तथा 100 आभूषण लिये तैयार रहती हैं। ब्रह्म अलंकार के बाद मुक्तात्मा का भव्य स्वागत किया जाता है। वहां से वह तिल्य वृक्ष के पास आता है।

कौपीतकी पर व्याख्या करते हुए किसी का मत है कि सोमसवन का वृक्ष अश्वत्थ का वृक्ष है। इसी को तिल्य वृक्ष भी कहते हैं जैसा कि छान्दोग्य में उल्लेख है। परमपद सोपान में श्रीदेशिकान ने दोनों को दो पृथक वृक्ष बताया है।

अब मुक्तात्मा प्राकार यानी चहारदीवारी से घिरे सलज्य संस्थान में आता है। तमिलनाडु में तिरिची के पास का श्रीरंगम वैकुण्ठ की प्रतिछाया है। श्रीरंगम में भी इसीतरह ऊंची चहारदीवारी बनी है। सलज्य का अर्थ है शस्त्रागार। वैकुण्ठ पर धावा बोलने वाले शत्रुओं को मार भगाने के उद्देश्य से इसका निर्माण किया गया है। इसके बाद वैकुण्ठ का अपराजित नगर आता है। यह नगर अब्रह्मविद् के लिये अप्राप्य है।

वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण 10000 सूर्य के समान ज्योति विखेरते रहते हैं। आपसे निकलकर पराजित फूल का मीठा गंध सर्वत्र व्याप्त रहता है। इस वातावरण में एक अलौकिक स्वाद विखरा रहता है। इसे ब्रह्मतेज ब्रह्मगंध तथा ब्रह्मरस कहते हैं। दिव्य नगर में मुक्तात्मा को इन दिव्य प्रावधानों का साक्षात् अनुभव तथा आनंद प्राप्त होता है।

अब मुक्तात्मा इन्द्र तथा प्रजापति नामक दो सुरक्षाकर्मी से संरक्षित महाद्वार में प्रवेश करता है। यहां इसे वृहत शोभायात्रा में ले जाया जाता है जो विस्तृत वीथियों से गुजरता है तथा वैकुण्ठ नगर की सभी मुक्तात्मायें इस नये मुक्तात्मा का स्वागत करते हैं। इसके बाद मुक्तात्मा स्वर्ण विमान के पास आता है। यहां इसे श्रीमन्नारायण की गौरव यानी ब्रह्मयश का साक्षात् आह्लाद होता है। अन्य मुक्तात्माओं के साथ मुक्तात्मा भी श्रीमन्नारायण का यशोगान करता है। यशोगान करने वालों को विपण्यव कहते हैं। कौपीतकी के अनुसार यश का अर्थ प्रभु का कृपाकटाक्ष है।

अब मुक्तात्मा आनंद मंडप के पास आता है जिसे कौपीतकी में 'विभु प्रमित' कहते हैं। वृहत क्षेत्र में फैले इस मंडप को श्रीरंगम में 1000 पायों वाले कक्ष को देखकर समझा जा सकता है। आठ द्वारपाल तथा पार्षद कहे जाने वाले आठ सेवक मुक्तात्मा का मुस्करा कर स्वागत करते हुए इस मंडप में प्रवेश कराते हैं। सेनापति विष्वकसेन आनंदमय मंडप में नये मुक्तात्मा के आगमन की घोषणा कराते हैं। अब मुक्तात्मा श्री गरुत्मन् यानी गरुड़ जी को नमस्कार करता है। यहां मुक्तात्मा अपने को नित्यसूरियों के बीच पाता है। संसार के बंधन से सदा मुक्त रहने वाले नित्यसूरी कहे जाते हैं।

अब मुक्तात्मा दिव्य छत्र दिव्य अस्त्र तथा दिव्य आभूषण के साक्षात् जीवंत स्वरूप का दर्शन करता है। इसी दर्शन से मुक्तात्मा में दिव्य दंपति 'श्री समेत श्रीमन्नारायण' के कैकर्य करने की उत्कट इच्छा जाग उठती है। तत्पश्चात् वह दिव्य पर्यक यानी भगवान के दिव्य सिंहासन के पास आता है जहां महालक्ष्मी के साथ श्रीमन्नारायण विराजते हैं। यहां इसे अपने पूर्वाचार्यों का दर्शन होता है। मुक्तात्मा को देखकर आचार्यगण बहुत प्रसन्न होते हैं क्योंकि श्रीमन्नारायण की कृपा से इन लोगों का प्रयत्न सफल हुआ और जीवात्मा आज मुक्तात्मा बनकर सामने खड़ा है। कौपीतकी में इस दिव्य पर्यक को 'अमित ओज' कहते हैं। भूत एवं भविष्य इसके सामने के दो पैर हैं तथा पीछे वाले दो पैर को 'श्री' एवं 'ईरा' कहते हैं। पांचरात्र संहिता में चारो पैरों को धर्मपीठ, ज्ञानपीठ, वैराग्यपीठ, तथा ऐश्वर्यपीठ कहते हैं। ये सभी चारो पैर जीवन्त दिव्य स्वरूप में दर्शन देते हैं।

दिव्यसिंहासन के बीच में कोटि सूर्य की प्रभा विखेरते आठ दल वाला दिव्य कमल शोभायमान रहता है। आठों दल के पास आठ परिचारिकायें चवर डुलाती खड़ी रहती हैं। इस कमल को 'कर्णिका' कहते हैं तथा इसकी पूर्व दिशा में 'अनुग्रह' नामकी परिचारिका चवर लिये विराजमान रहती है। इस कर्णिका के विस्तार का आभास इस बात से हो सकता है कि हजारों बड़े पर्वत इस पर परमाणु की तरह सूक्ष्म दिखते हैं। इस कर्णिका पर सहस्रफन वाले आदिशेष निर्मोक दिव्ययोगपर्यक यानी विशेष गद्दी के रूप में विराजमान रहते हैं। आदिशेष का विस्तार सहस्रों क्षीर सागर के समान होता है। यहां सहस्र शब्द अनगिनत यानी अनंत का द्योत्तक है। जगत अनंत ब्रह्माण्ड से बना है तथा प्रत्येक ब्रह्मांड के क्षीरसागर में आदिशेष पर श्रीमन्नारायण विराजमान रहते हैं। सभी अनंत आदिशेष को मिला देने पर दिव्ययोगपर्यक पर विराजमान आदिशेष का स्वरूप बनता है। तमिल दिव्यप्रबंधम् में सरोयोगी की दिव्य रचना 'मुदल तिरुवन्दादि' तथा आलवन्दार श्रीयामुनाचार्य के स्तोत्र रत्न के श्लोक में आदिशेष का अनेकों स्वरूप में श्रीमन्नारायण के कैंकर्क्य में सर्वदा रत रहने का उल्लेख है। आदिशेष का दिव्ययोगपर्यक इतना विस्तृत है कि त्रिविध परिच्छेदरहित श्रीमन्नारायण भी इस पर एक छोटे स्थान में विराजते हैं। इसकी कल्पना तो कठिन है परंतु मोक्ष प्राप्ति पर इसका साक्षात् अनुभव किया जा सकता है। त्रिविध परिच्छेदरहित का आशय है समय, स्थान, एवं स्वरूप में असीम आकार।

अब मुक्तात्मा आदिशेष पर्यक पर आरूढ़ होता है। इस पर्यक को अनंतभोग पर्यक भी कहते हैं तथा आदिशेष को अनंत या तिरुअनन्ताळवान भी कहते हैं। आदिशेष के सहस्रों फन के ऊपर मणि विराजते हैं जिसके प्रकाश से समस्त वैकुण्ठ सर्वदा आलोकित रहता है। प्रत्येक फन पर दो आंखें रहने के कारण आदिशेष अपनी दो सहस्र आंखों से मुक्तात्मा का सहर्ष अवलोकन करते हैं।

दिव्यअनंतभोग पर्यक पर अकुमार यौवन स्वरूप यानी पच्चीस वर्ष के सुन्दर युवक के स्वरूप में अपनी दायीं तरफ बैठी लक्ष्मी के साथ बैठे हुए विराजते हैं। करुणा विखेरती मुस्कान के साथ महालक्ष्मी मुक्तात्मा का पुत्रवत अभिनंदन करती हैं। भूदेवी एवं नीला देवी भगवान के समक्ष खड़ी होकर कैंकर्क्य रत रहती हैं तथा भगवान को प्रसन्न रखती हैं। मुक्तात्मा भगवान के दिव्य कल्याण गुणों से अभिषिक्त होकर अपने को असीम ज्ञानवान तथा आनंदमय अनुभव करने लगता है। इसी को धर्मभूत ज्ञान विकास कहते हैं। दिव्य मंगल विग्रह के अंग प्रत्यंग का आनन्द लेते हुए मुक्तात्मा पर्यक के पास भगवान के श्रीचरणों का दर्शन करता है। भगवान अपने श्रीचरणों को मुक्तात्मा के माथे पर रखकर उसे अपने कैंकर्क्य करने की योग्यता प्रदान करते हैं। दिव्ययोग पर्यक पर ऊपर चढ़कर मुक्तात्मा प्रभु की गोद में विराजता है और दिव्यमंगल विग्रह उससे कुशल क्षेम के साथ दिव्य वैकुण्ठ के अनुभव की जानकारी लेते हैं। मुक्तात्मा से प्रभु पूछते हैं कि तुम कौन हो। मुक्तात्मा प्रभु के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता ज्ञापित करता है क्योंकि वह संसार के बंधन से मुक्त होकर आज वैकुण्ठ में प्रभु का सहवासी बन गया। मुक्तात्मा आगे बताता है कि कैसे अनंत काल से वह संसार सागर में डूब रहा था। आपकी कृपा से आप पर ध्यान करके आनंद अमृत का स्वाद लेने लगा। हम आपके शरीर हैं तथा आप हमारी आत्मा है और दोनों एक दूसरे से अविभाज्य हैं। यही हमारे ध्यान का विषयवस्तु रहा। शनैः शनैः आप की कृपा बढ़ती गयी और आज संसार के बंधन से मुक्त करके आपने वैकुण्ठ में बुला लिया। आज के इस अथाह असीम आनंद सागर के समक्ष

सांसारिक ऐश्वर्य का सुख तथा अपनी स्वयं की आत्मा में लीन रहने का 'केवल भाव' सुख एक बूंद के बराबर है। इतना कहके मुक्तात्मा आर्त भाव से प्रभु से प्रार्थना करता है कि पुनः सांसारिक जन्म के बंधन में मुझे कभी नहीं भेजें। मुक्तात्मा की इस बात से वात्सल्य भाव से ओत प्रोत हो महालक्ष्मी तथा श्रीमन्नारायण माता पिता की तरह मुक्तात्मा पर अपनी कृपा दृष्टि गड़ा दी। अपहृत

धर्मभूतगुण विकाश से गुणाष्टक आविर्भाव होता है तथा मुक्तात्मा सर्वज्ञ बन जाता है। (गुणाष्टक हैं : 1। अपहृतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल। 2। विजरो यानी बुढ़ापा से मुक्त। 3। विमृत्युः यानी मृत्यु से मुक्त। 4। विशोको यानी शोक दुःख रहित। 5। विजिघत्सो यानी भूख रहित। 6। अपिपाश यानी प्यास रहित। 7। सत्यकाम यानी सभी इच्छा की पूर्ति करनेवाला। 8। सत्यसंकल्प यानी इच्छा से सबकाम करने में समर्थ।)

परमात्मा से अपार प्रेम के कारण मुक्तात्मा में पराभक्ति का उदभव होता है जो भक्ति तथा ज्ञान को गहरा बनाते हुए परमाभक्ति में विकसित हो जाता है। जीव पूर्णतया शेषत्व तथा दासत्व गुण से ओत प्रोत होकर श्रीमन्नारायण के सर्वकाल सर्वदेश सर्वविध कैकर्य सुख में लीन हो जाता है। नित्य ग्रंथ में भगवद रामानुज ने दिव्य वैकुण्ठ की संरचना का वर्णन आधार शक्ति क्रम के रूप में किया है जो है। 1। आधार शक्ति। 2। मूल प्रकृति। 3। अखिल जगत आधार कूर्म रूपी अर्थात् नारायण ही कच्छप रूप में अनंत ब्रह्माण्ड के साथ लीला विभूति को तथा नित्य विभूति वैकुण्ठ को आधार प्रदान करते हैं। 4। अनंत नागराज यानी समस्त जगत के आधार। 5। भूमि यानी भूलोक। उपर्युक्त एक दूसरे के ऊपर इसी क्रम में स्थित हैं। 6। श्रीवैकुण्ठ दिव्यलोक यानी एक महादेश की तरह। 7। श्रीवैकुण्ठ दिव्य जनपद यानी एक देश की तरह। 8। श्रीवैकुण्ठ दिव्य नगर यानी एक महानगर की तरह। 9। श्रीवैकुण्ठ दिव्य विमान। 10। आनंदमय मंडपरल। 11। मंडप में अनन्त नागराज यानी आदिशेष। 12। धर्मपीठ पाद यानी दिव्यसिंहासन के दक्षिण पूर्व कोण 'अग्निकोण' का पाद। 13। ज्ञान पीठ पाद यानी दिव्यसिंहासन के दक्षिण पश्चिम कोण 'नैऋत्य' का पाद। 14। वैराग्य पीठ पाद दिव्यसिंहासन के वायव्य कोण यानी उत्तर पश्चिम कोण का पाद। 15। ऐश्वर्यपीठ पाद दिव्यसिंहासन के ईशान कोण यानी उत्तर पूर्व का पाद। 16। अधर्म यानी दिव्यसिंहासन का पूरव तरफ वाला विस्तार। 17। अज्ञान यानी दिव्यसिंहासन का दक्षिण तरफ वाला विस्तार। 18। अवैराग्य यानी दिव्यसिंहासन का पश्चिम तरफ वाला विस्तार। 19। अनैश्वर्य यानी दिव्यसिंहासन का उत्तर तरफ वाला विस्तार। 20। अनन्त यानी जो भगवद कैकर्य के लिये लालायित तथा उत्सुक हो। 21। कमल का फूल। परमपद सोपान से यहां अन्तर है। परमपद सोपान में कमल के ऊपर आदिशेष का स्थान कहा गया है जबकि यहां आदिशेष कमल के नीचे ही हैं। 22। विमल चवर हस्त यानी कमल के पूरव दल पर चवर सेवा करने वाली। 23। उत्कर्षणि चवर हस्त यानी अग्नि कोण के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली। 24। ज्ञान चवर हस्त यानी दक्षिण दिशा के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली। 25। क्रिया चवर हस्त यानी नैऋत्य कोण के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली। 26। योग चवर हस्त यानी पश्चिम दिशा के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली। 27। प्रहव चवर हस्त यानी वायव्य कोण के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली। 28। सत्यचवर हस्त यानी उत्तर दिशा के कमल दल पर चवर

सेवा करने वाली । 29 । एषण चवर हस्त यानी ईशान कोण के कमल दल पर चवर सेवा करने वाली । 30 । अनुग्रह चवर हस्त यानी पूरब दिशा में कमल दल के नीचे चवर सेवा करने वाली । 31 । जगत प्रकृति योग पीठ यानी क्षीरसागर के साथ सभी ब्रह्माण्डों के आदिकारण । 32 । दिव्य योग पीठ पर्यक । 33 । सहस्र फन मंडित अनन्त नागराज यानी सहस्रफन वाले आदिशेष कमल के ऊपर हैं । 34 । पादपीठ अनन्त नागराज यानी प्रभु के श्रीचरण को आधार देने वाला पीठ जो आदिशेष का ही एक अन्य स्वरूप है । 35 । अनन्त, गरूड, विष्वकसेन पदमासन में बैठे दिव्यसूरी गण । 36 । अस्मद गुरु यानी वायव्य कोण में योगपीठ पर आसीन मोक्ष प्राप्त सभी पूर्वाचार्य । 37 । योगपीठ पर बैठे हुए श्रीमन्नारायण । 38 । श्रीमन्नारायण के दायें पार्श्व में बैठी हुई महालक्ष्मी । 39 । भूमि यानी श्रीमन्नारायण के बायें पार्श्व में स्थित भू देवी । 40 । श्रीमन्नारायण के बायें पार्श्व में स्थित नीला देवी । 41 । किरीट मुकुटाधिपति यानी भगवान के शिर के आभूषण । 42 । किरीट माला अपीडकात्मा यानी श्रीमन्नारायण सर्वदा मुकुट एवं माला धारण किये रहने के कारण पीड़ा अनुभव करते होंगे । परंतु अपीडकात्मा नाम के एक पार्षद इस पीड़ा को दूर करते हैं । 43 । दक्षिण कुण्डल मकर । 44 । वाम कुण्डल मकर । 45 । वैजन्ति वनमाला । 46 । तुलसी जो श्रीमन्नारायण धारण करते हैं । 47 । श्रीवत्स श्रीनिवास यानी श्रीमन्नारायण के वक्षस्थल पर लक्ष्मी के स्थान के पास श्वेत केश । 48 । श्रीकौस्तुभ सर्व रत्नाधिपति । 49 । कांची गुणोज्वल पीताम्बर यानी पीत रेशमी धोती तथा स्वर्ण कमरधनी । 50 । सुदर्शन हेतिराज । 51 । नन्दक खड्गाधिपति । 52 । पद्म जो प्रभु के हाथ का दिव्यास्त्र है । 53 । पाञ्चजन्य शंखाधिपति । 54 । कौमोदकी गदाधिपति । 55 । सारंग चापधिपति । 56 । भगवद् पादारविन्द संवाहिनी यानी प्रभु के चरणों की सेवा करने वाली । 57 । अनन्त नागराज यानी भगवान के पीछे आदिशेष । 58 । भागवद परिजन यानी प्रभु के सेवकगण । 59 । भगवद् पादुका । 60 । भगवद् परिछत्र यानी छत्र आदि उपकरण । 61 । वैनतेय यानी सामने बैठे गरूड जी । 62 । भगवद् विष्वकसेन । 63 । गजानन । 64 । जयतसेन यानी विष्वकसेन के एक सहायक । 65 । हरिवक्त्र यानी विष्वकसेन के एक सहायक । 66 । काल प्रकृति संज्ञा विष्वकसेन के एक सहायक । 67 । चंड एवं प्रचंड यानी पूरब तरफ के द्वारपाल । 68 । भद्र एवं सुभद्र यानी दक्षिण तरफ के द्वारपाल । 69 । जय एवं विजय यानी पश्चिम दिशा के द्वारपाल । 70 । धात्र एवं विधात्र यानी उत्तर तरफ के द्वारपाल । सभी द्वारपाल चतुर्भुज होकर चक्र शंख एवं गदा धारण करते हैं । 71 । कुमुद गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी पूरब तरफ के पार्षद । 72 । कुमुदाक्ष गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी अग्नि कोण के पार्षद । 73 । पुण्डरीकाक्ष गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी दक्षिण तरफ के पार्षद । 74 । वामन गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी नैऋत्य कोण के पार्षद । 75 । संकुकर्ण गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी पश्चिम तरफ के पार्षद । 76 । सर्पेन्द्र गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी वायव्य कोण के पार्षद । 77 । सुमुख गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी उत्तर तरफ के पार्षद । 78 । सुप्रतिष्ठ गणाधिपति सवाहन परिवार प्रहरण यानी ईशान कोण के पार्षद ।

उपर्युक्त पार्षद सर्वदा श्रीमन्नारायण की सभा में विराजमान रहते हैं । 'सवाहन परिवार प्रहरण' का अर्थ है कि ये वाहन से युक्त अपने सहयोगियों तथा अस्त्रों के साथ रहते हैं । नित्य ग्रंथ में भगवद् रामानुज का आदेश है कि

घर में पत्येक दिन श्रीमन्नारायण की पूजा के साथ उपर्युक्त सभी 78 दिव्य पार्षदों की पूजा होनी चाहिये। भगवद रामानुज द्वारा विरचित 'श्रीवैकुण्ठ गद्य' न्यनाधिक रूप में उपर्युक्त आधारशक्ति क्रम का विवरण है। श्रीवैकुण्ठ दिव्यलोक के वर्णन के प्रारंभ में भगवद रामानुज ने परमव्योम के रूप में इसकी स्थिति का विवरण दिया है। ब्रह्माण्ड में 14 लोक हैं जो ऊपर से एक आवरण से ढके हुए हैं। आवरण का विस्तार ब्रह्माण्ड के विस्तार से दसगुना बड़ा है। इसके ऊपर एक के ऊपर एक सात आवरण और हैं जिनका विस्तार अपने पहले वाले आवरण से दसगुना बड़ा है। सबसे ऊपर वाले आवरण के ऊपर विरजा नदी है जिसके उस पार दिव्य वैकुण्ठ है। यह वैकुण्ठ लोक चतुर्मुख ब्रह्मा इन्द्र शिव सनकादिक आदि की पहुंच के परे है। वैकुण्ठ के नित्य सूरी तथा मुक्तात्माओं के स्वाभाव का वर्णन चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। स्तोत्ररत्न में आलवन्दार श्रीयामुनाचार्य ने वैकुण्ठ का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

चौथे अध्याय का चौथा पाद

(फल अध्याय, फल पाद, 22 सूत्र, 6 अधिकरण)

श्रीभाष्य के चौथे अध्याय का चौथा पाद फल पाद है। इस पाद में 22 सूत्र हैं तथा 6 अधिकरण हैं।

151 | संपद्याविर्भावाधिकरण 3 सूत्र 4।4।1 से 4।4।3 तक (अधि 4।4।1)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के पहले अधिकरण में 3 सूत्र हैं। इसका विषय वाक्य छान्दोग्य उपनिषद् का आठवां अध्याय है। छान्दोग्य का उल्लेख बताता है कि जीव उपासना या प्रपत्ति के द्वारा नश्वर शरीर छोड़ने पर वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण को प्राप्त करता है तथा पूर्व के शिथिल कल्याण गुण के विकास से संपन्न हो जाता है। ये कल्याण गुण हैं : अपहृतपाप्मा यानी पापरहित निर्मल, विजर यानी बुद्धापा मुक्त, विमृत्यु यानी मृत्यु रहित, विशोक यानी शोक रहित, विजिघत्सा यानी भूखरहित, अपिपासा यानी प्यास रहित, सत्यकाम यानी सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, सत्यसंकल्प यानी सभी संकल्प को पूरा करने वाले। इसके अतिरिक्त 'धर्मभूत ज्ञान विकास' होता है जिसका तात्पर्य है कि वह सर्वज्ञानत्व से संपन्न होकर अनंत एवं शाश्वत आनन्द का भागी बनता है। पूर्वपक्षी के मत से मुक्तात्मा कुछ भी नवीन नहीं प्राप्त करता केवल उसके शिथिल गुणों का प्रस्फुटन होता है और इसतरह से मोक्षशास्त्र के वर्णन का बहुत अर्थ नहीं रह जाता तथा आत्म स्वरूप जीव लक्ष्य हीन होकर पुरुषार्थहीन हो जाता है। जब जीव गाढ़ी निद्रा में रहता है तब उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं तथा वह अपने पुरुषार्थ की प्राप्ति के बारे में नहीं जान पाता। पूर्वपक्षी का मत है कि मोक्ष में जीव कुछ नवीन वस्तु प्राप्त करता है।

सूत्र 4।4।1 'संपद्याविर्भावः स्वेनशब्दात्' का तात्पर्य है कि प्रत्यगात्मा अर्चिरादिगति से मोक्ष पाकर वैकुण्ठ में जाता है एवं श्रीमन्नारायण से सान्निध्य प्राप्त करते ही अपने शिथिल कल्याणगुणों के प्रस्फुटन से लाभान्वित होता है तथा कोई नया स्वरूप या स्वभाव नहीं प्राप्त करता है यानी उसके स्वरूप का ही आविर्भाव होता है। छान्दोग्य 8।12।2 का उल्लेख 'एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थायं परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इसी स्वरूप आविर्भाव की बात करता है।

पूर्वपक्षी का संशय है कि तब तो उक्त वाक्य का 'उपसंपद्य' यानी 'प्राप्त करना' अर्थहीन होजाता है। सूत्र 4।4।2 'मुक्तः प्रतिज्ञानात्' से सूत्रकार का तात्पर्य है कि पुण्य पाप के फलस्वरूप प्राप्त नश्वर शरीर से मुक्तात्मा मुक्त हो जाता है। यद्यपि कि पूर्व से कल्याण गुण उसमें वर्तमान थे परंतु कर्म के कारण वे शिथिल थे। जैसे ही कर्म का अन्त हुआ कि शिथिल गुण प्रस्फुटित हो उठे। 'प्रतिज्ञानात्' छान्दोग्य में इन्द्र तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के बीच संवाद का सूचक है। इन्द्र जब प्रजापति के पास अध्यात्म ज्ञान सीखने गये तो प्रजापति ने कहा 'भूयः व्याख्येष्यामि' यानी व्याख्या को बार बार दुहरा रहा हूँ। 'प्रत्यगात्मा' यानी जीव जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं से मुक्त हो जाता है। इसके साथ ही नश्वर शरीर से भी मुक्त हो जाता है जिसके माध्यम से उसने अनेकों सांसारिक वस्तुओं से प्रेम तथा घृणा के कार्य किये थे। अंततः परमात्मा को प्राप्तकर वह स्वरूप आविर्भाव से संपन्न हो जाता है।

सूत्र 4।4।3 'आत्मा प्रकरणात्' का तात्पर्य है कि आत्मा आठ गुणों से संपन्न है जो इन्द्र एवं प्रजापति के प्रकरण से स्पष्ट है। ये आठो गुण पूर्व से विराजमान रहते हैं परंतु परमात्मा से मिलने के बाद इनका प्रस्फुटन या विकास होता है। शौनक मुनि ने भी इसकी पुष्टि की है। 1। चमक रत्न का स्वाभाविक गुण है। धूल से ढके रहने के कारण इसकी चमक चली जाती है। जैसे ही धूल की परत साफ होती है तो चमक दिखने लगती है। इसी तरह से आत्मा पाप पुण्य की परत में अपने नैसर्गिक गुणों को भूल जाता है परंतु जैसे ही वैकुण्ठ में परमात्मा का साक्षात्कार होता है नैसर्गिक गुण विकसित हो उठते हैं। 2। कुंआ खोदने के पूर्व जल मिट्टी की परत के नीचे छिपा रहता है। मिट्टी की परत हटते ही जल प्राप्त हो जाता है। जीव के कल्याण गुण भी कर्म की परत में छिपे रहते हैं और कर्म के अन्त होते ही वे मूर्तमान हो जाते हैं।

152 | अविभागेन दृष्टत्वाधिकरण 1 सूत्र 4।4।4 (अधि 4।4।2)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के दूसरे अधिकरण में 1 सूत्र है। इसका विषय है कि क्या जीव परमात्मा को एक पृथक इकाई के रूप में देखकर आनन्द लेता है या अपना ही अविभाज्य अवयव समझकर आनन्द लेता है। पूर्व पक्षी का मत है कि जीव परमात्मा को पृथक इकाई समझता है। तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार मुक्तात्मा मोक्ष मिलते ही परमात्मा के कल्याण गुण से आनन्द लेता है। मुण्डक उपनिषद का उल्लेख कहता है कि वैकुण्ठ में स्वयं प्रकाशित परमात्मा से साक्षात्कार प्राप्त करते ही मुक्तात्मा अपने को परमात्मा के समान समझ कर आनन्दित होने लगता है। भगवद्गीता 14।2 में भगवान कहते हैं कि मुझे प्राप्त कर जीव के आठो गुण खिल उठते हैं जो गुण हममें भी हैं 'इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। सर्वेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च'। उक्त तीनों उद्धरणों में यह नहीं कहा गया है कि जीव परमात्मा को अविभाज्य समझकर आनन्द लेता है। अतः जीव परमात्मा को पृथक इकाई समझकर ही आनन्द लेता है।

सूत्र 4।4।4 'अविभागेन दृष्टत्वात्' का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा परमात्मा को अविभाज्य समझकर आनन्द लेता है। अविभाज्य का यह तात्पर्य है कि जीव परमात्मा का शरीर है तथा परमात्मा आत्मा हैं। मुक्तात्मा अपने को परमात्मा रूपी आत्मा का शरीर समझता है। जीव जब सांसारिक जीवन में रहता है तब उपनिषद के उल्लेख से यह समझता है कि वह परमात्मा का शरीर है परंतु मोक्ष मिलते ही वह आत्मा एवं शरीर के सम्बन्ध को स्वयं ही देखता है। उपनिषद के अनेकों वाक्य इस सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हैं।

छान्दोग्य 3।8।7 'तत्त्वमसि' में 'त्वम्' श्वेतकेतु है। उसके पिता कहते हैं कि 'तत्' यानी परमात्मा को वह अपनी आत्मा के रूप में रखता है। बृहदारण्यक 4।5।19 'अयमात्मा ब्रह्म' का अर्थ है कि परमात्मा सबकी आत्मा है। 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' लीला विभूति तथा नित्य विभूति के सभी जड़ चेतन वस्तुओं की आत्मा परमात्मा हैं। छान्दोग्य 3।14।1 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सभी जड़ चेतन की आत्मा ब्रह्म हैं। उक्त उपनिषद वाक्यों में जीव को परमात्मा का शरीर होने के सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है परंतु ये समानाधिकरण वाक्य कहे जाते हैं। ये अभेद श्रुति भी कहे जाते हैं। समानाधिकरण को समझने के लिये व्याकरण पर दृष्टिपात करना होगा। दो शब्द सर्वदा विभक्ति से साथ होते हैं। एक शब्द विशेषण होता है तो दूसरा संज्ञा। शरीर आत्मा सम्बन्ध में आत्मा रूपी संज्ञा का शरीर रूपी जीव विशेषण है।

उपनिषद के अन्य उल्लेख से आत्मा शरीर सम्बन्ध प्रतिपादित होता है।

- 1। बृहदारण्यक 6।7 मा से 'य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्याऽऽत्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः' अर्थात् जो जीवात्मा के साथ रहता है, जो जीवात्मा से भिन्न है, तथा जिसे जीवात्मा जानता नहीं है, जीवात्मा जिसका शरीर है, वह अन्तर्यामी तुम्हारे अन्तः में रहता है।
- 2। तैत्तिरीय आरण्यक 3।11।2 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' अर्थात् परमात्मा सबके भीतर अन्तर्यामी की तरह प्रवेश कर उसके सारे कार्यकलापों पर नियंत्रण रखते हैं तथा सबकी आत्मा हैं।
- 3। ब्रह्मसूत्र 1।4।22 'अविस्थतेरिति काशकृत्सनः' का तात्पर्य है कि परमात्मा जीवात्मा के अन्तर्यामी हैं।

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि जीवात्मा परमात्मा को अविभाज्य मानकर आनन्द लेता है।

153 | ब्राह्माधिकरण 3 सूत्र 4।4।5 से 4।4।7 तक (अधि 4।4।3)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के तीसरे अधिकरण में 5 सूत्र हैं। यह अधिकरण पहले अधिकरण से जुड़ा हुआ है। पहले अधिकरण में मोक्षप्राप्ति के फलस्वरूप गुणाष्टक आविर्भाव प्रतिपादित हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि क्या मोक्ष प्राप्ति से गुणाष्टक आविर्भाव ही एक मात्र फल मिलता है या धर्मभूत ज्ञान का असीम हो जाना भी मोक्ष का दूसरा फल है। इस प्रश्न पर अपने शिष्य जैमिनि एवं औडुलोमि से भी बादरायण मुनि ने संपर्क किया। सूत्र 4।4।5 'ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः' से जैमिनि ने अपना मत दिया कि मोक्ष प्राप्ति पर गुणाष्टक का आविर्भाव ही एक मात्र फल है तथा सत्यसंकल्प गुण से मुक्तात्मा परमात्मा के शाश्वत कैकर्य में लीन हो जाता है। दहर विद्या में प्रजापति ने इन्द्र को इसी आशय का उपदेश दिया है।

सूत्र 4।4।6 'चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः' से औडुलोमि ने अपना मत दिया है कि धर्मभूत ज्ञान का असीम हो जाना ही मोक्ष का फल है। अपने समर्थन में आपने बृहदारण्यक 6।5।13 से उद्धरण प्रस्तुत किया है 'स यथा सैन्धवघनोऽन्तरोऽबाह्यः कृत्सनो रसघनएव। एवं वा अरे अयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्सनः प्रज्ञानघन एव। विज्ञानघन एव' अर्थात् जैसे नमक के ढेर में भीतर बाहर सभीजगह नमक का एक ही स्वाद रहता है उसीतरह जीवात्मा भीतर से या बाहर से ज्ञान गुण या धर्मभूत ज्ञान संपन्न है। अतः यह वाक्य धर्मभूत ज्ञान की असीमता का आभास कराता है। 'विज्ञानघन एव' से औडुलोमि ने यह सिद्ध किया है कि जीवात्मा का कोई भी अंश असीम अनंत धर्मभूतज्ञान से रहित नहीं है। जीवात्मा दो तरह के ज्ञान से संपन्न हैः धर्मीज्ञान एवं धर्मभूत ज्ञान। बिना किसी बाहरी सहायता के जीवात्मा अपने बारे में जो समझता है वह धर्मीज्ञान है। यह ज्ञान परमात्मा में भी समान रूप से विद्यमान है। इन्द्रियों की सहायता से अपने चतुर्दिक स्थिति वस्तुओं का ज्ञान ही धर्मभूत ज्ञान कहा जाता है। इसे कारणजन्य ज्ञान भी कहते हैं। एक जीव से दूसरे जीव में धर्मभूत ज्ञान की सीमा पृथक पृथक होती है। संत प्रकृति के व्यक्ति का धर्मभूत ज्ञान बहुत विस्तृत होता है तथा ये त्रयकाल ज्ञानी यानी भूत

वर्तमान तथा भविष्य के ज्ञान से संपन्न होते हैं। नित्यसूरी तथा परमात्मा में धर्मभूत ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। औडुलोमि का मत है कि मोक्ष प्राप्त करने पर जीवात्मा भी अनंत धर्मभूत ज्ञान से संपन्न हो जाता है। सूत्र 4।4।7 'एवमप्युपन्यासात् पूर्व भावादविरोधं बादरायणः' से सूत्रकार बादरायण मुनि ने जैमिनि तथा औडुलोमि के मतों पर अपना निर्णय दिया है। इस सूत्र का अर्थ है कि पूर्वोक्त दोनों मतों में कोई विरोध नहीं है। जीवात्मा दिव्य दम्पति के दिव्य पर्यक पर आरूढ़ होते ही कल्याण आठ गुणों के प्रस्फुटन का अनुभव करता है तथा इसका धर्मभूत ज्ञान भी अनंत हो जाता है। यद्यपि 'विज्ञानघन एव' का तात्पर्य यह समझा जाता है कि मात्र धर्मभूत ज्ञान ही असीम हो जाता है न कि आठ कल्याणगुण। 'विज्ञानघन एव' का वास्तविक अर्थ चैतन्य के सम्बन्ध में है यानी जड़ वस्तुओं को छोड़कर। धर्मज्ञान को भी वृहत्तर हो जाने की बात भगवद रामानुज ने बतायी है। जो कि अनंत धर्मभूत ज्ञान के असीम होने के विरोधाभास में नहीं है।

154 | संकल्पाधिकरण 2 सूत्र 4।4।8 से 4।4।9 तक (अधि 4।4।4)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के चौथे अधिकरण में 2 सूत्र हैं। छान्दोग्य में मुक्तात्मा के स्वभाव का वर्णन है।

1। 'स तत्र पर्येति जक्षत् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा। अर्थात् मुक्तात्मा उत्तम पुरुष बन जाता है तथा वह चारों ओर से परमात्मा का आनन्द लेता है। ब्रह्म आनन्द की प्राप्ति होने से वह मुस्कराते हुए प्रदक्षिणा करता है। आनन्द की अनुभूति में वह क्रीड़ा करता है यानी कौतुक की मुद्रा में आनन्द से नृत्य करता है। परमात्मा का कैकर्य ही उसके आनन्द का कारण है।

2। 'स यदि पितरलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितराः समुत्तिष्ठन्ति। तेन पितृलोकेन सम्पन्नो भवति। सः यदि मातृलोकाकामो भवति संकल्पदेव मातरः समुत्तिष्ठन्ति।' अगर मुक्तात्मा पूर्वजन्मों के अपने पिता माता तथा अन्य सुहृदों से मिलना चाहता है तो सभी प्रकट होकर दर्शन देते हैं। इसवाक्य का एक अन्य अर्थ भी है। जैसे परमात्मा संकल्प से अवतार लेकर दशरथ तथा वसुदेव के पुत्र बनते हैं उसीतरह जीवात्मा श्रीमन्नारायण की इच्छा से जन्म लेता है तथा माता पिता का चुनाव अपने संकल्प से करता है। सशय होता है कि मुक्तात्मा की मृदु इच्छा मात्र से पूर्वजन्मों के पिता माता प्रकट हो जाते हैं कि कोई विशेष प्रयास की आवश्यकता होती है। पूर्व पक्षी के मत में जैसे राजा अपने प्रयास से कोई भी वस्तु प्राप्त करता है उसीतरह मुक्तात्मा को प्रयास की आवश्यकता होती है।

सूत्रकार 4।4।8 'संकल्पादेव तत्सुतेः' से पूर्वपक्षी का खंडन करते हुए कहते हैं उपनिषद में उल्लेख मात्र संकल्प करने का है नि कि प्रयत्न करने का 'संकल्पादेवास्य पितराः समुत्तिष्ठन्ति'। सूत्र 4।4।9 'अत एव चानन्याधिपतेः' का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा सबकुछ संकल्प मात्र से करता है। इसे विधिनिषेध का सहारा नहीं लेना पड़ता। 'विधि' का अर्थ है किसी को कोई काम करने के लिये कहना। 'निषेध' का अर्थ है किसी को कोई काम करने से मना करना। मुक्तात्मा सब काम 'सत्य संकल्प' से करता है। अगर उसका सत्य संकल्प पूरा नहीं होता तो वह मुक्तात्मा नहीं हो सकता। मुक्तात्मा का सत्यसंकल्प परमात्मा के अधीन रहता है। अतः 'अनन्याधिपति' का अर्थ है सत्यसंकल्प। छान्दोग्य 7।25।2 का उल्लेख मुक्तात्मा को 'स्वरात्' कहता है यानी जो पाप एवं पुण्य की छाया से मुक्त हो।

155 | अभावाधिकरण 7 सूत्र 4|4|10 से 4|4|16 तक (अधि 4|4|5)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के पाचवें अधिकरण में 7 सूत्र हैं। मुक्तात्मा किसी शरीर के साथ रहता है या शरीररहित है। परमात्मा के विभिन्न कैंकर्य करने के लिये स्वरूप की आवश्यकता होती है। सूत्रकार ने अपना निर्णय देने के पूर्व अपने शिष्यों से पूछा। सूत्र 4|4|10 'अभावं वादरिराह ह्येवम्' से वादरि का मत प्रकट होता है। मुक्तात्मा को किसी शरीर की आवश्यकता नहीं होती। अतः वह शरीररहित है। सूत्र 4|4|11 'भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्' से जैमिनि बताते हैं कि मुक्तात्मा विभिन्न कैंकर्य के लिये एक ही समय में भिन्न भिन्न शरीर धारण करके श्रीमन्नारायण का कैंकर्य करता है। छान्दोग्य 7|26|2 में यह उल्लेख है 'स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा।' चूंकि मुक्तात्मा को टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकता अतः वह एक तीन पांच सात यानी अनेकों स्वरूप धारण कर परमात्मा का कैंकर्य करता है।

सूत्र 4|4|12 'द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः' से सूत्रकार अपना निर्णय देते हैं। भगवदकैंकर्य हेतु आवश्यकतानुसार मुक्तात्मा अनेकों शरीर धारण करता है या जब केवल भगवद कल्याण गुण में लीन रहकर आनन्दमग्न रहता है तब उसे शरीर की आवश्यकता नहीं होती। 'द्वादशाह' बारह दिनों में पूरा होने वाले सत्रयज्ञ को कहते हैं। यह यज्ञ बहुउद्देशीय होता है। जब जनसाधारण के कल्याण के लिये इसका आयोजन करते हैं तब अनेकों लोग इसमें सम्मिलित होते हैं और इसे सत्रम कहते हैं। जब यह किसी एक व्यक्तिविशेष के हित में आयोजित होता है तब इसे अहीनम कहते हैं। उद्देश्य के अनुसार यज्ञ के विभिन्न नाम होते हैं उसीतरह मुक्तात्मा कैंकर्य के अनुसार एक या अनेकों शरीर से परमात्मा का कैंकर्य करता है।

सूत्र 4|4|13 'तन्भावे सन्ध्यवदुपपत्तेः' का आशय है कि मुक्तात्मा शरीररहित होकर कल्याण गुण आनन्द में मग्न रहता है परंतु कैंकर्य की आवश्यकतानुसार परमात्मा उसे शरीर प्रदान कर बुलाते हैं। जैसे स्वप्न में अनेकों वस्तुओं का सृजन हो जाता है उसी तरह परमात्मा अनेकों शरीर से मुक्तात्मा को अपने पास बुला लेते हैं।

सूत्र 4|4|14 'भावे जाग्रद्वत्' का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा अनेकों शरीर से कैंकर्य करता है परंतु वह मोक्ष के ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है। जैसे परमात्मा अवतार के समय दशरथ वसुदेव का सृजन कर देते हैं उसी तरह मुक्तात्मा भी सत्य संकल्प से परमात्मा की इच्छा होने पर अपने माता पिता को प्रकट करा लेता है। सूत्र 4|4|15 'प्रदीपवदावेश्यस्तथा हि दर्शयति' से इस संशय का निराकरण होता है कि जब जीवात्मा सूक्ष्म स्वरूप वाला है तब वह अनेकों स्वरूप कैसे धारण कैसे कर सकता है। उदाहरण के लिये सूत्र प्रदीप यानी ज्योतिदीप का सहारा लेता है। एक छोटा दीप किसी एक स्थान में रहकर चतुर्दिक प्रकाश करता है उसी तरह मुक्तात्मा भी असीम धर्मभूतज्ञान से अनेकों स्वरूप से कैंकर्य करता है। जिस तरह शरीर के हृदयप्रदेश में स्थित होकर धर्म भूतज्ञान से आत्मा संपूर्ण शरीर पर नियंत्रण करता है उसीतरह मुक्तात्मा धर्मभूत ज्ञान से अनेकों शरीर धारण करता है।

बृहदारण्यक 6|3|21 से यह बताया गया है कि जीव जब परमात्मा से मिलता है तब वह अपनी चेतना खोये हुए रहता है 'प्राज्ञेनाऽऽत्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्'। संशय होता है कि मुक्तात्मा को तो अनंत धर्मभूतज्ञान वाला बताया गया है जबकि इस उपनिषद वाक्य में चेतनाहीन बताया गया है। सूत्र 4|4|16

‘स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि’ का तात्पर्य है कि जीव गाढ़ी निद्रा में अचेत रहता है परंतु वह परमात्मा के साथ निवास करता है। उक्त वाक्य में मुक्तात्मा का तात्पर्य न होकर जीवात्मा का तात्पर्य है। जब वह शरीर छोड़ने लगता है तब परमात्मा उसे ब्रह्मनाड़ी से अर्चिरादि गति प्रदान करते हैं। जीवात्मा इन्हीं दो अवस्थाओं में परमात्मा से मिलकर भी अचेत रहता है।

156 | जगदव्यापारवर्जाधिकरण 6 सूत्र 4|4|17 से 4|4|22 तक (अधि 4|4|6)

चौथे अध्याय के चौथे पाद के छठे अधिकरण में 6 सूत्र हैं। श्रीभाष्य का यह अंतिम अधिकरण है। तैत्तिरीय उपनिषद ब्रह्म या परमात्मा को जगत का सृजक पालक तथा संहारक के रूप में परिभाषित करता है। इस कार्य को जगत व्यापार कहते हैं। मुक्तात्मा तथा नित्यसूरी जगत व्यापार के कार्य से विलकुल ही अलग रहते हैं। रहस्यत्रयसार में श्रीदेशिकान ने परमात्मा के 14 विशेषताओं का चित्रण किया है जो मुक्तात्मा नित्यसूरी या जीवात्मा की क्षमता के बाहर है। 1। जगत कारणत्व। 2। मोक्ष प्रदत्व। 3। सर्वधारत्व यानी नित्य विभूति या लीला विभूति के आधार। 4। सर्व नियंत्रत्व। 5। सर्वशेषित्व यानी सबों का स्वामी। 6। सर्वशरीरित्व यानी जड़ चेतन जिसके शरीर हों और वह सबकी आत्मा हो। 7। सर्वशब्दवाच्यत्व यानी सभी शब्द जिसके नाम हों। 8। सर्व वेद वेद्यत्व यानी सभी वेद आपका ही संदर्भ देते हैं और वेद से जाने जाते हैं। 9। सर्वलोक शरण्यत्व। 10। सर्वमुमुक्षु उपास्यत्व यानी मोक्ष चाहनेवालों के एक मात्र उपास्य। 11। सर्वफल पदतृत्वम् यानी अर्थ धर्म काम मोक्ष देने वाले। 12। सर्वव्याप्तत्व। 13। ज्ञान आनंद स्वरूपत्व यानी आपके मूल स्वभाव में अनंत गुण तथा अनंत आनन्द समाहित है। 14। लक्ष्मी सहयत्व। भूमिनीला नायकत्व, आदिशेष पर्यकत्व, गरुडध्वजत्व, पुण्डरीकाक्षत्व आदि भी पूर्वोक्त के अतिरिक्त परमात्मा की अन्य विशेषतायें हैं।

पूर्वपक्षी मुण्डक के उद्धरण ‘नरञ्जनः परमं साम्यमुपैति’ से संसार से सर्वथा पृथक् मुक्तात्मा परमात्मा के समकक्ष हो जाता है। मुक्तात्मा को सत्यसंकल्प प्राप्त है इसलिये वह जगत व्यापार का भी कारण है।

सूत्र 4|4|17 ‘जगदव्यापारवर्ज प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च’ का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा को जगतव्यापार में कोई भागीदारी नहीं है। सभी जड़ चेतन के स्वरूप, स्थिति, तथा प्रवृत्ति पर नियंत्रण ही जगदव्यापार कहा जाता है। दूसरे शब्द में सृजन पालन तथा संहार जगदव्यापार है। उपनिषद के उद्धरण को ‘प्रकरण’ कहते हैं।

1। तैत्तिरीय 3|1 ‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति दद्विजिज्ञासस्व तदब्रह्म’ का तात्पर्य है कि जो सृजन पालन संहार करता है तथा जो मोक्ष प्रदान करता है वह जानने योग्य ब्रह्म है।

2। छान्दोग्य 6|2|2 एवं 3 ‘तदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं। तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति, तत्तेजाऽसृजत’ का अर्थ है कि सृष्टि के पूर्व सत् कहे जाने वाले मात्र श्रीमन्नारायण ही थे। आप ने ही इच्छा से भूतों का सृजन किया।

3। बृहदारण्य 3|4|11 ‘ब्रह्म वा इदमेकमेवाग्र आसीत्’ सृष्टि के पूर्व श्रीमन्नारायण यानी ब्रह्म थे।

4। एतरीय 1|1 ‘आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ...’ सृष्टि के पूर्व श्रीमन्नारायण यानी ब्रह्म थे और आप ही आत्मा हैं।

5। महोपनिषद 1।1 'एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानोसोमो न सूर्यः' यानी सृष्टि के पूर्व श्रीमन्नारायण यानी ब्रह्म अकेले थे।

उक्त सभी वाक्य नारायण की परमसत्ता का निरूपण करते हैं। बृहदारण्यक के उल्लेख 'य आत्मनि तिष्ठन्' से आपका ही सर्वोपरि नियंत्रण सिद्ध होता है।

सूत्र का 'असंनिहितत्वाच्च' का तात्पर्य है कि उपर्युक्त उपनिषद वाक्यों में मुक्तात्मा का कहीं भी उल्लेख नहीं है। पूर्वपक्षी पुनः दो उपनिषद के उद्धरण से मुक्तात्मा को जगदव्यापार का कारण बताते हैं। क। छान्दोग्य

7।25।2 'स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' यानी मुक्तात्मा पूर्ण स्वतंत्र होकर कहीं भी अपनी इच्छा से भ्रमण कर सकता है। ख। तैत्तिरीय 3।10।5 'इमान् लोकान् कामान्नी कामरूप्यनुसंचरन्' यानी मुक्तात्मा किसी लोक में स्वतंत्र रूप से घूम सकता है। पूर्वपक्षी ने उक्त उद्धरण मुक्तात्मा को जगदव्यापार का

कारण बताने के लिये प्रस्तुत किया है। इसको सूत्र 4।4।18 'प्रत्यक्षोपदेशादिति

चेन्नाऽऽधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः' से निरस्त किया गया है। 'प्रत्यक्षोपदेशादिति' का आशय है कि उपर्युक्त उद्धरण मुक्तात्मा के प्रत्यक्ष जगदव्यापार का समर्थन करते हैं। परंतु 'चेन्नाऽऽधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः' से सूत्र के पूर्वार्द्ध का खंडन करते हैं। आधिकारिक मण्डल यानी चतुर्भुज ब्रह्मा के लोक में मुक्तात्मा श्रीमन्नारायण के नियंत्रण में अन्य तरह का आनंद का भागी होता है। इस नियंत्रण को परमात्मा की विभूति कहते हैं।

पूर्वपक्षी कहते हैं कि जब मुक्तात्मा हिरण्यगर्भ के लोक में आनन्द का भागी होता है तब इसका अर्थ हुआ कि मुक्तात्मा जीवात्मा के समान है। इसका खंडन सूत्र 4।4।19 'विकारवर्तिच तथा हि स्थितिमाह' से किया गया

है। 'विकारावर्ति' का अर्थ है जन्म मरण से मुक्त यानी स्वयं परमात्मा। परमात्मा सभी विकार एवं दोष से मुक्त हैं। आप कल्याणगुण कोष हैं। सभी लोक आपकी विभूति है। इसी आशय से मुक्तात्मा सभी लोक के आनन्द का भागी बनता है। इनलोकों पर मुक्तात्मा का कोई नियंत्रण नहीं है। उपनिषद के वाक्य से यह सिद्ध होता है।

क। तैत्तिरीय 2।7 'यदा ह्यवैष एतस्मिन् अदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति' में 'अदृश्ये' का आशय है कि परमात्मा नंगी आंखों से नहीं देखे जा सकते। 'अनात्म्ये' का आशय है

कि आप स्वरूपरहित हैं। 'अनिरुक्ते' का आशय है कि आप जाति रंग धर्म से परे हैं। आप जड़ चेतन स्थावर जंगम आदि कुछ भी नहीं हैं। आपको देव मनुष्य तिर्यक या स्थावर नहीं कहा जा सकता है। आप मुक्तात्मा नहीं हैं। 'अनिलयने' का आशय है कि आप सबके आधार हैं परंतु आपका कोई आधार नहीं है आप स्वयं अपने आधार हैं यानी आप नित्य सूरी नहीं हैं। 'प्रतिष्ठां' का आशय है कि ध्यान में आपको ही प्रतिष्ठित किया जाता है यानी आपके ध्यान करने से संसार का भय समाप्त हो जाता है।

ख। 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' का आशय है कि परमात्मा ही रस हैं। मुक्तात्मा परमात्मा को प्राप्त कर 'आनन्दी' के साथ हो जाता है।

ग। 'तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे' यानी परमात्मा में ही सभी लोक स्थित हैं।

उक्त उपनिषद वाक्य से मुक्तात्मा का जगदव्यापार में समर्थन नहीं मिलता है।

सूत्र 4।4।20 'दर्शयितश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने' से सूत्रकार यह निरस्त कर देते हैं कि मुक्तात्मा का जगदव्यापार में कोई भी भागीदारी है। 'दर्शयित' का अर्थ है सिद्ध होता है। 'प्रत्यक्ष' का अर्थ है उपनिषद वाक्य। 'अनुमाने' का अर्थ है श्रुति तथा स्मृति यानी भगवद्गीता के वाक्य।

श्रुति के वाक्य हैं: क। तैत्तिरीय 2।8 'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादिग्नश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' यानी परमात्मा के भय के कारण ही वायु देव वायु का संचरण करते हैं तथा सूर्य देव प्रकाश देते हैं। चंद्र, अग्नि, तथा यम भी अपने निर्धारित कार्य का निष्पादन परमात्मा के भय से ही करते रहते हैं।

ख। बृहदारण्य 1।8।3 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' अर्थात् अक्षर से सम्बोधित किये जाने श्रीमन्नारायण के प्रशासन में सूर्य एवं चन्द्र अपनी स्थिति बनाये हुए हैं।

ग। बृहदारण्यक 6।4।22 'एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसंभेदाय' यानी परमात्मा सबके नियंत्रक हैं, सबके रक्षक हैं, संसार एवं मोक्ष के बीच सेतु हैं, सभी लोकों के आधार हैं जिससे कि वे एक दूसरे के साथ मिश्रित न हो जायें।

स्मृति के वाक्य हैं :

क। गीता 9।10 'मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्धि परिवर्तते।' अर्थात् इस जगत की रचना हमारी इच्छा से हुई है। हमही प्रकृति में अन्तर्यामी हैं।

ख। गीता 10।42 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' यानी हमारी सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु की तरह अंश वाली शक्ति से ही संपूर्ण जगत स्थित है।

परमात्मा की इच्छा से ही कल्याण गुण जीव के स्वाभाविक गुण हैं। जन्म मृत्यु से मुक्त होकर जीव का शाश्वत होना परमात्मा की इच्छा से होता है।

सूत्र 4।4।21 'भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च' का तात्पर्य है कि मुक्तात्मा तथा परमात्मा के बीच समानता केवल आनन्दभोग से मिलता है अन्यथा जगदव्यापार में परमात्मा सर्वथा स्वतंत्र है जो मुक्तात्मा की क्षमता के बाहर है। मुक्तात्मा परमात्मा के कल्याण गुण से आनन्द लेता है यह तैत्तिरीय 1।2 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' से सिद्ध होता है। मुक्तात्मा परमात्मा के कल्याण गुण के आनन्द का सौभाग्य वैकुण्ठ में जाकर ही प्राप्त करता है। अतः मुक्तात्मा का परमपुरुष से समानता में जगदव्यापार नहीं आता है।

सूत्र 4।4।22 'अनावृत्तिशब्दादनावृत्तिशब्दात्' ब्रह्मसूत्र का अंतिम 545 वां सूत्र है। 'अनावृत्ति शब्दात्' की पुनरावृत्ति शारीरिक मीमांसा के पूरा होने का सूचक है। जब सूत्र को दुहराया जाता है तब उस शास्त्र की पूर्णता समझी जाती है। पूर्व के विवेचन से एक संशय होता है कि जब मुक्तात्मा का परमात्मा के कल्याण गुण से आनन्द लेना परमात्मा की इच्छा पर आधारित है तब तो एक दिन मुक्तात्मा को पुनः संसार में वापस भी भेजा जा सकता है। इस सूत्र का 'अनावृत्ति' इसी बात का द्योत्तक है कि अब मुक्तात्मा की आवृत्ति नहीं होगी। छान्दोग्य का 8।15।1 में उल्लेख है कि मुक्तात्मा संसार में कभी नहीं लौटता है।

भगवद रामानुज कहते हैं : 1। परमात्मा निर्मल दोषरति यानी 'निखिलहेय प्रत्यनीक' हैं। 2। 'कल्याणैकतानो' यानी कल्याणगुण कोष हैं। 3। 'जगज्जन्मादिकारणं' यानी जगत की उत्पत्ति के कारण हैं। 4। 'समस्तवस्तु विलक्षण' यानी सभी जड़ चेतन से भिन्न हैं। 5। 'आश्रितवात्सल्यैकजलधिः' यानी शरणागत को असीम स्नेह से ओत प्रोत रखते हैं। 6। 'परम कारुणिक' करुणा की साक्षात् सीमा हैं। 7। 'निरस्त समाभ्यधिक संभावनः' यानी न तो कोई आपके समान है और न आपसे श्रेष्ठ है। 8। 'परब्रह्माभिधानः परमपुरुषोऽस्तीति शब्दादवगम्यते' यानी उपनिषद में आप परब्रह्म एवं परमपुरुष के रूप में प्रतिपादित हैं।

इसीतरह उपनिषद के वाक्य से यह भी सिद्ध है कि वर्णाश्रम के नियमों का पालन करते हुए जो आपका ध्यान करता है उसे आप अनेकों जन्म के पाप पुण्य के बंधन से छुड़ाकर वैकुण्ठ के शाश्वत कल्याणगुण के आनन्द का अवसर प्रदान करते हैं तथा वह कभी लौटकर संसार में नहीं आता है।

छान्दोग्य 8।15।1 'स खल्वेषं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकामभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते' यह प्रतिपादित करता है कि ध्यान करने वाले या प्रपन्न इस जगत में जीवन पर्यन्त रहने के बाद ब्रह्मलोक वैकुण्ठ जाकर कभी नहीं लौटते, कभी नहीं लौटते।

भगवद रामानुज कहते हैं कि 'भगवतास्वयमेवोक्तम्' यानी गीता में भगवान ने स्वयं ही कहा है।

गीता 8।15 'मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मनः संसिद्धि परमां गताः'। जो हमारा ध्यान करते हैं या प्रपत्ति करते हैं उस महात्मा का परम लक्ष्य या परम सिद्धि के बाद इस दुःख भरे संसार में पुनरागमन नहीं होता।

गीता 8।16 आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते'। इस जगत में सबसे ऊंचे चतुर्मुख ब्रह्मा के लोक से लेकर सबसे नीचे के जीव लोक में सबका पुनर्जन्म होते रहता है परन्तु हे अर्जुन ! जो मेरे लोक यानी वैकुण्ठ में आ जाते हैं वे कभी नहीं लौटते।

'न च उच्छिन्नकर्मबन्धस्यासङ्कुचितज्ञानस्य परब्रह्मानुभवैकस्वभावस्य तदेकप्रियस्यानवधिकाति शयानन्दं ब्रह्मानुभवतः अन्यापेक्षातदर्यारम्भाद्यसंभवात् पुनरावृत्तिशङ्का' अर्थात् मुक्तात्मा पाप पुण्य के बंधन से मुक्त होकर वैकुण्ठ में जब पहुंचता है तब वहां असीम अनंत धर्मभूतज्ञान से संपन्न होकर परमात्मा के कल्याणगुण की आनन्द में डूबा रहता है। परमात्मा के आनन्द में लीन रहने के अतिरिक्त उसकी सारी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं ऐसी स्थिति में मुक्तात्मा का पुनर्जन्म कैसे होगा ! यानी नहीं होगा।

'न च परमपुरुषः सत्यसङ्कल्पोऽत्यर्थाप्रियं ज्ञानिनं लब्ध्वा कदाचिदावर्तयिष्यति ए' अर्थात् सत्यसंकल्प परमपुरुष परमात्मा अपने प्रिय ज्ञानी मुक्तात्मा को वैकुण्ठ में देखकर पुनः उसे संसार में भेजने का कभी नहीं सोच सकते।

गीता 7।17ः प्रियो हि ज्ञानिनो ऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।

शुद्धभक्ति में लगा रहने वाला ही ज्ञानी है और हम उसके प्रिय हैं तथा वह मुझे प्रिय है।

गीता 7।18 : उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवनुत्तमां गतिम्।

जो मुझे ही ज्ञान के रूप में प्राप्त करते हैं वे उदारमना हैं और उनको मैं अपने ही समान मानता हूँ। वे मेरी सेवा में तल्लीन रहकर मुझे ही अपना परमलक्ष्य मानते हुए मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

गीता 7 | 19 : बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

अनेक जन्मों के बाद जब जीव को ज्ञान होता है तब वह मुझे सब कारणों का कारण समझकर मेरी शरण में आता है। ऐसे संतचित्त व्यक्ति अत्यन्त ही दुर्लभ होते हैं।

सूत्र की पुनरावृत्ति से श्रीभाष्य पूर्ण हुआ। यह सम्पूर्ण शास्त्र है तथा हर दृष्टिकोण से उचित एवं उत्तम तथ्यों से परिपूर्ण है। श्रीभाष्य में चार अध्याय हैं : समन्वय, अविरोध, साधना, एवं फल जो श्रीमन्नारायण के चार कल्याणगुणों के द्योत्तक है : कारणत्व, अवध्यत्व, उपायत्व, उपेयत्व।

श्रीभाष्य के 156 अधिकरणों में सन्निहित परमात्मा के कल्याणगुणों का विवरण श्रीवेदान्तदेशिक द्वारा विरचित 'अधिकरण सारावली' में द्रष्टव्य है।

तालिका 20 : चौथे अध्याय के चौथे पाद के अधिकरण (22 सूत्र, 6 अधिकरण)

अधिकरण	सूत्र	सूत्रों की संख्या	अधिकरण क्रमांक ³⁵
151 संपद्याविर्भावाधिकरण	4 4 1 से 4 4 3 तक	3	4 4 1
152 अविभागेन दृष्टत्वाधिकरण	4 4 4	1	4 4 2
153 ब्राह्माधिकरण	4 4 5 से 4 4 7 तक	3	4 4 3
154 संकल्पाधिकरण	4 4 8 से 4 4 9 तक	2	4 4 4
155 अभवाधिकरण	4 4 10 से 4 4 16 तक	7	4 4 5
156 जगदव्यापारवर्जाधिकरण	4 4 17 से 4 4 22 तक	6	4 4 6

श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमते नारायणाय नमः ।

³⁵ 4 | 4 | 1 यानी अध्याय 4 पाद 4 अधिकरण 1